

हेम भटनागर

शृंगार-युग
में
संगीत-काव्य



हेम भट्टगजर

शृंगार-युग
में
संगीत-काव्य

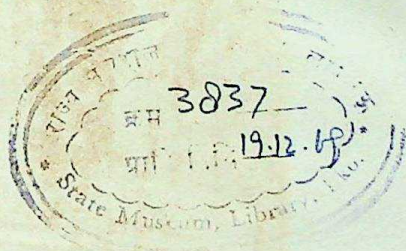
STATE MUSEUM, LUCKNOW

LIBRARY

Acc. No. 3837

Book No. 891.43

म म



मृगश्रिणु

लगावगङ्गा

हेम मटनागर

को समर्पित

हेम मटनागर

शृंगार - युग
में
संगीत-काव्य

प्रकाशक

हेम भटनागर

अध्यक्षा

हिन्दी विभाग

जानकी देवी महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली-५

891.43

म शृ

मुद्रक

नालंदा प्रेस,

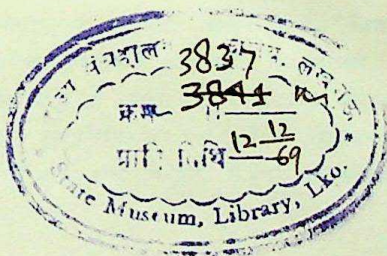
डी-३६, एन० डी० एस० ई० मार्ग-१५,

नई दिल्ली-४६

मुख-पृष्ठ

हेम भटनागर

मूल्य : २५ रुपये



3837 u
12-12-69

ग्रंजलि

निर्देशक और प्रेरक

दो

दिवंगत आत्माओं को

मन्द्र स्वर

वैदिक काल से लेकर आज तक के साहित्य के आधार पर हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि शब्द रमणीय अर्थ की व्यंजना करने में तभी समर्थ होता है, जब उसके साथ संगीत का भी योग हो। संगीत और काव्य का घनिष्ठ संबंध स्वतःसिद्ध है; साहित्य के योग से संगीत की रचना में अर्थ का गांभीर्य आता है और संगीत के योग से काव्य में लालित्य की वृद्धि होती है।

इस संदर्भ में प्रस्तुत शोध-प्रबंध का अपना महत्व है। इसमें सं० १७०० से सं० १९०० तक उपलब्ध अज्ञात एवं अप्रकाशित ग्रंथों का प्रामाणिक परिचय दिया गया है। विदुषी लेखिका ने जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, भरतपुर, अलवर, उदयपुर, नाथ द्वारा, कांकरोली, प्रयाग, वाराणसी तथा लखनऊ आदि अनेक स्थानों के राजकीय एवं व्यक्तिगत संग्रहालयों में जाकर साहित्य-संगीत-विषयक पुष्कल सामग्री का संकलन किया है। तथ्याख्यान के रूप में, उन्होंने रस के क्षेत्र में 'काम-रस' तथा वीर-रस के एक भेद 'प्रेम-वीर' संचारियों में 'आह्लाद,' कामदशाओं में 'स्मृति-मिलन,' आदि की, और उधर संगीत की दृष्टि से नायिका-भेद का प्रस्तार करते हुए 'मुग्धा गायिका,' 'मध्या नर्तकी' तथा 'कलाविद् वासकसज्जा' की नवीन प्रकल्पना की है। छन्द के क्षेत्र में ढोला, मझलस और गजल (विशेष प्रयोग) आदि सांगीतिक छंदों के साहित्यिक महत्व की प्रतिष्ठा भी लेखिका की अपनी उपलब्धि है।

हिंदी साहित्य का सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास लिखने के लिए जिस प्रकार ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक ग्रंथों का उपयोग है, इसी प्रकार संगीतशास्त्र से सम्बद्ध कृतियों का भी अपना महत्व है। रीतिकाल में तो काव्य-कला का विकास अन्य ललित कलाओं के ही संदर्भ में हुआ है और ये सभी कलाएँ निरन्तर एक-दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। अतः यह सामग्री इस काल-खण्ड के साहित्य के अध्ययन के लिए एक नया आयाम प्रस्तुत करती है—इसमें संदेह नहीं।

संगीत के इतिहासकारों की प्रवृत्ति यह रही है कि वे केवल संस्कृत में लिखित संगीत-ग्रंथों का उल्लेख करते हैं—हिंदी के संगीत ग्रंथों में मौलिकता के अभाव की कल्पना कर वे प्रायः उनकी उपेक्षा ही करते रहे हैं। डा० हेम भटनागर ने इस रूढ़ि को तोड़कर भारतीय संगीत-शास्त्र के विकास में हिन्दी-लेखकों के योगदान का भी आकलन किया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध-ग्रंथ का साहित्य तथा संगीत दोनों ही क्षेत्रों में स्वागत होना चाहिए। मैं अपनी शुभकामनाओं के साथ इस उपयोगी ग्रंथ को साहित्य-संगीत-कला के मर्मजों को अर्पित करता हूँ।

दिल्ली विश्व विद्यालय

नगेश्वर

वादी-अपवादी

शृंगार कालीन हस्तलिखित ग्रंथों पर आधारित संगीत और साहित्य की सम्मिलित सामग्री प्रस्तुत है ।

संगीत काव्य के तीन रूप हैं:—

सैद्धांतिक ग्रंथ

व्यावहारिक संगीत-काव्य तथा जैन राग मालाएँ

चित्र रागमालाएँ, साहित्यिक रागमालाओं की ही अनुकृति है ।

रस के क्षेत्र में 'काम रस' (पृ० १७५) तथा वीर का एक भेद 'प्रेम वीर' (पृ० २०३) नवीन संभावना है । 'स्मृति-मिलन' (पृ० १८०), 'आह्लाद' तथा 'रस मग्नता' (पृ० १७७) आदि नवीन संचारी दृष्टिगत होते हैं । संगीत-काव्य की विशिष्ट नायिकाएँ 'मुग्धा-गायिका', 'मध्या नर्तकी', 'प्रोढ़ा कामिनी', अथवा 'कलाविद् वासकसज्जा', (पृ० १८३, १८४) नवीन उद्भावनाएँ हैं ।

उच्चारण-शुद्धि के लिए विदु और चंद्रविदु का प्रयोग करना चाहा है, परंतु प्रकाशन की सीमाओं के कारण अपूर्ण रह गया है ।

प्रकाशन संबंधी अनेक भूलें हैं, जिनके लिए क्षमा-याचना है ।

आभार मानती हूँ—उन सभी गुरुओं का, जिन्होंने प्रकाश तथा प्रच्छन्न रूप में निर्देशन दे कर इस कार्य को संभव बनाया ।

सभी हस्तलिखित ग्रंथालयों के संग्रह-कर्त्ताओं तथा पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनकी उदारता के बिना सामग्री प्रकाश में नहीं आ सकती थी ।

कहीं क्षण का दान मिला है, कहीं कण का । मैंने दोनों ही से परिमाण ग्रहण किया है । संज्ञा पदों को धन्यवाद देकर उनकी सर्वनामता को सीमित नहीं बनाना चाहती, अतः मेरे भावों को वे उतने ही उदार बन कर ग्रहण करेंगे, ऐसी मुझे आशा है ।

३१ मार्च, १९६९

हेम भटनागर

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए

स्वीकृत शोध-प्रवन्ध

निर्देशन—डा० दीन दयालु गुप्त

स्वर्गीय डा० ब्रज किशोर मिश्र

हिन्दी साहित्य के शृंगार-युग में संगीत-काव्य (सं० १७००-सं० १६००) आरोह-अवरोह

षड्ज

पृष्ठ

शृंगार-युग—नाम और सीमा १-१२
'शृंगार-युग' नाम की उपयुक्तता—आलोच्य युग की ऐतिहासिक सीमा—
संगीत-काव्य का तात्पर्य ।

ऋषभ

१३-२४

संगीत-काव्य की परंपरा

- १—संस्कृत तथा प्राकृतादि ग्रंथों की परंपरा
संगीत की उत्पत्ति—पौराणिक, ऐतिहासिक—पौराणिक मत-शिवमत,
ब्रह्ममत—ऐतिहासिक—वैदिक तथा अन्य ग्रंथ, शाङ्गदेव का
संगीत-रत्नाकर—अपभ्रंश काव्य में सिद्ध, तथा नाथ ग्रंथ ।
- २—हिंदी ग्रंथों की परंपरा
जैन ग्रंथ—आदिकालीन तथा भक्तिकालीन हिंदी संगीत-रचनाएँ ।

गांधार

शृंगार-युगीन परिस्थितियाँ और संगीत-कला ।

२५-४०

- १—राजनैतिक
- २—सामाजिक-आर्थिक, विलास प्रियता, मनोरंजन, कलाकारों तथा
कला का संरक्षण ।
- ३—साहित्यिक-चमत्कार-प्रियता, आश्रयदाता की आज्ञा, पारस्परिक
स्पर्धा, रीतिग्रंथों का प्रचार, लक्षण और लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण,
आचार्यत्व का शौक, संस्कृत काव्य का आधार ।
- ४—धार्मिक
- ५—मनोवैज्ञानिक

मध्यम

शृंगार-युगीन संगीत-काव्य के विविध रूप और वर्गीकरण ।

४१-८६

- १—सैद्धान्तिक, १—सर्वांगनिरूपक, २—विशिष्टांग निरूपक—
विशेषताएँ तथा रचनाओं का संक्षिप्त विवरण—चित्र रागमालाएँ
- २—व्यावहारिक, १—उदाहरण ग्रंथ—विशेषताएँ तथा रचनाओं का
संक्षिप्त विवरण, २—जन संगीत-ऐतिहासिक-सामाजिक-धार्मिक ।
- ३—जन रागमालाएँ

पंचम

संगीत-काव्यकार—जीवनी तथा कृतियाँ ।

६१-१३६

- १—सर्वांग निरूपक ग्रंथकार—प्रतापसिंह देव—हरिवल्लभ—राधा-
कृष्ण—पूर्ण मिश्र ।
- २—विशिष्टांग निरूपक ग्रंथकार—अहमद—यशोदानन्दनशुक्ल—
गंगाराम ।
- ३—व्यावहारिक संगीत-काव्यकार—कृष्णानन्द व्यासदेव 'रागसागर'-
नागरी दास-मानसिंह-जवान सिंह

धैवत

शृंगार-युगीन संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन

१४१-१७०

- १—संगीत रचनाओं का आधार-परंपरा पर आधारित रचनाएँ—शुद्ध
परंपरावादी, मिश्रित परंपरावादी, मौलिक रचनाएँ—प्राचीन सिद्धान्तों
में नवीनता का प्रतिपादन कर, रागों के स्वरूप तथा लक्षणों में नवीनता
का प्रतिपादन कर ।
- २—संगीत-रचनाओं में लक्षणों की अपेक्षा स्वरूप-वर्णन पर बल ।
- ३—गायन शैली का स्वरूप-ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि ।
- ४—रागों तथा रागिनियों के वर्णन में सूक्ष्मता ।
- ५—संगीत का तत्कालीन स्वरूप ।

निषाद

शृंगार-युगीन संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन

१७१-२७०

- १—रसात्मकता—काम रस, शृंगार रस तथा अन्य रस
- २—वस्तु वर्णन—क. सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक प्रयुक्त सामग्री के आधार
पर राजसी तथा नैसर्गिक
ख. रस की दृष्टि से—शृंगार रसानुकूल, वीर रसानुकूल,
शांत रसानुकूल
ग. संस्कृति के अनुकूल-आर्य, मुस्लिम ।
घ. चित्र-शैलियों के अनुकूल-मालवा शैली, वीकानेर शैली
आदि-पुरुष तथा स्त्री रूप ।

- ३—रूप वर्णन -नख-शिख वर्णन, संवेगात्मक, संवेदनात्मक
 ४—प्रकृति-वर्णन-क. उद्दीपन रूप- पृष्ठ भूमि की सज्जा के हेतु,
 वातावरण की सृष्टि के हेतु; भावों के उत्कर्षण के हेतु,
 ख. आलंकारिक रूप, रूप = उत्कर्षक, चित्रात्मक,
 गत्यात्मक ।
 ५—कल्पना - तत्त्व — सादृश्यवाची उपमानों की सृष्टि-सरस प्रसंगों की
 योजना ।
 ६—भाषा तथा शैली— व्याकरण की दृष्टि से भाषा का रूप, शब्द-
 चयन-ग्रानुप्रासिक, ध्वन्यात्मक, शब्द-शक्ति, उक्ति-
 चमत्कार, गुण, अलंकार, छंद ।

तार—स्वर

महत्त्व और उपलब्धियाँ ।

२७१-२७६

सहायक पुरतक



षड्ज

विक्रम संवत् १७०० से संवत् १६०० तक लिखा गया हिन्दी काव्य, 'रीति काव्य' के नाम से प्रसिद्ध है तथा ये दो शताब्दियाँ हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के नाम से ज्ञात हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास प्रणेताओं ने इस काल को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा। मिश्र-बन्धुओं के अनुसार इस काल का नाम 'अलंकृत-काल' हुआ। उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काल को 'कला-काल' भी कहा है। अलंकृत काल कहकर इसके दो भाग 'पूर्वालंकृत' और 'उत्तरालंकृत' किए^१। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसको 'रीति-काल' के नाम से पुकारा। इस नाम को सार्थकता देने के लिए यह सिद्ध किया गया कि इस काल में रीति-बद्ध काव्य की रचना हुई। 'रीति' शब्द की व्याख्या संस्कृत आचार्यों द्वारा भी की जा चुकी थी तथा इस काल-विशेष के कवियों ने भी जिस रूप में उसे ग्रहण किया उस पर भी प्रकाश डाला गया। हिंदी साहित्य के बृहद् इतिहास^२ में शृंगार की प्रमुखता, शृंगार की रीतिबद्धता तथा काल-विशेष की आंतरिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला नाम 'रीतिकाल' उपयुक्त समझा गया है। डा० नगेंद्र के अनुसार 'जिस ग्रंथ में रचना-सम्बन्धी नियमों का विवेचन हो, वह रीति-ग्रंथ, और जिस काव्य की रचना इन नियमों से आवद्ध हो, वह रीति-काव्य है।'^३ उक्त व्याख्या के अनुसार इस काल का नाम 'रीतिकाल' उपयुक्त है।

डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'अलंकृत-काल' या 'रीति-काल' न कहकर 'शृंगार काल' कहा। उन्होंने इसका कारण बताया कि "अलंकृत काल" या 'रीतिकाल' नाम रखने से उसका विभाजन का मार्ग ही नहीं मिल पाता। शृंगार काल नाम रखने से विभाजन सरलता पूर्वक हो जाता है।'^४ इसके अतिरिक्त, उन्होंने काल के नामकरण के लिए दो तत्त्वों को आवश्यक माना है—'एक तो सर्व सामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो, दूसरे अंतर्विभाग का मार्ग अवरुद्ध रखे। सर्व सामान्य प्रवृत्ति की बोधकता का परिचय प्रस्तुत ग्रंथ राशि के बाहुल्य से है, समस्तता से नहीं।' रीति-कालीन प्रवृत्ति को देखकर उन्होंने सिद्ध किया है कि 'इन कवियों का साध्य शृंगार था, रीति से ये कभी-कभी साधन का

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—मिश्रबन्धु, पृ० १८७।

२. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, (रीतिबद्ध) संपादक, डा० नगेंद्र।

३. रीति-काव्य की भूमिका—डा० नगेंद्र, पृ० १२६।

४. बिहारी की वाग्विभूति—डा० वि० प्र० मिश्र, पृ० १।

काम अवश्य लेते थे।^{११} डा० मिश्र के शब्दों में 'रीति-काल' नाम देने से 'उप विभागों' का मार्ग संकीर्ण हो जाता है। ये दोनों (रीतिकाल और अलंकृत काल) नाम व्याप्ति के बोधक नहीं हैं, अतः शृंगार काल की स्पष्ट अपेक्षा जान पड़ती है।^{१२}

स्वयं श्री रामचन्द्र शुक्ल ने, जिन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १७०० से सं० १९०० के युग को 'रीतिकाल' का नाम प्रदान किया था, इस काल की शृंगार-प्रधानता के आधार पर एक स्थान पर लिखा है कि 'इस युग में प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है।'^{१३}

अपवाद स्वरूप कुछ रचनाओं को छोड़कर लगभग समस्त रीतिकालीन सामग्री का आधार शृंगार का स्थायी भाव 'रति' है। शृंगार रस के स्थायी भाव रति का व्यापकत्व सर्वमान्य है। इसका मूल ब्रह्म में देखने पर लौकिक तथा अलौकिक सभी पदार्थ रति भाव से भावित दिखाई देते हैं। अग्निपुराण के अनुसार परब्रह्म का आदिम विकार अहंकार कहा जाता है। अहंकार से अभिमान की उत्पत्ति होती है। अभिमान से रति उत्पन्न होती है और व्याभिचारी आदि भावों से पुष्ट होकर रति-भाव, शृंगार रस में परिणत हो जाता है।^{१४} काव्य का विषय चाहे नायक-नायिका भेद हो, अलंकार या छंद शास्त्र हो अथवा संगीत हो—सभी में कहीं न कहीं 'रति' भाव की प्रधानता अवश्य दृष्टिगोचर होती है। जब कवियों की मूल प्रेरणा ही शृंगार युक्त है, तो 'शृंगार-युग' या 'शृंगार काल' नाम से इस युग को नामांकित करना उचित ही प्रतीत होता है।

शृंगार शब्द की उत्पत्ति 'शृङ्' धातु से हुई है। शृंगार शब्द का अर्थ है—शृंग (शिखर) की ओर ले जाने वाली भावना। जो वस्तु हृदय से भाव को उच्चतम स्तर तक पहुँचा सके, उसी को शृंगार कहते हैं।^{१५} साहित्य-दर्पणकार की परिभाषा 'शृङ्ग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः। उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते। १८३।'^{१६} के अनुसार भी शृंग का अर्थ 'मन्मथोद्भेद' है, जिसका अर्थ कामोद्रेक है। काम को उत्पन्न करने वाला ही शृंगार है। रीतिकाल की कविता पर दृष्टिपात करने से यह कहा जा सकता है कि संवत् १७०० से संवत् १९०० के मध्य लिखी गई कविता का मुख्य प्रयोजन 'कामोद्रेक'

१. हिन्दी साहित्य का अतीत : शृंगार काल—डा० वि० प्र० मिश्र, पृ० १५६।
२. हिन्दी साहित्य का अतीत : शृंगार काल— डा० वि० प्र० मिश्र, पृ० ३६१।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२३, (वारहवाँ संस्करण)।
४. 'आद्यस्तस्य विकारो यः सौहंकार इति स्मृतः।

ततो ऽभिमानस्तत्रेवं समाप्तं भुवन त्रयम्।३।

अभिमानाद्व्रतिः सा च परिपाषमुपेयुषी।

व्यभिचार्यादि सामान्याच्छृङ्गार इति गीयते।४।'^{१७}

अग्निपुराण—तृतीय अध्याय।

५. 'शृङ्ग : कामोद्रेकमृच्छतीति। स गतौ 'कर्मरायण'। ३।२।१। इत्यण।'

शब्द कल्पद्रुम।

६. साहित्य दर्पण—विश्वनाथ।

अथवा 'मन्मथोद्भेद' ही है। विशेष रूप से इस प्रबन्ध में वर्णित 'संगीत-काव्य' इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है, अतः इस काल को 'शृंगार-काल' के नाम से पुकारना अधिक समीचीन होगा। इन रचनाओं में रीति-तत्त्व से अधिक शृंगार-तत्त्व विद्यमान होने के कारण भी शृंगार काल नाम ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

शृंगार शब्द की उत्पादक शृङ्ग धातु, का अर्थ शिखर, पर्वत की चोटी की ओर रंकेत करता है। अर्थ-विस्तार तथा काव्य-वैभव के कारण प्रत्येक साहित्य-विधि की चोटी पर विराजने वाले 'मुकुट' के समान भाव को 'शृंग' कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में किसी भी वस्तु को सजाने वाली वस्तु 'शृंग' है। जिस प्रकार शिखर पर्वत को अलंकृत करता है, उसी प्रकार शृंगार अन्य रसों के ऊपर स्थित होकर उनको अलंकृत करता है। अतएव शृंगार को अलंकरण, अथवा सजावट के अर्थ में भी लिया जा सकता है।^{१-२}

यही एक प्रवृत्ति है, जो इस काल के प्रत्येक कवि में विशेष रूप से पायी जाती है। विषय कितना ही महत्त्वहीन हो अथवा उक्ति कितनी भी सरल हो, इस काल के कवियों ने उसको सदैव ही सजाकर, चमत्कारपूर्ण ढंग से कहा है। उनके उक्ति-चमत्कार, अलंकार-प्रदर्शन और भी अन्य प्रकार से काव्य को सुसज्जित करने के उपकरणों के कारण ही कविता-कामिनी का रूप निखरा है। इसी शृंगारिक रुचिके कारण 'शृंगार-युग' नाम ही उपयुक्त जान पड़ता है।

रस की दृष्टि से शृंगार रस की जो सम्पूर्णता इस काल के काव्य में प्राप्त होती है, वह अन्य कालों में नहीं। शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष, अनुभाव, संचारीभाव, हाव और भाव आदि में विविधता और विशदता भी परिपूर्णता तक पहुँची है। यह कहा जा सकता है कि भक्ति-रस को शृंगार के ही अन्तर्गत लेने के कारण, भक्ति-काल में ही शृंगार के अनेक रूप दृष्टिगत हो चुके थे, परन्तु भक्ति भाव प्रधान होने के कारण रतिभाव-जन्य शृंगार रस वहाँ प्राप्त नहीं होता। शृंगार का स्थायी भाव रति मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। 'रति' शब्द का अर्थ मूल रूप से 'संलग्नता' से है, यह संलग्नता चाहे किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो। माता-पुत्र के सम्बन्ध में, पति-पत्नी के सम्बन्ध में, प्रेमी-प्रेमिका, भाई-भाई, सखा-सखी, भक्त और भगवान, सभी सम्बन्धों में संलग्नता का भाव प्रधान रहता है और यही भाव स्थायी भाव रति का रूप ले लेता है। पुनः, 'रति' शब्द पर विचार करने से पता चलता है कि इसका अर्थ है—रमण करना। पुरुष और स्त्री का एक दूसरे में इस प्रकार रत हो जाना, जिसमें दोनों के स्वतंत्र अस्तित्व अथवा 'अहं' की अनुभूति समाप्त हो जाए और दोनों का समन्वित रूप एक हो जाए। दूसरे शब्दों में, दोनों के हृदयों में उठने वाले भावों में एकरूपता आ जाना; दोनों का एकात्म होकर आनन्द में मग्न हो जाना—यही

१. साहित्य दर्पण—'विमला' टीका : विद्यावाचस्पति साहित्याचार्य श्री पं० शालग्राम शास्त्री, पृ०, १०६।

२. 'शृंगार' शब्द का प्रयोग सामान्यतः अलंकार, बनाव-चुनाव साज वा सजावट आदि के अर्थों में हुआ करता है। सोलह शृंगार प्रसिद्ध ही हैं।' मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १३।

सच्चे अर्थ में 'रति' है। चाहे संकीर्ण अर्थ में रति का अर्थ, पुरुष और स्त्री के शारीरिक सुखानुभूति में एकानन्द की प्राप्ति लिया जाय अथवा आध्यात्मिक अर्थ में आत्मा का पर-मात्मा में एकीकरण माना जाए, दोनों में दो अस्तित्वों का एक हो जाना ही मुख्य लक्ष्य है। यही कारण है कि लौकिक से अलौकिक की ओर ले जाने वाले निर्गुणोपासक अथवा सगुणोपासक सभी भक्तों ने ब्रह्मानन्द का दूसरा नाम 'सुरति' दिया।

लौकिक रति का उदात्तीकरण आध्यात्मिक रति में हो जाता है, तभी उसका क्षेत्र ऐन्द्रियता से उठकर अतीन्द्रियता की ओर उन्मुख होता है। यद्यपि राधा-कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाले पद और गीत ऐन्द्रियता के आधार पर लिखे गए प्रतीत होते हैं, परन्तु वह आध्यात्मिकता के स्तर को स्पर्श करने वाले हैं। यद्यपि मूल रूप से रति एक व्यापक भाव है, तथापि इस युग में ऐन्द्रियता के दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण रति का स्वरूप सीमित हो गया था; सीमित हो जाने के कारण ही 'रति' का सम्पूर्ण विवेचन इस काव्य में हुआ। अन्य रसों को छोड़कर केवल शृंगार पर ही कवियों ने कौशल के साथ रचनाएँ कीं। नायक-नायिका के प्रेम वर्णन में कवि ने स्वतन्त्र होकर शृंगार के अनेकानेक रूप सम्मुख रखे, अतः इस काव्य में पूर्णरूपेण शृंगार का वर्णन होने के कारण इस काल को 'रति-काल' की अपेक्षा 'शृंगारकाल' की संज्ञा देना ही अधिक उपयुक्त है।

इसके पूर्व अन्य युगों में शृंगार का वर्णन अन्य रसों के सहायक रूप में हुआ था। आदि काल में 'वीरकाव्य' अथवा भक्तियुग में भक्ति को परिपुष्ट करने के लिए इसका प्रयोग हुआ, परन्तु इस युग में शृंगार-वर्णन के लिए ही शृंगार वर्णन किया गया, अतः उसका निखरा हुआ, पूर्ण तथा विशुद्ध रूप इस युग में आया।

लगभग सभी इतिहासकारों की यह प्रवृत्ति रही है कि युग की विशेषता को देखकर ही उन्होंने कालों का विभाजन और उनका नामकरण किया है। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास के पहले संस्करण के वक्तव्य में लिखा है कि 'जिस काल खंड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ी है, वह एक अलग काल माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है।'^१ आदि काल में जितने भी युद्धों के वर्णन किए गए हैं, लगभग सभी में शृंगार का आधार लिया गया है; अतः उसका नाम शृंगार-काल रखा जा सकता था, परन्तु अधिकांश ग्रन्थों के 'वीरगाथात्मक' होने के कारण शुक्ल जी ने उसका नाम वीरगाथा काल रखा। इसी प्रकार भक्ति की भावना का प्राधान्य देखकर भक्तिकाल का नामकरण हुआ। इसी आधार पर आलोच्य काल की प्रवृत्ति मुख्यतः शृंगार की ओर होने पर भी इसे 'शृंगार युग' नाम न देकर 'रतिकाल' कहा जाय, यह ठीक नहीं लगता।

हिन्दी-साहित्य के अन्य कालों का नामकरण, उनमें वर्णित विषय-वस्तु के आधार पर हुआ है, न कि उसकी शैली पर। 'रति' शब्द शैली का बोधक है,^२ किसी विशेष ढंग पर काव्य करना शैली का गुण है। वर्णित विषय शृंगार है। श्री डा० विश्वनाथ प्रसाद

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल, पृ० २।

२. 'विशिष्टा पद-रचना रीतिः ॥१॥'—वामन, काव्यालंकार सूत्रवृत्तिः।

मिश्र ने भी कहा है—‘रीति शब्द वाह्यार्थ का बोधक है, आभ्यन्तरार्थ का नहीं। उस काल का आभ्यन्तर वर्ण्य शृंगार था। ‘रीति’ की सीमा में जितनी कृतियाँ समाविष्ट हैं, वे अधिकतर ‘शृंगार’ की हैं।’^१

शास्त्रीय ढंग से ‘रीति-काल’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने ही किया^२ और उन्हीं के आधार पर सभी विद्वान इस नाम को मानते रहे, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने रीति-कालीन कवियों की जितनी छानबीन की थी, उसे वे नामकरण के लिए पर्याप्त नहीं समझते थे, तभी वह एक स्थान पर कहते हैं—‘रीति वृद्ध ग्रन्थों की बहुत गहरी छानबीन और सूक्ष्म पर्यालोचना करने पर आगे चलकर शायद विभाग का कोई आधार मिल जाय।’^३ अतः उन्हीं का दिया हुआ यह नाम सदैव के लिए स्वीकार कर लेना बहुत आवश्यक नहीं। उचित आधार लेकर उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

अतएव साहित्यिक दृष्टि से पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा नामांकित सं० १७०० से सं० १६०० तक का युग ‘शृंगार-काल’ के नाम से पुकारा जा सकता है।

२

शृंगार-काल के संगीत-काव्य का अध्ययन करने के लिए हमें उसकी ऐतिहासिक सीमा का भी निर्धारण करना आवश्यक है। मुगल आक्रमणों के कारण शृंगार युग में भारतीय संगीत के दो विभाग स्पष्ट रूप से हो गए थे—उत्तर भारतीय संगीत और कर्नाटक संगीत। यद्यपि दक्षिण भारत में संगीत ग्रंथ अधिक संख्या में पाए जाते हैं, परन्तु इस प्रबन्ध में उन ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया गया है। विदेशी आक्रमणों के कारण उत्तर भारत में प्रचलित संगीत पर ईरानी संगीत का प्रभाव पड़ा। अतएव संगीत के शास्त्रीय रूप में बहुत परिवर्तन आ गया। इसी कारण उत्तर भारतीय संगीत दक्षिण के संगीत (कर्नाटक) से भिन्न हो गया। दक्षिणी संगीत पर प्राप्त ग्रन्थ अधिकतर दक्षिणी भाषाओं में ही लिखे गए हैं, अतः हिन्दी रचनाओं के अन्तर्गत उनका समावेश नहीं किया गया है।

उत्तर भारत में मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो जाने के कारण दक्षिण में संगीत-कला का प्राचीन रूप सीमित हो गया। ११ वीं शताब्दी ई० में काश्मीर से हिन्दू विद्याएँ हट गई थीं।^४ तभी मथुरा और कन्नौज पर आक्रमण होने के कारण कलाएँ दक्षिण में चली

१. हिन्दी साहित्य का अतीत—शृंगार काल, डा० वि० प्र० मिश्र, पृ० ३५७।

२. ‘रीति काल आचार्य शुक्ल की दी हुई संज्ञा है।’ अवध के कवि-डा० वृजकिशोर मिश्र पृ० ५५

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल।

४. ‘१०१३ ई० में कश्मीर की ओर भी महमूद का ध्यान गया और १०१५ ई० में उसने कश्मीर का विनाश पूर्णतया कर डाला। पंडित हो या मूर्ख, गुणी हो या गँवार, सबको अपने लिए इस्लाम एवं मृत्यु में से एक को चुनना था। फलतः कश्मीर जैसा विद्या-केन्द्र भी हिन्दू विद्याओं से शून्य हो गया, भरत का संगीत-सिद्धान्त—कैलाशचन्द्र देव वृहस्पति, पृ० २५।

गई'।^१ संगीतज्ञ दक्षिण से उत्तर भारत में आना पसन्द नहीं करते थे। विदेशी को कला-दान करना उनका अपमान था,^२ हिन्दी में लिखे गये संगीत-ग्रन्थ केवल उत्तर भारत में ही प्राप्त हैं। इनमें भी विशेष रूप से अवध, मालवा, गुजरात, बुंदेलखंड, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और राजपूताना में ही ऐसे ग्रन्थ मुख्यतया प्राप्त होते हैं।

अधिकतर राजा और सामंत कलाप्रिय थे और अपने राज्यों में कला-प्रचार के लिए अथवा अपने आनन्द के लिए संगीत ग्रन्थों की रचना कराते थे; अतः केवल इन्हीं प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति यहाँ पर दी जा रही है।

उक्त प्रदेशों में कलाप्रिय राजाओं के संरक्षण में कलाएँ पलीं, अतः संगीत कुछ नगरों में केन्द्रीभूत हो गया। इन नगरों में बनारस, लखनऊ, ग्वालियर, जयपुर तथा उदयपुर^३ के राजाओं को मुख्य रूप से संगीत ग्रन्थों की रचना का श्रेय दिया जाता है।

इन तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से भारत की तत्कालीन स्थिति पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा।

स्थूलतया, ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर मुगल राज्य का चरमोत्कर्ष और अवनति दोनों ही इस युग के अन्तर्गत आती हैं। शाहजहाँ सन् १६२८ (सं० १६८४) में आगरा में बादशाह घोषित कर दिया गया था।^४ इसके अनुसार, कुछ प्रारंभिक वर्ष छोड़कर, शाहजहाँ का अन्तिम राज्यकाल इस काल के अन्तर्गत आता है। इसके पश्चात् सन् १६५८ से १७०७ (सं० १७१४-१७६३) तक औरंगजेब का राजत्व-काल आता है। इसके उपरान्त अन्य मुगल राजाओं का शासन रहा और अंग्रेजों के देश में आने तक इस काल की सीमा रखी जा सकती है। इस युग के अन्तिम एक सौ पचास वर्ष एक प्रकार से क्रान्ति से पूर्ण थे। किसी प्रकार का एक छत्र राज्य नहीं रह गया था।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र शाहआलम ने आगरा में गद्दी पर

१. '१०१८ ई० में महमूद ने कन्नौज एवं मथुरा का विनाश किया तथा १०२४ ई० में सोमनाथ का मंदिर लूटा। फलतः विद्याओं को दक्षिण में आश्रय ढूँढना पड़ा।'—भरत का संगीत सिद्धान्त—के० चं० दे० बृहस्पति, पृ० २५।

२. 'देव दुर्विपाक से १२६४ ई० में अलाउद्दीन की शक्ति-दृष्टि दक्षिण पर पड़ी और देवगिरि के उस राजवंश पर भी विपत्ति आई, जो शाङ्गदेव जैसे विद्वानों का आश्रयदाता रहा था। मलिक काफूर ने अलाउद्दीन के पास भेजने के लिए अनेक विद्वानों को धर्मभ्रष्ट किया। अनेक संगीतज्ञ इस समय दक्षिण से बलात् उत्तर भेजे गए।—बैजू ने गोपाल से कहा—'तूने विद्या दी नहीं छिना दी, शत्रुओं पर नागपाश डाल। इन्हें श्रुति, स्वर, मूर्च्छना गमक इत्यादि का रहस्य न बतला। कोई गुणी इस जाति में जन्म लेगा तो इसका रहस्य खुलेगा।' भरत का संगीत-सिद्धान्त—आचार्य के० चं० देव बृहस्पति, पृ० २७।

३. Aspects of Indian Music. Government of India publication 1957-1660, p. 34.

४. Mughal Rule in India by S. M. Edwardes and H. L. O. Garrett, p. 69.

अधिकार प्राप्त किया और अपना नाम बहादुर शाह रखा। इसके आगे आने वाले वर्षों में बराबर गद्दी के लिए युद्ध होते रहे। राजपूताना के राजपूतों से भी युद्ध हुए। उधर सिखों द्वारा भी आन्दोलन हुआ।^१

बहादुरशाह के बाद उसके पुत्र जहाँदारशाह का राज्य रहा। जहाँदारशाह बड़ा विलासी हो गया था, जिससे राज्य में नैतिक पतन व्याप्त होने लगा। इसके शासन काल में विलास-नृप्ति तथा मनोरंजन के लिए नृत्य-गीत को विशेष प्रश्रय मिला। सन् १७१३ ई० (सं० १७३६) में मुहम्मद फर्रुखसियर ने हसन (अब्दुल्ला खां, कुत्बुलमुल्क) और हुसेन (अमीरुलउमर फ़िरोज जंग) की सहायता से जहाँदारशाह को मरवाकर राज्य पाया।^२ सन् १७१३ (सं० १७६६) में फर्रुखसियर ने मुशिदकुली खां को बंगाल और उड़ीसा का गवर्नर बना दिया। सन् १७२७ (सं० १७८३) में उसके दामाद गुजाउद्दौला आसद जंग ने अधिकार प्राप्त किया। सन् १७३३ (सं० १७८६) में बिहार भी इनको दे दिया गया। इन तीनों प्रदेशों का स्वामित्व गुजाउद्दौला ने सन् १७३६ (सं० १७९५) में सरफ़राज खां को दे दिया। सन् १७४० (सं० १७९६) में अलीवर्दी खां ने राज्य प्राप्त किया।^३ फर्रुखसियर को बरबस पकड़वा कर अन्धा करके दो मास तक कैद में रखकर सईद अब्दुल्ला ने सन् १७१६ (सं० १७७५) में उसे मरवा डाला और रफीउद्दाराजात को, जो रफीउश्शान का पुत्र था, राजा बना दिया।^४

२८ सितम्बर सन् १७१६ (सं० १७७५) को रफीउद्दौला की मृत्यु पर जहानशाह (बहादुरशाह का चौथा पुत्र) के पुत्र रोशन अख्तर को मुहम्मदशाह की उपाधि से राजा बनाया गया।^५ मुहम्मदशाह के राजा बनने के समय सय्यद भाई शक्तिमान थे। अजितसिंह,

१. The Cambridge History of India by Lt. Col. Sir Wolseley Haig, Sir Richard Burn. Vol. IV, The Mughal period. p. 321-322,
२. The Cambridge History of India by Lt. Col. Sir Wolseley Haig, and Sir Richard Burn. Vol. IV, The Mughal period, p. 330.
३. The Crescent in India. A study in Mughal Period by S. R. Sharma. p. 732.
४. "Sayyid Abdullah sent his men who probe open the door of the harem, entered and brought away Rafi-ud-Darajat (son of Rafiush-khan who was immediately seated on the Peacock throne and proclaimed emperor. Then a party of Afghans was sent into the harem, they pushed away the ladies and seizing Farrukh-siyar dragged him with blows and abuse to the minister, who had him, immediately blinded, The fallen emperor was kept in prison for two months and then strangled. (27-29 April, 1719) He lies buried in Humayun's tomb." The Cambridge History of India by Lt. Col. W. Haig and Sir Richard Burn. Vol. IV, p. 339.
५. The Cambridge History of India, by Lt. Col. Sir Wolseley Haig, and Sir Richard Burn, Vol. IV. The Mughal Period. p. 340.

जोधपुर, अजमेर और गुजरात के अधिकारी थे। इलाहाबाद छवेलाराम के पास था, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका भतीजा गिरधर बहादुर, अवध का गवर्नर बनने की चेष्टा कर रहा था। कोटा के भीमसिंह हाड़ा राजपूतों के सरदार बुद्धसिंह को बूंदी से हटाकर उसका स्थान प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे।^१ निजाममुल-मुल्क दकन पर अधिकार प्राप्त करना चाह रहा था। सईदहुसैन अली की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मदशाह ने मुहम्मद अमीन खां (सआदत खां) उसके पुत्र कमरुद्दीन खां और खान दौरान को ऊँचे पद दिये। इसी सआदतखां को बाद में बुरहान मुल्क की उपाधि दी गई। सआदत खां ने आगरा में दो वर्ष तक राज्य किया,^२ परन्तु असफल रहने के कारण सन् १७२२ (सं० १७७८) में राजा जयसिंह कछवाहा को आगरा का गवर्नर बना दिया गया।^३

सन् १७३६ (सं० १७९५) में सआदत खां ने आत्महत्या करली और इसके पश्चात् अवध में सफ़्दरजंग राजा हुआ।^४

सफ़्दरजंग के पश्चात् सं० १८१० में उसका पुत्र गुजाउद्दौला, सं० १८३२ में उसका पुत्र आसफ़ुद्दौला, अवध का शासक हुआ।^५ इनके अर्थमन्त्री टिकितराय बड़े गुणग्राही थे। टिकितराय के आश्रित कवियों और उनके कविता प्रेम का प्रमाण प्राप्त हो चुका है।^६ सं० १९१३ तक वाजिदअलीशाह (अमजदअली का पुत्र) राजा रहा। वह बड़ा विलासी था, परन्तु इसने अनेक कलाकारों, कवियों, संगीतज्ञों आदि को अपने यहाँ आश्रय दिया जिससे उसके समय में साहित्य निर्माण को प्रोत्साहन मिला।^७

अवध में सन् १७८३ (सं० १८३६) के आसपास नागाओं के शासक उमरावगिरि और अनूपगिरि थे। जिनमें से अनूपगिरि, हिम्मतबहादुर के नाम से प्रसिद्ध हैं।^८ इनके आश्रय में कई कवि हुए। वह स्वयं भी कविता प्रेमी थे।^९ इनके पश्चात् गुरुदत्तसिंह, इनके पुत्र दूगपालसिंह, हरचंदसिंह, दलपतशाह और अर्जुनसिंह क्रमशः अमेठी के राजा हुए।^{१०} ये सभी किसी न किसी कवि के आश्रयदाता रहे हैं।

१. The Cambridge History of India, by Lt. Col. Sir W. Haig and Sir Richard Burn, Vol. IV. The Mughal Period. p. 341-342.

२. The Crescent in India. A study in Medieval History. S. R. Sharma. p. 729.

३. Ibid, p. 730.

४. Ibid, p. 731.

५. अवध के कवि—डा० ब्रजकिशोर मिश्र, पृ० १२।

६. वही, पृ० १३।

७. अवध के कवि—डा० ब्रजकिशोर मिश्र, पृ० १५।

८. Fall of the Mughal Empire, Vol. III. J. N. Sarkar, p. 221.

९. अवध के कवि—डा० ब्रजकिशोर मिश्र, पृ० १६।

१०. वही, पृ० १६।

देहली में इस समय अनर्थ और अनाचार हो रहे थे।^१

सन् १७२४ (सं० १७८०) में अमर्यासिंह ने अपने पिता, जोधपुर के महाराजा अजितसिंह को मार कर गद्दी ले ली और गुजरात का वायसराय बन गया। इस प्रकार मराठों के, राजपूतों के और मुगलों के एक-दूसरे पर आधिपत्य पाने के लिए निरन्तर युद्ध होते रहे।^२ इसके पश्चात् अमर्यासिंह गुजरात को रतनसिंह भंडारी के हाथ में छोड़कर स्वयं जोधपुर चला गया। परन्तु स्थिति और भी शोचनीय हो गई और सन् १७३५ (सं० १७९१) से गुजरात, मराठों के हाथ में चला गया।^३

मुहम्मदशाह के पश्चात् अहमदशाह ने सन् १७४८-५४ ई० (सं० १८०४-१८१०) तक, आलमगीर द्वितीय ने सन् १७५४ से १७५९ ई० (सं० १८१०-१८१५) तक शाह आलम द्वितीय ने १७५९ से १८०६ ई० (सं० १८१५ से १८६२) तक, अकबर द्वितीय ने सन् १८०६ से १८३७ ई० (सं० १८६२ से १८९३) तक और बहादुरशाह द्वितीय ने सन् १८३७ से १८५७ ई० (सं० १८९३ से १९१३) तक राज्य किया।^४

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण को देखने से यह ज्ञात होता है कि उस समय कोई केन्द्रीय सत्ता ऐसी नहीं थी जो देश में सुव्यवस्था और सुशासन उत्पन्न कर सकती, अतः सारे सामंत एक-दूसरे से युद्ध करते हुए अशांत जीवन व्यतीत करते थे, उनका शासनकाल अल्पस्थायी था, उसमें थोड़ा बहुत अवकाश पाने पर वे मनोरंजन चाहते थे, फलतः काव्य और संगीत उनकी इच्छा की पूर्ति तत्काल करने में समर्थ होते थे। यही कारण है कि उनके निकट कलाकारों की बड़ी संख्या एकत्र रहती थी।

परन्तु सभी शासक न केवल कलाकारों के आश्रयदाता रहे, वरन् स्वयं भी काव्य और संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। रफीउद्दशान एक अच्छा लेखक और संगीत-प्रेमी था।^५ मुहम्मदशाह स्वयं एक अच्छा ख्याल गायक था। मुहम्मदशाह के समय में ही नादिरशाह का

१. "Corruption at court had reached a climax." The Cambridge History of India by Lt. Col. W. Haig and Sir Richard Burn, Vol. IV. p. 351.
२. "Such acts of rebellion had become almost matters of course in the condition of feebleness to which the central Government had fallen." The Cambridge History of India, by Haig and Burn, Vol. IV, p. 352.
३. The Crescent in India. A study in medieval History by S. R. Sharma, p. 733.
४. Ibid, p. 693.
५. "Rafiu-sh-shan, the private companion and favourite of his father (Bahadur Shah) was a prince of quick parts, a great proficient in religious learning, a fine writer, with much knowledge in law, but at the same time addicted to pleasure, particularly fond of music, and the pomp of courtly show." The Crescent in India, S. R. Sharma, p. 695.

आक्रमण हुआ ।^१ वह सत्तावन दिन भारत में रहकर, फिर मुहम्मदशाह को राजा बनाकर अपने देश चला गया था ।^२ अहमदशाह (मुहम्मदशाह का पुत्र) विलासी और मनोरंजन प्रेमी था ।^३

इस प्रकार हम देखते हैं कि शाहजहाँ के समय में कलाओं को शासकों के कलाप्रेम के कारण प्रोत्साहन मिला । औरंगजेब की कट्टरता के कारण, उसके राज्य से हटकर, सामंतों और रियासतों के आश्रय में संगीत फला-फूला । उसके पश्चात् के राजाओं की विलासप्रियता के कारण कलाओं को उत्साह मिला । किसी न किसी कारणवश संगीत के लिए यही समय सर्वोपयुक्त हुआ और संगीत कला की उन्नति इस काल में अत्यधिक हुई । अतः, शृंगार युगीन संगीत-काव्य की विस्तार सीमा शाहजहाँ के अन्तिम काल से लेकर बहादुरशाह द्वितीय तक रखी जा सकती है ।

‘शृंगार-युग, नाम की उपयुक्तता तथा युग की ऐतिहासिक सीमा पर विचार करने के पश्चात् ‘संगीत-काव्य’ पर भी दो शब्द कहने उचित होंगे ।

डा० सावित्री सिन्हा ने अपने शोध प्रबन्ध में बताया है कि काव्य में संगीत के तत्त्वों का समावेश दो रूपों में होता है । (१) आन्तरिक संगीत के रूप में (२) बाह्य संगीत के रूप में ।^४ आन्तरिक संगीत के अंतर्गत वर्ण-संगीत, शब्द के संगीत, लय और तुक इत्यादि तत्त्व आते हैं ।^५ बाह्य संगीत के डा० सिन्हा ने पाँच तत्त्व माने हैं ।^६

१—काव्य में संगीत के अनुकूल लय की योजना

२—काव्य में संगीत-शैलियों का प्रयोग

३—काव्य में राग-रागिनियों, नृत्य-रूपों तथा तालों का प्रयोग

४—काव्य में संगीत की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग

५—छंद-विधान

शृंगार युगीन काव्य-सामग्री में संगीत के आन्तरिक तथा बाह्य दोनों रूपों का समावेश हो गया है, अतः प्रस्तुत सामग्री ‘संगीत-काव्य’ के नाम से विभूषित की गई है ।

१. “The famous invasion of Nadir Shah took place during this reign (Muhammad Shah’s)” The crescent in India, S. R. Sharma, p. 698.

२. “Nadir Shah before his departure on May 5, 1739 (Sam. 1795) placed the crown of Hindustan on the head of Muhammad Shah and tied a jewelled sword round his waist,” The Crescent in India, by S.R. Sharma, p. 742.

३. “He gave himself upto useless pursuits, to pleasure and enjoyment,” says the Tarikhi-i-Alamgir Sani,” The Crescent in India by S. R. Sharma, p. 699.

४. ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, डा० सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, १९६१, पृ० ३४६ ।

५. वही, पृ० ३४७ ।

६. वही, पृ० ३४८ ।

ऋषभ

संगीत-काव्य की परम्परा

शृंगार युगीन संगीत-काव्य का विवेचन करने के पूर्व संगीत-काव्य की परंपरा का संक्षिप्त उल्लेख करना उचित होगा। शृंगार-युग से पूर्व रचित संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी की संगीत विषयक रचनाएँ, आलोच्य युग में प्राप्त सामग्री की पृष्ठभूमि निश्चित करने में सहायक होंगी।

शृंगार युगीन संगीत विषयक सामग्री पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि शास्त्रीय संगीत के ग्रंथों के निर्माण में शृंगार युग तक प्राचीन परंपराओं का पालन किया गया है। संगीत-काव्य की परंपराओं को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। संस्कृत, अपभ्रंश आदि में लिखे गये ग्रंथ तथा हिन्दी में लिखे गए ग्रंथ। संस्कृत ग्रंथों के आधार पर संगीत का प्रारंभ खोजने के लिए दो दृष्टिकोण बनाए जा सकते हैं। प्रथम पौराणिक तथा द्वितीय ऐतिहासिक। पौराणिक उल्लेखों के अनुसार संगीत के प्रारंभ के विषय में दो मत प्रसिद्ध हैं। सदाशिव मत तथा ब्रह्मामृत।

सदाशिव सम्प्रदाय के अनुसार संगीत के सर्व प्रथम ज्ञाता शिव थे। 'भाव-प्रकाशन' के अनुसार मनु सूर्य से विश्रान्ति प्राप्त करने के हेतु प्रश्न करते हैं, सूर्य ब्रह्मा से नाट्यवेद की प्राप्ति के लिए कहते हैं, तथा ब्रह्मा विष्णु के पास जाते हैं। विष्णु ब्रह्मा को अम्बिकापति शिव के पास भेजते हैं। शिव अपने शिष्य नंदिकेश्वर को आज्ञा देते हैं कि वह ब्रह्मा को नाट्यवेद का अध्यापन करें। लोटते समय ब्रह्मा के प्रयोक्ता का स्मरण करने पर पाँच शिष्यों से युक्त मुनि उपस्थित होते हैं। वही प्रसिद्ध पाँच भरत हैं।^१ इस प्रकार नाट्यवेद (जिसमें संगीत सम्मिलित है) के प्रथम रचयिता शिव हैं।

-
१. पुरा मनुसंहिपालः सप्तद्वीपवर्ती भुवम् ।
 पालयन्दुर्भरेणास्या भारेण श्रान्त चेतनः ॥
 केनास्य भूमिभारस्य विश्रान्ति सुख माप्नुयाम् ।
 इति संचिन्त्य पितरं सवितारमुदेक्षत ॥
 तदेवाभ्यागमत्तत्र भास्करः पुत्रवत्सलः ।
 मनुर्न्यवेदयत्तस्मै भूभारक्लेशमात्मनः ॥
 स मनर्भारखिलस्य विश्रामोपायमब्रवीत् ।
 पुरा दुग्धाब्धिनाथस्य नाभिकमलसम्भवः ॥
 ब्रह्माऽसृजदिमान् लोकान् जंगमस्थावरात्मकान् ।

ब्रह्मा मत के अनुसार भरत ब्रह्मा के शिष्य हैं। भरत मुनि ने लिखा है कि एक दिन ब्रह्मा देवताओं समेत शिव के सामने जाकर भरतादि से 'त्रिपुरदाह' नाटक का अभिनय कराते हैं। शंकर प्रसन्न होकर अपना नृत्य तांडु द्वारा भरत को सिखवाते हैं।^१ इस दृष्टि से नाटक के सर्व प्रथम रचयिता ब्रह्मा हुए।

एतेषां पालनायासव्यापारपरिखेदितः ॥
 विश्रान्तिं सुखमन्विच्छन्नुपागच्छच्छ्रियः पतिम् ।
 प्रजापालनखेदस्य विश्रामाय व्यजिज्ञिपत् ॥
 अचिन्तयद्देव देवः श्रान्तं वीक्ष्यात्मसम्भवम् ।
 केनेवास्य विनोदेन विश्रामः सम्भवेदिति ॥
 विचिन्त्य भावं स्वक्षेत्र भाविनं विधिमब्रवीत् ।
 गच्छ ब्रह्मन् पुरारामिभ्यवापतिमीश्वरम् ॥
 स ते विश्रान्तिं सुखदमुपायमुपदेक्ष्यात् ।
 इत्थमाज्ञा पितो ब्रह्मा देव देवमुमापतिम् ॥
 अभिष्टयात्मनः खेदं सर्वं तस्मै व्यजिज्ञिपत् ।
 विज्ञाय शम्भुस्तत्खेदं नन्दिकेश्वरमभ्यधात् ॥
 मत्सकाशादधीतं त्वं नाट्यवेदमशेषतः ।
 अद्यापयैनं ब्रह्माणं सप्रयोगं सविस्तरम् ॥
 स तथेत्यव्ज जन्मानमध्यापयदशेषतः ।
 अध्याप्यावोचदे तस्य वेदस्यैव प्रयोगतः ॥
 जगतां पालनायासविश्रान्तिसुखामानुहि ।
 इत्थं स नन्दिनाऽऽज्ञप्तः समागम्य स्वमन्दिरम् ॥
 नाट्यवेद प्रयोक्तारं भारती सहितो ऽस्मरत् ।
 स्मृत मात्रे मुनिः कश्चिच्छिष्यैः पञ्चभिरन्वितः ॥
 पुरोऽवतस्थे भारत्या सहितस्याव्ज जन्मनः ।
 तानब्रवीन्नाट्यवेदं भरतेति पितामहः ॥

भाव-प्रकाशन, शारदा तनय, संपादक, बी० भट्टाचार्य, सन् १९३०, पृ० २८४-२८५ ।

१. कस्य चित् वध कालस्य मामाहाम्बुज संभवः ।
 नाट्यं संदर्शयामऽथ त्रिनेत्राय महात्मने ॥५॥
 ततः सार्धं सुरेर्गत्वा वृषभांक निवेशनम् ।
 समभ्यर्च्य शिवं पश्चादुवाचेदं पितामहः ॥६॥

X

X

X

पूर्वरंगे कृते पूर्वं तत्रायं द्विजसप्तमाः ।

तथा त्रिपुरदाहश्च डिमसंज्ञः प्रयोजितः ॥१०॥

X

X

X

कथाओं के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि नाटक के साथ ही संगीत की उत्पत्ति हुई। शिवमत तथा ब्रह्ममत के अतिरिक्त हनुमतत तथा नारदमत आदि अन्य मत भी प्रसिद्ध हैं। वास्तव में मतभेद केवल राग और रागिनियों के विभाजन के सम्बन्ध में है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर सर्व प्रथम संगीत संबंधी उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। सामवेद के तीन स्वर उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित मूल स्वर हैं। इन तीन स्वरों का स्थान सप्त स्वरों में कहाँ होना चाहिए, यह विवादास्पद विषय है। सामवेद इस विषय में मौन है। स्वामी प्रज्ञानन्द ने इन तीन स्वरों को क्रमशः तार सप्तक, मन्द्र सप्तक तथा मध्य सप्तक माना है।^१

कुछ विद्वान् उसे क्रमशः 'रे' 'नि' 'स' मानते हैं, क्योंकि मुख्य रूप से ये तीन स्वर पठन के लिए प्रयुक्त होते थे। पठन में ध्वनि की उच्चता तथा निम्नता 'स' तथा 'रे' अथवा 'स' तथा 'नि' से अधिक नहीं होनी चाहिए। कुछ विद्वान् स, म और प को मूल स्वर मानकर इन तीनों ध्वनियों का स्थान निर्धारण करते हैं। यह निश्चित है कि ऊँचा स्वर उदात्त, नीचा स्वर अनुदात्त तथा उदात्त से अनुदात्त स्वर तक पहुँचने में बीच की ध्वनि स्वरित कहलाती थी।^२ इतना तो कहा ही जा सकता है कि वेद पाठ जब स्वरों के आरोहण तथा अवरोहण के विशेष क्रम के साथ किया जाता था, तब उसमें माधुर्य की सृष्टि स्वतः हो जाती थी, तथा वेद पाठ अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता था। यही कारण था कि वेदों में विशेष रूप से पठन

मयापीदं स्मृतं नृत्यं संध्याकालेषु नृत्यता ।

नानाकरण संयुक्तेरंगहारैर्विभूषितम् ॥१३॥

प्रयोगमंगहाराणामाचक्ष्य सुर सप्तम ।

ततस्तण्डु समाह्य प्रोक्तवान्भुवनेश्वरः ॥१७॥

प्रयोगमंगहाराणामाचक्ष्य भरताय वै ।

ततो ये तण्डुना प्रोक्तास्त्वंगहारा महात्मना ॥१८॥

नाट्यशास्त्र, भरत मुनि, प्रकाशक, सत्यभामा बाई पांडुरंग, द्वितीय संस्करण, सन् १९४३, पृ० ३५।

1. "The expert singers and chanters of the Vedic age knew fully well the specific laws and methods of application of the three registers: bass, medium and high i.e., Mandra, Madhya, and tāra. The three ancient register notes or sthānsvaras, raised, not raised and balancing circumflex, i.e., Uddāṭta, Anudāṭta and Svarit came to be used as singing voices". Historical Development of Indian Music, Swami Prajñanand. p. 64.

२. "उच्चैरुदात्तः १।२।२९॥

नीचैरनुदात्तः १।२।३०॥

समाहारः स्वरितः १।२।३१" सिद्धांत कौमुदी, पाणिनि।

आवश्यक था। यहीं, संगीत स्वरों की उत्पत्ति हो जाती है।^१ इस प्रकार वैदिक काल से (३००० से ४००० ईसा-पूर्व तक) संगीत का मूल माना जा सकता है। नारद की 'नारदीय शिक्षा' में सामवेद की शिक्षा बताई गई है, जिसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना तथा सप्त मुख्य रागों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त सामवेद के सप्त स्वर, लौकिक संगीत के सप्त स्वर तथा दूसरे वेदों के स्वरों में परस्पर सम्बन्ध बताया है। सामवेद के सप्त स्वरों का नाम ऋष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार है। यह अवरोहण क्रम है। लौकिक स्वरों में इसे 'म ग रि स नि ध प' कहा जाएगा।

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र संगीत के सभी सिद्धान्तों की विवेचना करता है। यद्यपि 'काल गति से भरतकालीन संगीत में कुछ अन्तर आ गया और उन्होंने इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह दुर्बोध होने लगा।'^२ इनके विचारों को स्पष्ट करने के लिए मतंग, नान्यदेव, अभिनव गुप्त, कुम्भ और शाङ्गदेव आदि विद्वानों ने ग्रन्थ लिखे।^३ दुर्गम होने पर भी परिश्रम करके श्री कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने अपने ग्रन्थ 'भरत का संगीत सिद्धान्त' में भरत के संगीत-सिद्धान्तों को स्पष्ट किया है।^४

सन् १२०० ई० अथवा सं० १२५६ में शाङ्गदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ का निर्माण किया। श्री सी० कुन्हन राजा ने इस ग्रंथ की सात संस्कृत टीकाओं का उल्लेख किया है।^५ इनके अतिरिक्त एक हिन्दी की टीका है, जो कवि गंगाराम ने लिखी है।

शाङ्गदेव के परवर्ती संगीत-काव्यकारों में तेरहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी तक अन्य कवियों में ज्याय सेनापति, महाराणा हम्मीर, अल्लराज, पादवंदेव, गोपाल नायक, श्रृंगार शेखर, शम्भुराज, मदनपाल, भुवनानन्द, देवेन्द्रभट्ट, भट्ट माधव, विप्रदास, वेम, सिगणायं, सिंहभूपाल, देवनभट्ट तथा कल्लिनाथ का भी उल्लेख प्राप्त होता है।^६ श्री के० वासुदेव शास्त्री के अनुसार उत्तर भारतीय संगीत तथा कर्णाटक संगीत पर पृथक्-पृथक् सत्रहवीं शताब्दी तक जो पुस्तकें लिखी गईं, उनकी सूची इस प्रकार है।

उत्तर भारतीय संगीत पर लिखे गए ग्रन्थों में प्रमुख १—रागार्णव, २—गन्धर्वराज कृत 'राग-रत्नाकर', ३—पुण्डरीक विट्ठल कृत नर्तन निर्णय, ४—सोमेश कृत 'मानसोल्लास',

1. "Taking their cue from the rise and fall in the voice of the day-to-day speech, the early Aryans must have begun to chant the words of the texts to a fluid rise and fall of the voice. Thus, the early singing came to pivot around the two notes, Udatta and Anudatta (not raised) which represent the two main pitches of the speaking voice". The story of Indian Music. O. Goswami,
2. ठाकुर जयदेव सिंह की भूमिका, भरत का संगीत-सिद्धान्त, कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, पृ० ७।
3. वही, पृ० ८।
4. प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।
5. भूमिका, संगीत-रत्नाकर, शाङ्गदेव, संपादक पं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, भाग १।
6. भारत का संगीत-सिद्धान्त, कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, पृ० ३०४-३१४।

१. संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, पृ० ६ ।
२. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर ।
३. 'संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय में प्रमाण स्वरूप उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं ।
४. "रत्ननाकर की रीत लख वरनत सकल सुजान ।"

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

संस्कृत ग्रन्थों के पश्चात् अपभ्रंश काव्य में संगीत-काव्य की धारा प्रवाहित रही। उसका रूप शास्त्रीय से कुछ हटकर व्यावहारिक हो गया। वास्तव में संगीत को जन-मात्र के निकट लाने का श्रेय इसी साहित्य को दिया जाना चाहिए। अपभ्रंश साहित्य में सिद्ध तथा नाथ साहित्य तथा आगे चलकर जैन साहित्य हिन्दी में विशिष्टांग निरूपक ग्रन्थों तथा व्यावहारिक संगीत-काव्य को जन्म देने का कारण बने। 'अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत सिद्धों के आदि कवि सरहपा (७६० ई०) की कायकोष अमृत वज्रगीत, चित्तकोप अज वज्रगीत, चर्यागीत, सरहपाद आदि गीति रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनके वर्ण्य-विषय रहस्यवाद, तथा सहजमार्ग उपदेश आदि हैं। गीत-तत्त्वों की दृष्टि से इनमें चिन्तन प्रधान अनुभवों की सरल, सहज और तीव्र भावाभिव्यञ्जना है। इसी परंपरा में शवरपा, मसुकपा, लुइपा, विरुपा, डोंबिपा, दारिकपा, मुँडरिपा, कमरिपा, कन्हपा आदि कवियों के गीत भी मिलते हैं। संगीत की दृष्टि से इनमें नए नए राग—यथा पटमंजरी, कामोद, मल्लारी, बंगाल, गवड़ा, धनसी, ग्रहण, देव श्री, रामश्री आदि मिलते हैं।

सिद्धों से ही सम्बन्धित मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ-पंथी साहित्य में भी गीति-काव्य का सहज उन्मेष दिखाई देता है। गोरखनाथ की सबदी लोक गीतों की धुन में है। सबदी से भिन्न उनके पद भी प्राप्त होते हैं, जो परवर्ती कबीर, दादू आदि संतों के आदर्श बने।^१

उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार हम देखते हैं कि सिद्धों तथा नाथों के साहित्य में व्यावहारिक संगीत को प्रथम देने के सभी तत्त्व थे। उन्हीं के प्रचार के कारण कवियों में रागवद्ध गीत लिखने का प्रचार बढ़ा। रागों का नाम अधिकतर संस्कृत काव्य से ही लिया गया था। कुछ नवीन राग अवश्य प्रचार में आए, जिसका कारण गोरखनाथ की संगीत-ज्ञान दक्षता जान पड़ती है। इसका प्रमाण हिंदी की लिखी गई कुछ रागमालाओं में प्राप्त होता है, जहाँ कवि स्पष्ट रूप से लिखता है कि अमुक राग गोरखनाथ की बनाई हुई है।

‘केदार सुध इमन ए तीनुं मिले तो हमीर कहिए ए रागिणी गोरखनाथे बनावी छै।’^२

अधिकतर गोरखनाथ के नाम से संबद्ध मिश्रित रागिणी ही प्राप्त होती है। यह स्वाभाविक ही है कि पदों को गाते समय भिन्न रागों का मिश्रण हो जाये और उसको नवीन नाम दे दिया जाए। इसी परंपरा में आगे चलकर भक्ति काल तथा शृंगार युग में राग वद्ध पद, चर्चरी, वारामासा, फाग, भूला आदि लिखे गए। केवल इतना अन्तर हो गया कि शृंगार युग में आध्यात्मिक संकेत समाप्त हो गया, गीत-तत्त्व शेष रह गया।

सिद्ध कवियों के चर्यागीतों में राग-रागिनियों का प्रयोग प्राप्त होता है, जिससे इनका संगीत-ज्ञान प्रमाणित हो जाता है। 'सहजयान की चर्या में गीतों की शैली विशेष रूप से प्रयुक्त है। ये चर्यागीत विशिष्ट राग-रागिनियों में लिखे गए हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि राग-रागिनियों का संकेत स्वयं सिद्धों द्वारा हुआ है

१. प्रसाद के प्रगीत, गणेश खरे, पृ० ३६।

२. रागसागर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

अथवा वाद में जोड़ दिया गया है। संभावना तो यही है कि स्वयं सिद्धों द्वारा यह उल्लेख हुआ होगा क्योंकि सिद्धों में संगीत-साधना की रुचि भी थी। सिद्ध परंपरा में एक सिद्ध है, जिनका नाम बीणापा है। इसके संबंध में यह उल्लेख है कि ये बीणा बजाते हुए अपने पदों का गान किया करते थे।^१

सिद्ध तथा नाथ साहित्य के साथ ही साथ जैन ग्रंथों ने संगीत-काव्य की धारा को आगे बढ़ाया। विशेष रूप से हिंदी में लिखी गई राग मालाओं का जन्म जैन रागमालाओं से माना जा सकता है। इस प्रकार दसवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक संगीत-काव्य अपभ्रंश भाषा तथा अपभ्रंश मिश्रित हिंदी में पल्लवित होता रहा।

विशिष्टांग निरूपक ग्रंथों के अंतर्गत लिखी गई राग-मालाओं में रागों का स्वरूप-शृंगारवर्णन करने का अधिक प्रचलन रहा है। संस्कृत ग्रंथों में ऐसा वर्णन दामोदर पंडित के 'संगीत-दर्पण' में प्राप्त होता है, जो सत्रहवीं शताब्दी का ग्रंथ है।^२ रागमालाओं की परंपरा 'संगीत-दर्पण' से ही माननी उचित होगी। डा० उषा गुप्ता ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिंदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत' में राग मालाओं का प्रारंभ हरिराम जी व्यास कृत 'रागमाला' से माना है।^३ मेरे विचार से ऐसा कहना 'अमपूर्ण' है।

एक रागमाला स्वयं श्री हितहरिवंश जी के संग्रह के साथ लिखी हुई प्राप्त होती है।^४ इसके अनुसार ऐसी संभावना जान पड़ती है कि हितहरिवंश ने स्वयं 'रागमाला' लिखी है। ऐसी दशा में हरिराम व्यास से पूर्व की एक यह कृति प्राप्त हो जाती है। हित हरिवंश का समय सं० १५५६ तथा हरिराम व्यास जी का जन्म सं० १६२० है।^५ उक्त रागमाला का एक अंश यहां उद्धृत है।

‘प्रारंभ—

सुनो राग अब रागिनी हित सौ चित्त द्वै कांन ।

ता मध सुर जो मूल हैं कर हौं प्रथम वर्षान ।

पर्ज रिषम गंधार पुन मध्यम पंचम जान

धैवत और निषाद है सातों सुर पहिचान ।^६

यह संभव हो सकता है कि यह रागमाला, व्यास जी कृत हो। शोध करने पर ही निश्चित रूप से ऐसा कहा जा सकता है।

१. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, चतुर्थ संस्करण पृ० ६६।
२. संगीत-दर्पण, दामोदर पंडित, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, संयुक्त प्रदेश, पृ० २, प्रथम संस्करण, १९५० ई०।
३. हिंदी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, उषा गुप्ता, पृ० ११७।
४. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
५. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, १२वां संस्करण, पृ० १६६ तथा पृ० १७४।
६. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

रागमालाओं की परंपरा हमें दो वाराओं में प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है।
१-जैन रागमालाएँ २-हिंदी रागमालाएँ।

जैन रागमालाएँ यद्यपि विषय की दृष्टि से भिन्न जान पड़ती हैं, परंतु जैन कवियों में रागबद्ध पदों की रचना करने का प्रचलन रहा है। जैन मुनि संगीत का ज्ञान भी अधिक मात्रा में रखते थे, ऐसा उनके ग्रंथों का अवलोकन करने से विदित होता है। दूसरा प्रमाण यह है कि रागमालाएँ जितनी संख्या में जैन संग्रहालयों में प्राप्त होती हैं, उतनी अन्यत्र नहीं। इसका कारण यही है कि जैन मुनियों में रागमालाएँ लिखने का बड़ा प्रचार था। कवि अपने किसी तीर्थंकर का यश वर्णन करते समय राग तथा रागिनियों में बाँधकर काव्य-रचना करता था, तथा ग्रंथ का नाम 'पाखंडनाथ रागमाला मय स्तवन' अथवा 'नेमीश्वर रागमाला मय स्तवन' आदि रख दिया करता था। जैन कवियों की संगीत-प्रियता असंदिग्ध है। अपनी सभी काव्य-कृतियों को ये कवि किसी न किसी प्रकार रागों अथवा गीतों में बाँधकर गाया भी करते थे, अतः उसी रूप में रचनाएँ प्राप्त होती हैं। 'रागमाला के अतिरिक्त, गीत, रास तथा वारामासा, सभी प्रचलित गायन शैलियाँ थी, जिनमें बाँध कर इनके ग्रंथ प्रस्तुत किए जाते थे। ऐसे ग्रंथों की संख्या बहुत अधिक है। 'प्रास्ताविक गीत', 'उत्तराध्ययन गीत', 'चेतन सुमति गीत', 'अजापुत्र रास', 'सिद्धचक्र रास', 'जंबूस्वामी रास', 'नेम राजुल वारामासा', 'राधा विलाप वारामासा', 'राधिका विरह वारामासा', आदि के नाम से जैन ग्रंथ लिखे जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य लोकगीतों की प्रणाली पर कविता की रचना की जाती थी, उदाहरण के लिए, फाग चर्चरी तथा हिंडोलणा आदि के लिए लिखे गए गीत, गेय काव्य हैं। जैन संप्रदाय में गायन इतना अधिक प्रचलित था कि गीतकारों ने स्वरलिपि समझाने के लिए प्रसिद्ध प्रचलित गीतों की पंक्तियों का निर्देश करके बताया है कि अमुक पंक्ति के अनुसार इसको गाया जाएगा। स्वर-लिपि के लिए 'ढाल' शब्द का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण के लिए, कवि मेघ कुमार का 'हींडोलणा' है, जिसका राग-निर्देशन कवि ढाल को बताकर करता है,

'काची कली अनार की रे हां ए ढाल।

चरित लेई चीतवे रे हां। मन में मेघ कुमार।

दीक्षा दोहिली सिरताई पग की लगी रे हां।

कादि आवे करतार। दीक्षा।'

आदि।

इन ढालों का इतना अधिक प्रचार था कि कहीं कहीं केवल ढालों की सूची मात्र कवि ने गिनाई है।

'ढाल १-सुणि सुणि २ वाल हाए हनी जाति

२-मन मधु करनी बाह समायो बाहु जी जिम

मो मन धिर थाय जिण तिण बाह बिलंबता

मान महातम जाय रे।

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३-आज न दीजो रे दीसै नाह लो एहनी ।

४-नणदल री

५-ढाल मारू

६-ढाल मुजु गुरु म्हारो नी०^{१३} आदि ।

इस प्रकार से हम देखते हैं, जैन ग्रंथों में संगीत-काव्य का बड़ा प्रचार था । हिंदी में रागमालाओं की रचना को प्रेरित करने का श्रेय इनको दिया जा सकता है । अपभ्रंश तथा प्राकृत साहित्य के अतिरिक्त हिंदी अथवा प्रादेशिक बोलियों में अनेक जैन राग-मालाएँ लिखी गई । एक उदाहरण जैन रागमाला का यहाँ दिया जाता है ।

‘राग आसाउरी ।

वेली नी देशी ।

अनुक्रमइं गरभ धरंति बाला ।

चालि चलइ चमकंती ।

भज गय गमणी रमणी पणी ।

नमणी भू निरपंती ।

निज गति सार मराली वाली ।

गाली निज बहु मान

मान सरोवर दूर जई नई ।

जल सेवइं इक तांन ।

पूरण मास पास नव ऊपरि

अधिकहु आदि न साथ ।

श्रावण सुदि पंच मीइं जनम्या ।

आसाउरी व्योष्यात ।१५। ढाल ६ ।

राग वसंत

विण एक नरग निवासी जीवा ।

सूपीय थया विहसंत ।

समुद्र विजय सिवा देवी राणी ।

हरष्या यार वसंत ।१६। ढाल ७ ।

राग देशध

प्रथम पूरव दिसइं । ए देशी ।

तेह रयणी भली ।

छपन्न कुमरी मली ।

जइ नमइ शिवा देवी मात नइए ।

सूति करम करी ।

हरष चितमा धरी ।

आई निज ठाम देशध सू ए ।१७। ढाल ८ ।

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

इस प्रकार संपूर्ण काव्य में भिन्न रागों में, कवि कथा कहता जाता है तथा साथ ही राग के नाम का प्रयोग कर चमत्कार भी उत्पन्न करता जाता है। इसी का नाम रागमाला रखता है। इस दृष्टि से हिंदी रागमालाएँ विषय में संस्कृत ग्रंथों से प्रभावित हैं, परन्तु शैली में जैन रागमालाओं से स्पष्ट रूप से प्रभावित लक्षित होती हैं। वास्तव में शैली विशेष ने ही रागमालाओं का स्थान अन्य संगीत-ग्रंथों से पृथक् कर दिया है, अतः जैन रागमालाओं में हिंदी रागमालाओं का मूल मानना उचित होगा।

हिंदी साहित्य में चौदहवीं शताब्दी में अमीरखुसरो का प्रवेश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने ईरानी तथा भारतीय संगीत का सम्मिश्रण कर संगीत के व्यावहारिक पक्ष को जितना समृद्ध किया, उतना ही संगीत-साहित्य को।

अमीर-खुसरो की रचनाएँ उर्दू अथवा फ़ारसी लिपि में लिखी गई हैं, अतः हिंदी तथा भारतीय संगीत के विद्यार्थियों को उनका संपूर्ण परिचय प्राप्त नहीं हो सका है। खुसरो प्रतिभावान व्यक्ति था तथा उसका ज्ञान विविध दिशाओं में विखरा हुआ था। जहाँ तक संगीत-विद्या के ज्ञान का संबंध है, वह ईरानी संगीत का ज्ञाता था तथा भारतीय संगीत का अध्ययन उसने भारत में किया था, अतः उसने दोनों प्रकार के संगीत पर तुलनात्मक ग्रंथ लिखे हैं।^१

भक्तिकाल में कृष्ण-भक्त कवियों ने संगीत-काव्य का निर्माण किया। सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, कृष्णदास, नंददास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीत स्वामी, गदाधर भट्ट, सूरदास, मदन मोहन, हित हरिवंश, हरिराम व्यास, हरिदास स्वामी, विट्ठल विपुल, विहारिनदास, श्री भट्ट, परशुराम, मीराबाई, राजा आसकरण, गंगा, खाल ने संगीत-मय साहित्य की रचना की। इससे व्यावहारिक संगीत-काव्य की सृष्टि हुई। भक्तिकालीन सैद्धांतिक संगीत-काव्य अभी शोध की अपेक्षा रखता है, अतः उस विषय में यहाँ अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता है, इस विषय पर केवल दो एक रचनाएँ प्राप्त हैं।

‘१७१६ ई० में मुहम्मदशाह बादशाह के काल में ‘अदरंग’ तथा ‘सदरंग’ दो बहुत प्रसिद्ध गायक थे।^२ इनके फुटकर पद तथा गीत प्राप्त होते हैं। अधिकांशतः संगीतज्ञों में प्रचलित हैं। १८१३ ई० में पटना के मुहम्मद रजा ने ‘नगमाते आसफ़ी’ नामक ग्रंथ लिखा।^३

सारांश यह है कि वैदिक काल से चली आ रही संगीत-काव्य-सरिता निरंतर प्रवाहित रही, यद्यपि धारा का प्रवाह कहीं अधिक वेग-पूर्ण, कहीं अवरुद्ध होता हुआ चलता रहा। शृंगार-युग में आकर संगीत के सभी पक्ष प्रबल हो गए। देश की तत्कालीन राजनीतिक दशा को देखकर साहित्यकारों में संगीत के मृतप्राय होने की आशंका फैली, परन्तु संगीत विषयक प्रचुर सामग्री को देखकर यह आशंका निर्मूल सिद्ध हो जाती है।

१. भारतीय संगीत का विकास, श्री जयदेवसिंह, विक्रम स्मृति ग्रंथ, २००१, पृ० ७६३।

२. वही।

३. स्टेट लाइब्रेरी, हैदराबाद।

गांधार

शृंगार-युगीन परिस्थितियाँ और संगीत-कला

राजनैतिक परिस्थितियाँ

भारत के इतिहास का अध्ययन करने पर पता चलता है कि मुगल कालीन राज-नीतिक परिस्थितियाँ कला को ऊँचा उठाने में कितनी सहायक सिद्ध हुईं। “मुगल-काल में समाज सामंतवादी आचार पर संगठित था, जिसमें बादशाह सर्व प्रधान था। बादशाह के नीचे शासकीय सामंत थे, जिनके विशिष्ट अधिकार, सुविधाएँ एवं सम्माननीय पद होते थे। यह सामंत वर्ग इच्छानुकूल शासन चलाता था।...सामंत लोग धन, द्रव्य और सुख सुविधाओं में डूबे रहते थे और घनाढ्य लोग अपने पास साधनों की प्रचुरता के कारण भोग-विलास, ऐश्वर्य और मद्यपान में संलग्न रहते थे। मुगल पदाधिकारी भी आमोद-प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत करते थे। भोग-विलास से परिपूर्ण जीवन, मुगल राज-दरबार और मुगल युग के सम्मान के लिए एक आवश्यक वस्तु थी। उच्च वर्गों के वस्त्र, भोजन और जीवन-निर्वाह एवं रहन-सहन में भी विलासिता की आभा झलकती थी।”^१ शाहजहाँ के समय तक मुगल कालीन समाज की स्थिति ठीक ऐसी ही थी। सामंतगण अधिकतर राजसी ढंग का अनुकरण करते चले जाते थे।^२ इसके पश्चात् भी यद्यपि राज्य-व्यवस्था में परिवर्तन आ गया, तथापि इस सामंतवादिता का प्रभाव समाज पर अधिकांश मात्रा में बना रहा।

भारत में संगीत-कला इस काल में अपनी चरम सीमा तक विकसित हुई: यद्यपि ‘रूढ़िवादी (कट्टर) मुसलमानों को इस कला से प्रेम नहीं था, परन्तु ईरान से सम्पर्क होने तथा सूफीमत, (जिसमें धार्मिक भावनाओं, भक्ति आदि को नृत्य व संगीत के द्वारा प्रकट किया जाता था) के विकास के कारण मुसलमानों में भी संगीत कला की कद्र होने लगी थी। भारत में संगीतप्रेमी हिन्दुओं से सम्पर्क होने के कारण भी भारतीय मुसलमानों में संगीत का और अधिक प्रचार हुआ।”^३

भारतवर्ष के इतिहास से यह स्पष्ट है कि शाहजहाँ कला-प्रेमी सम्राट् था और

-
१. भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास—बी०एन० लूनिया, पृ० ३७७।
 २. “The nobles usually followed the pattern set by Royalty”. *Glimpses of Medieval Indian Culture*. Yusuf Husain, p. 146.
 ३. भारतीय संस्कृति—भाग १; मोहनलाल विद्यार्थी, पृ० २६१।

अपने राज्य को वैभवपूर्ण बनाने की आकांक्षा से वह कलाविदों का संरक्षक था।^१ 'शाह-जहाँ भी संगीत का संरक्षक था और उसके दरबार में रामदास, महापात्र, लाल खाँ, गुण समुद्र तथा जगन्नाथ सरीखे प्रसिद्ध गायक रहते थे। 'सुखदेव' प्रसिद्ध रबाव (गिटार) वादक थे और 'सूरसेन' प्रसिद्ध बोन वादक थे। शाहजहाँ नित्य स्त्रियों से भी गाना सुना करता था।'^२

इन सब उल्लेखों से विदित होता है कि शाहजहाँ का समय संगीत की उन्नति के लिए बड़ा सहायक था।

औरंगज़ेब के विषय में लगभग सभी इतिहासकार एकमत हैं कि इसके समय में संगीत कला दफ़ना दी गई और संगीत और नृत्य अवैधानिक ठहरा दिए गए।^३

औरंगज़ेब की कठोरता का परिणाम यह अवश्य हुआ कि उसके दरबार में संगीतजों को आश्रय न मिला, परन्तु उसके स्थान पर राजस्थान के राज-गृहों में तथा सामंतों के दरबारों में उनको आश्रय मिला।^४ 'समस्त संगीतज्ञ और संगीताचार्य मुग़ल दरबार से निराश होकर प्रान्तीय नरेशों और नवाबों की शरण में चले गए।'^५ दक्षिण के सुल्तानों के दरबारों में भी संगीत को आश्रय मिला। विशेषतया गोलकुण्डा में बीस हजार संगीतजों का होना बताया जाता है। समस्त हिन्दू राज सभाओं में संगीत, जीवन का एक आवश्यक अंग माना जाता था।^६ 'बंगाल में धनी व्यक्तियों के घर संगीत का बड़ा मान था।'

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों से भी पता चलता है कि औरंगज़ेब के इतने कला विरोधी होने पर भी देश में कलाओं का पर्याप्त प्रचार था। जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि औरंगज़ेब के सभी प्रयत्न मुग़ल राजाओं को मदिरापान से विरत न कर पाए।^७ तत्कालीन संगीत सम्बन्धी प्राप्त सामग्री की प्रचुरता के आधार पर हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सभी प्रकार के प्रतिबन्धों के पश्चात् भी संगीत इस युग में अपने उत्कर्ष पर रहा। संगीत विषय पर लिखी गई हिन्दी पुस्तकों की संख्या सबसे अधिक इसी काल में मिलती है, जिनका उल्लेख आगे किया जाएगा।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि शृंगार युग के पश्चात् देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलीं और अंग्रेज़ी राज्य के स्थापन के पश्चात् एक ओर तो भारतीय जनता अपनी संस्कृति

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डा० नगेन्द्र, पृ० ५।

२. भारतीय संस्कृति, द्वितीय भाग—मोहनलाल विद्यार्थी।

३. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, डा० नगेन्द्र, पृ० ७।

४. वही, पृ० ८।

५. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, बी० एन० लूनिया, पृ० ४११।

६. वही, पृ० ४१२।

७. संगीत राग-कषपट्टम—कृष्णानन्द देव व्यास, पृ० २।

८. "Aurangzib's prohibitions and all the activities of his censors of public morals failed to hold the Mughal aristocracy back from drink." History of Aurangzib, J. N. Sirkar, p.461.

की ओर से विरक्त होने लगी और दूसरी ओर मानव-वृत्तियाँ हृदय-पक्ष से हट कर बुद्धि पक्ष की ओर अग्रसर होने लगीं। इस परिवर्तन के कारण जो संगीत-सम्बन्धी सुन्दर रचनाएँ हिन्दी में इन राजाओं के आश्रय में लिखी भी गईं, उन्हें भी प्रकाश में आने का अवसर नहीं मिल पाया।

अपने मूल हस्तलिखित रूप में वे ग्रंथ आज भी इन नरेशों के पोथीखानों में पड़े हैं, और हिन्दी साहित्य के इतिहासों में उनका उल्लेख भी नहीं है।

सामाजिक

राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त सामाजिक परिस्थितियाँ भी संगीत को जीवित रखने और उसे विकसित करने में सहायक हुईं। इस समय तक संगीत, समाज और व्यक्ति के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुका था। जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक, प्रत्येक संस्कार के समय जो भी पूजा पाठ अथवा समारोह मनाया जाता था, सभी में संगीत लगभग अनिवार्य हो गया था। एक प्रकार से वह संस्कृति का विशेष अंग बन गया था। भक्ति और शृंगार रसों की ही प्रधानता इन गीतों में देखी जा सकती है। गीतकारों ने या तो कल्याण की आकांक्षा के हेतु इन गीतों के माध्यम से देवी देवताओं की प्रार्थना की है या विविध उत्सवों को रोचक और सरस बनाने के लिए इनकी रचना की है; अतः संगीत से समाज के प्रत्येक व्यक्ति का परिचय सिद्ध हो जाता है। संगीत के आयोजन के बिना प्रत्येक संस्कार अधूरा समझा जाता था। इन संस्कारों में समयानुसार शृंगार, वात्सल्य, हास्य, तथा करुण रसों का समावेश यथास्थान होता रहता था। संगीत की लोक-प्रियता का एक बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि बड़े बड़े संगीतज्ञों द्वारा बनाई हुई वन्दिशें (स्वर-लिपि-बद्ध गीत) भी जन्म, यज्ञो-पवीत, विवाह आदि की विभिन्न रीतियों के निर्वाह के अवसर पर गाए जाने के लिए लिखी गईं। शास्त्रीय और लोक-संगीत दोनों ही प्रकार के वर्गों में हमें ऐसी रचनाएँ प्राप्त हैं।

इसका एक प्रमुख कारण मुगल काल में दो संस्कृतियों के समन्वय और सम्मिश्रण की भावना है। मुगल संस्कृति और कलाओं का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा और हिन्दुओं का प्रभाव मुगलों पर। परिणाम स्वरूप, दोनों ही के उत्सव-समारोहों में बहुत कुछ एकता आ गई। श्री लूनिया ने लिखा है कि 'पुत्र प्रसव पर दोनों ही सम्प्रदाय सुन्दर संगीत का आयोजन करने लगे। सिराजुद्दौला और मीर जाफर अपने इष्ट मित्रों और सम्बन्धियों से होली खेलते थे और दिल्ली दरबार में संवत् १८८१ तक भी दुर्गा-पूजा का समारोह मनाया जाता था।' पुरुष और स्त्री सभी साथ साथ बाग में या किसी सन्त-फकीर के मकबरे आदि पर घूमने और आनन्द मनाने के उद्देश्य से जाया करते थे।^१ श्री जदुनाथ सरकार ने

१. भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास—लूनिया, पृ० ३७७।

2. "In addition, (to fairs etc,) both sexes, dwell in cities had their usual weekly outing on the gardens tombs of saints in the suburbs"..... "visits to these periodical fairs and seats of pilgrimage were the sole joy of Indian village population, and men and women were passionately eager to undertake them." History of Aurangzib, J. N. Sirkar, p. 471.

तत्कालीन क्लर्क के जीवन का वर्णन किया है। उनका यह कथन अन्य श्रेणियों के लिए भी ठीक है। हिन्दू और मुसलमान दोनों क्लर्कों में भाईचारे का सम्बन्ध था। कर्त्तव्य, रुचि, शिक्षा, आदर्श, और पारस्परिक सम्बन्धों में दोनों में साम्य भी था और सुख और दुख दोनों ही में एक दूसरे के सहायक होते थे।¹

व्यक्ति के इतना अधिक संगीत-प्रेमी होने पर यह स्पष्ट ही है कि समाज में भी पर्याप्त संगीत-प्रियता उत्पन्न हो चुकी थी। सामूहिक रूप से मनाया जाने वाला प्रत्येक उत्सव संगीत और नृत्य के संयोग से सरस बना लिया जाता था। यह सम्भव है कि औरंगजेब के कठोर नियमों के कारण मुगल राज दरबार में इस प्रकार के सामूहिक संगीत और नृत्य को स्थान न मिला हो, परन्तु उसी युग में रजवाड़ों में, सामन्तों के दरबारों में तथा ग्रामीण जीवन में सभी उत्सव सामूहिक रूप से गा, बजा और नाच कर मनाए जाते थे। इसका प्रमाण यही है कि हमें सामूहिक गान और सामूहिक नृत्य तथा रास के अवसर पर गाए जाने वाले गीत प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। विवाह के अवसर पर और होली के त्योहार पर तो उत्सव ही इस प्रकार मनाया जाता था कि नगर के नर-नारियों के बड़े बड़े समूह मिल कर ढोल, मजीरा, वांसुरी आदि वाद्य-यंत्र बजाते हुए गीत गाते थे। संगीत के शब्दों में व्यक्त भावों को प्रदर्शित करने वाले नृत्य भी होते थे। अधिकतर ऐसे नृत्यों में कृष्ण और राधा आलम्बन रहते थे। अतएव उन्हीं पर आधारित रचनाएँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं।

इस प्रकार उत्सवों पर सामूहिक रूप से गान और नृत्य का प्रयोग जनता की संगीत में रुचि का परिचायक है। यह तो स्वाभाविक ही है कि शृंगार युग में राजाओं के संगीत और कला-प्रेम के अनुकरण पर जनता भी शृंगारी तथा कला-प्रेमी प्रवृत्ति से युक्त हो जाए। शृंगारी प्रवृत्ति, कलाओं की ओर प्रवृत्त करने में समर्थ अवश्य होती है। विहारी का दोहा 'तन्त्री नाद, कवित्त रस, सरस राग, रति रंग, अनबूड़े, बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग' उक्त तथ्य का उद्धाटन करता है। उस युग के सुरुचि पूर्ण तथा विकसित व्यक्तित्व वाले पुरुष का यह लक्षण था कि वह कविता, संगीत, नृत्य, तथा चित्रकला आदि का रसास्वादन करने योग्य हो, अन्यथा वह श्रेष्ठ नागरिक नहीं है तथा समाज में सम्माननीय स्थान नहीं पा सकता।

यह अवश्य है कि सामाजिक परिस्थितियों ने लोक-संगीत को विशेष प्रेरणा दी। शास्त्रीय संगीत केवल दरबारों में गाया गया और वहाँ सुरक्षित रहा।

लोक संगीत साधारणतया जन जीवन पर आश्रित रहा। समाज के प्रधान अंगों से

1. "The clerks, both Hindus and Mohammadans, formed a brotherhood bound together by communities of duties and interests, education and ideals, social life and even vices. We find in the memoirs of one of them, Bhimsen of Burhanpur, a pleasing picture of the clerkly world, with its mutual dancing parties, dinners, aid in trouble, consolation in sorrow and union at sittings of Sufi devotional exuberance". History of Aurangzib, J. N. Sirkar, p. 468.

इसका सम्बन्ध देखा जा सकता है। जन-जीवन सम्बन्धी गीतों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१--व्यक्ति सम्बन्धी

२--परिवार सम्बन्धी

३--समाज सम्बन्धी

व्यक्ति सम्बन्धी गीतों में केवल एक व्यक्ति के द्वारा अथवा एक व्यक्ति के लिए गाए गीत हैं। जैसे, ईश्वर स्तुति अथवा अपने आश्रयदाता की स्तुति। आत्माभिव्यक्ति के लिए भी गीत लिखे गए, जैसे कृष्ण के प्रति अथवा प्रिय के प्रति प्रेमादि भावना को व्यक्त करने वाले गीत।

परिवार सम्बन्धी गीतों में संस्कार गीत, जन्म, कर्णवेध, अन्नप्राशन, उपनयन, यज्ञोपवीत, विवाह, ज्योत्नार आदि पर गाए गए गीत हैं, जिनमें अपने अपने रीति-रिवाज के अनुसार विविध वर्गों के गीतों में थोड़ा बहुत अन्तर मिल जाता है, किन्तु मूलतः वे एक ही संस्कृति पर आधारित हैं।

समाज सम्बन्धी गीत सामाजिक उत्सवों को लेकर गाए जाते थे। जैसे होली, सावन, वारामासा और रास आदि के गीत। इनमें भी यथास्थान विविधता प्राप्त होती है।

इस प्रकार शास्त्रीय तथा लोक गीतों की ये दोनों धारयाँ एक दूसरे के समानान्तर निरन्तर प्रवाहित हो रही थीं। शासक वर्ग तथा जनता दोनों का सहयोग पाकर संगीत-कला की सर्वांगीण उन्नति हो रही थी।

आर्थिक परिस्थिति

सामाजिक परिस्थितियों की विवेचना करते समय देश की आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। धन हीन वर्ग को तो यहाँ छोड़ ही दिया जाता है। नरेश और सामंत वर्ग, जो पर्याप्त मात्रा में धन और सम्पत्ति का स्वामी था, और उपयुक्त सामाजिक वातावरण के बीच पल रहा था, उनका विलासी प्रवृत्ति का हो जाना निश्चित ही था। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण उनके जीवन में संगीत एक आवश्यक अंग बन गया था।

विलास प्रियता

नरेशों तथा सामंतों के जीवन के दो अंग थे; एक तो राजनीतिक जीवन और दूसरा दरबारी जीवन। शांति के समय दरबार में जिन वस्तुओं से इनके विलास की तुष्टि होती थी, उनमें संगीत का बड़ा हाथ था। धन के आधिक्य में विलास की ओर झुकाव होना स्वाभाविक था। विलास की तुष्टि के साधनों में मदिरा और नारी के वाद कला का स्थान है। कला के अन्तर्गत यद्यपि विविध कलाएँ दरबारों में प्रश्रय पा रही थीं, किन्तु कविता और संगीत का महत्त्व विशेष था। इनमें भी, संगीत कला दरबारी सम्यता के अधिक अनुकूल थी।

श्री त्रिभुवनसिंह ने दरबारी संस्कृति की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए बताया है कि क्षत्रिय संस्कृति के विकास के साथ-साथ प्रवृत्तिमार्गी भावना का उदय हो गया था। परिणाम स्वरूप नागरिक का भोर से रात्रि तक का दिवस, अंगराग, आलेपन, माल्यगंध आदि का प्रयोग करके गोष्ठी-विहारों में तथा सन्ध्या समय संगीतानुष्ठानों में भाग लेकर नृत्य, गान तथा अभिनय द्वारा मनोरंजन करने में व्यतीत होता था।^१ दरबारी संस्कृति का यही स्वरूप शृंगार युग में भी विद्यमान था; अतः एक ओर तो दरबारी संस्कृति ने काव्य, नाटक, आख्यान, आख्यायिका आदि को प्रोत्साहन दिया और दूसरी ओर संगीत, नृत्य, चित्र तथा वाद्यादि को प्रश्रय दिया।^२

‘दरबारी कविता में नाद का विधान कुछ अधिक अपेक्षित होता है।’^३ अतः उस समय की कविता को भी “मुक्तक कला-प्रधान, संगीत-प्रमुख” होना अनिवार्य था, फिर संगीत का तो अपना विशेष महत्त्व था। संगीत के आस्वादन के लिए जिस रुचि, संस्कार, समय और महफिल की आवश्यकता है, यह सब राज-दरबारों में प्राप्त था। ऐसे वातावरण के अनुकूल, बन्दिशों में बाँध कर संगीत-शास्त्री विलम्बित या द्रुत लय में संगीत रचनाएँ करने लगे।

दरबार के हल्के और मनोरंजन प्रधान वातावरण के लिए उसी प्रकार की संगीत शैली भी आवश्यक थी, अतएव ध्रुपद की गम्भीरता के स्थान पर ‘ख्याल’ का प्रादुर्भाव हुआ और वह द्रुत लय में आलापों और तानों के साथ गाया गया। राग-रागिनियों के गाने का, समय के अनुसार विभाजन तो इसके पहले भी था, परन्तु उसमें और भी सूक्ष्मता आई और घड़ियों के अनुसार बहुत प्रकार के भेद-प्रभेद बना लिए, जिसके कारण प्रत्येक ‘रागमाला’^४ में राग-परिवार का वर्णन हुआ। पुत्र और पुत्रियों के रूप में अनेक रागों और रागिनियों का निर्माण हुआ। दिनचर्या के साथ प्रत्येक अवसर पर नवीन राग का गाया जाना भी रुचि-वैचित्र्य और विलास-प्रियता का ही सूचक है। तत्कालीन रुचि का प्रभाव गीतों के शब्दों पर भी पड़ा। गीतों में ऐसे भावों और ऐसे शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिनसे श्रोता-सामन्तों की विलास-वृत्ति की तृप्ति हो सके। उदाहरणार्थ :—

‘राग धनासरी, ताल दीपचंदी

ग्वालन पनिया के मिस आवतो री सामु ननद गई गाँव।

अस्ताई।

१. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक—त्रिभुवनसिंह, पृ० ११।
२. प्राचीन भारत का कला-विलास—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १४।
३. हिन्दी साहित्य का अतीत-शृंगार काल—पं० वि० प्र० मिश्र, पृ० ३८३।
४. वही, पृ० ३८४।
५. ‘रागमाला’ नाम उन रचनाओं को दिया गया है, जिनमें सोमेश्वर, हनुमतमत अथवा रागार्णव मत के अनुसार, छः प्रमुख राग और उनकी रागिनियों का वर्णन किया गया है। लगभग सभी रागमालाओं का विषय एक ही है, केवल उनके स्वरूप और शृंगार वर्णन में वैभिन्न्य है।

परोसन कुं मे अपनाई कवहु न ले कहु नांव ।१।

एक फागुन के दिन मतवारे आज लाग्यो है मुसकिल सों दाँव ।

गोरी गोरी बहियाँ में लपटन को मोहि बहुत दिनन की चाव ।^१

फागुन के मतवाले दिनों में कठिनाई से ऐसा अवसर प्राप्त हुआ है, जब गोरी बाहों में लिपटा जा सकता है, यह भाव विलास तथा शृंगार का सूचक है। प्रातःकाल से रात्रि के शयन तक, अपितु रात्रि पर्यन्त जागते रहकर संगीत का आस्वादन करने वाले रसिकों के लिए समयानुकूल शृंगार भावनाओं से पूर्ण बन्दिशें बाँधी गईं। आठों प्रहर की दिनचर्या के रूप में संगीत की स्थापना हुई और वह जीवन को निरन्तर उल्लास और आनन्द से परिपूर्ण बनाये रखने का प्रधान साधन बन गया। यही कारण है कि शृंगार रस से सम्बन्धित सुन्दरतम रचनाओं का निर्माण हुआ। अनेक शासक स्वयं संगीतज्ञ हुए, जिन्होंने स्वयं श्रेष्ठ संगीत सम्बन्धी रचनाएँ कीं, जैसे नरेश मानसिंह। कुछ ऐसे संगीत-प्रिय नरेश हुए, जिन्होंने अपने समय की सुन्दर बंदिशों (शास्त्रीय स्वर-लिपियों) को ग्रन्थों में बाँधवा कर अपने पुस्तकालयों में रखा। इस प्रकार से इन राजाओं की मनोरंजन-वृत्ति तथा विलास-प्रियता के व्यसन ने भी संगीत के कोष की वृद्धि करने में अत्यन्त अधिक सहायता की।

मनोरंजन

दरबारी संस्कृति में मनोरंजन-वृत्ति की तुष्टि एक आवश्यक उद्देश्य था। इन नरेशों और सामन्तों के मनोरंजन के लिए ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता थी, जिनमें विशेष बौद्धिक व्यायाम भी न हो और सरसता की मृष्टि भी होती रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विविध कलाओं का योग उपयुक्त समझा गया। यही कारण है कि चित्रकला भी उस युग में पर्याप्त मात्रा में विकसित हुई। कलाओं में भी जहाँ वस्तुकला, स्थापत्य कला, चित्रकला आदि केवल नेत्रों को सुख पहुँचाने वाली और प्रधानतः बाह्य आनन्द की दात्री हैं, वहाँ संगीत कला आन्तरिक आनन्द-प्रदायिनी है, साथ ही समय काटने के लिए भी संगीत सर्वोपयुक्त कला थी। अतएव दरबारी वातावरण में संगीत विशेष रूप से पला और विकसित हुआ।

कलाकारों तथा कला का संरक्षण

इतिहास के साक्ष्य से यह प्रमाणित है कि मुगल दरबारों में संगीतज्ञों को एकत्र किया जाता था। अबुल फजल के अनुसार अकबर के दरबार में छत्तीस संगीतज्ञ थे। अकबर की संगीत-प्रियता लोक-प्रसिद्ध है। जहाँगीर के दरबार में भी संगीतज्ञों के लिए अलग-अलग दिन नियुक्त थे।^१ शाहजहाँ स्वयं गाता था, और गायकों का आश्रयदाता

१. मानसिंह कृत ध्रुपद तथा खयाल—मुनि कान्ति सागर संग्रह, उदयपुर।

२. "William Finch, in his description of Agra, indicates that Akbar's practice of allotting a separate day of the week for each band of singers was observed during Jahangir's reign". Mughal Rule in India. Edwardes and Garrett, p. 336.

था। रामदास और महापात्र उसके समय के गायक थे।^१ औरंगजेब भी संगीत समझता था।^२

मुगल राजाओं की तथा उन्हीं के अनुकरण पर उनके आश्रित सामंतों आदि की रुचि कलाकारों को अपने दरबारों में एकत्र करने की तथा कलाकृतियों के एकत्रीकरण और संरक्षण की ओर अधिक थी। साथ ही प्रसिद्ध और अच्छे कलाकारों को भी दरबारों में इकट्ठे करने का शौक था, तभी गायक किसी न किसी दरबार में आश्रय पा ही जाते थे। प्रत्येक आश्रयदाता अपने दरबारी गायक से रागमालाएँ लिखवा कर अपने दरबार की चित्रशाला अथवा पुस्तकालय में रखता था।

लगभग सभी राजाओं के पुस्तकालयों में किसी न किसी के द्वारा लिखा हुआ संगीत-ग्रन्थ अवश्य मिलता है। यह अवश्य है कि जिस राजा के दरबार में अच्छा संगीतज्ञ कवि नहीं होता था, वह अन्य प्रसिद्ध कवि की रागमाला अथवा अन्य संगीत-ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराके अथवा उसे चित्रित कराके रखता था। प्रमाण स्वरूप हरिवल्लभ के 'संगीत-दर्पण' की प्रतिलिपियाँ काँकरोली, नाथद्वारा, जयपुर, भरतपुर, उदयपुर, बनारस तथा प्रयाग आदि अनेक स्थानों पर पूर्ण अथवा अपूर्ण स्थिति में प्राप्त हैं^३, जबकि हरिवल्लभ मूल रूप से पंजाब का संगीतज्ञ है।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के अतिरिक्त शृंगार युगीन साहित्यिक परिस्थितियों ने भी संगीत के पोषण और अभिवृद्धि में सहायता दी।

शाहजहाँ के स्वयं कलाप्रिय होने और कलाकारों को एकत्र करने के शौक ने कवियों को दरबारों में आश्रय लेने का अवसर दिया। परिणामस्वरूप, प्रतिभा कलाकारों के अधीन न होकर राजाओं के अधीन हो गई और भक्ति काल में भावुक हृदयों की जो अनुभूति सहज-उद्गार रूप में स्वयं ही प्रकट होकर कला की सृष्टि करती थी, वह शृंगार युग में आकर राजाओं की इच्छानुसार व्यक्त होने लगी। जिन विषयों और कल्पनाओं से आश्रयदाता को सुख मिलता, उसका अहं सन्तुष्ट होता, केवल वे ही भाव दरबार में ग्राह्य होते, उन्हीं का आदर होता, अतएव कलाकारों की सहज प्रतिभा राजाश्रित हो गई। ये सामन्तों

१. "...According to the court chronicler he (Shahjahan) was an accomplished vocalist and had so attractive a voice that many pure souled Sufis and holy men with hearts withdrawn from the world, who attended these evening assemblies, lost their senses in the ecstasy produced by his singing. Like his predecessors he was a patron of singers, two of the chief vocalists at his court being Ram Das and Mahapatra." *Mughal Rule in India*. Edwardes and Garrett, p. 337.

२. *Mughal Rule in India*, Edwardes and Garrett, p. 339.

३. उक्त स्थानों के पुस्तकालयों के हस्तलिखित ग्रन्थों को लेखिका ने स्वयं देखा है।

की इच्छानुसार उनका यशगान करने लगे अथवा उनकी वासनाओं को मानसिक तुष्टि देने लगे। जिस प्रकार 'रीतिकाल की कविता में आश्रयदाता की रुचि के अनुसार वंश परंपरा का यश-गान, विलास-तुष्टि के लिए शृंगार रस में वद्ध, विभिन्न छन्द, दरवारी संस्कृति के अनुकूल चमत्कारपूर्ण अलंकार, और परस्पर स्पर्धा के लिए विशिष्ट उक्तियाँ कविता-कामिनी को आभूषित करने लगीं^१, उसी प्रकार संगीत में राज दरवार के उपयुक्त रागों का प्रचलन हुआ, जैसे शृंगार रस युक्त दरवारी कानड़ा, (जिसमें कहीं-कहीं सीमातिक्रमण करने वाले शृंगार तक का समावेश हुआ।)^२ इस प्रकार के अनेक गीतों की वन्दिशें हुईं, चपलता की छोटक ठुमरी, दादरा, ख्याल, धमार, और गजल आदि का विकास हुआ और परस्पर स्पर्धा के लिए तानों में मोड़-तोड़, मुक्तियाँ, तथा मीड़ आदि के प्रयोग से गीत को अत्यधिक अलंकृत करने का शौक भर गया।

चमत्कार प्रियता

शृंगार युग में फ़ारसी कविता दरवार में आ चुकी थी। उसकी स्पर्धा में अपने को भी दरवार में महत्त्वपूर्ण बनाने का लोभ हिन्दी कवियों में आना स्वाभाविक ही था। एक ओर तो मनोरंजन के हेतु लिखी जाने वाली कविता में गम्भीर भावों की कमी हुई और दूसरी ओर बाह्य प्रदर्शन, अलंकार, छन्द की विकट-योजना, उक्ति-चातुर्य और शब्द चमत्कार की अति हुई।^३ काव्य-कला के साथ ही अन्य कलाओं को भी प्रोत्साहन मिला। विशेष रूप से संगीत कला से सम्बद्ध सामग्री का संरक्षण हुआ, और संगीत के कला पक्ष और शास्त्रीय पक्ष दोनों में ही चमत्कारिता भी आ गई।^४ इस प्रकार संगीत ने एक नया रूप धारण करना आरम्भ किया, जिसमें शास्त्रीयता और व्यावहारिकता का योग था।

भक्तिकाल में जो रचनाएँ हुई थीं, उनमें संगीतात्मकता अवश्य मिलती थी, परन्तु केवल संगीत को विषय बना कर हिन्दी में लिखी जाने वाली रचनाओं का एक प्रकार से सर्वथा अभाव था। यह कला-प्रेमी युग सबसे अधिक संगीतज्ञों की प्रतिभा को प्रोत्साहित करने में समर्थ रहा और उसी के कारण आज हम देखते हैं कि इतने अधिक संगीत-काव्य की रचना इस काल में हुई, जो न इसके पूर्व युगों में हो सकी थी और न इसके पश्चात् हुई। संगीत का सम्बन्ध राग-रंग से है, इसीलिए उसको विलास की सामग्री समझे जाने के

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, सं० डा० नगेन्द्र।

२. 'चुनरिया मेड़का रंगा दे रे छैला, रंगरेजा ते।

पिय कुं मैं कहूँ ना मो पास रुपया नहीं।

मोल चहे तो क्या करूँ, मोरे अधरन को रस ले जातूँ।'

रस-तरंग—जवानसिंह जी महाराज, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर।

३. 'दूसरी बात राज सभा की कविता के लिए यह अपेक्षित होती है कि उसमें कला-पक्ष प्रधान हो। जिस रचना में चमत्कारातिशय न होगा वह सभासदों को अधिक रंजित नहीं कर सकती।' हिन्दी साहित्य का अतीत-शृंगार काल, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ३८२।

४. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डा० नगेन्द्र, पृ० २६।

कारण भक्ति काल में उसका क्षेत्र सीमित रहा तथा संगीतज्ञों के आदर्श भिन्न रहे।

भक्तिकाल का संगीत जिस रूप में प्राप्त है, उसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। हिन्दू-समाज संगीत को प्रधानतया एक धार्मिक कला व कृत्य समझता था और संगीत के प्रति आदर व श्रद्धा का भाव रहता था। अतः सीमित रूप में केवल भक्तिपूर्ण भजन को प्रभाव-शाली बनाने के लिए रागों का प्रयोग हुआ, न कि रागों के स्वरूप का विस्तार करने के लिए गीतों को गाया गया। संगीत शास्त्र गौण था और ईश्वरोपासना प्रमुख थी।

इधर आधुनिक काल का बुद्धिवादी मस्तिष्क संगीत के माधुर्य को ग्रहण न कर सका, फलस्वरूप, यद्यपि शृंगार युग के पूर्व और पश्चात् दोनों ही कालों में संगीत को माध्यम बनाकर क्रमशः पद और गीतों में रचना हुई, तथापि संगीत-शास्त्र सम्बन्धी साहित्य के कोप की वृद्धि करने में केवल शृंगार युग ही सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर सका।

आश्रयदाता की आज्ञा

दरबारी कवियों को अपने आश्रयदाताओं की आज्ञानुसार रचना करनी पड़ती थी, अतः राजाओं की रुचि संगीत की ओर होने के कारण बहुत से कवि संगीतज्ञ न होते हुए भी संगीतकार हुए और अपने आश्रयदाता की आज्ञा पर उन्होंने रागमालाओं की रचना की,^१ जिनमें रागों का वर्णन नायक और नायिका भेद के अनुसार शृंगार और रतिभाव से पूर्ण होता था।^२ रागों का स्वरूप वर्णन और फिर उनके लक्षण आदि बताकर उदाहरण के रूप में उन्होंने ऐसे पद उपस्थित किए हैं, जिनमें उनकी काव्यात्मकता का भी परिचय मिलता है और संगीत का भी ज्ञान व्यक्त होता है। ऐसी रागमालाएँ संगीत की शास्त्रीय पद्धतियों को बताने में भले ही अधिक सहायक न हों, परन्तु उनसे संगीत की लोकप्रियता का परिचय अवश्य मिलता है, और वे शृंगार साहित्य में वृद्धि भी करती हैं।

पारस्परिक स्पर्धा

दरबारों के कवियों की पारस्परिक स्पर्धा ने भी संगीत-काव्य की वृद्धि में योग दिया। राग-रागिनियों का वर्णन नायक-नायिका भेद के अनुरूप होता था। प्रत्येक राग, नायक और रागिनी नायिका के रूप में वर्णित होती थी। प्रत्येक संगीत-कवि अपनी

१. 'उस समय दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के साधन होते थे और उनके मनोरंजन की साधना के लिए भी बहुत सा काम और साथ ही साथ काव्य की रचना किया करते थे।' हिन्दी साहित्य का अतीत-शृंगार काल, पृ० वि० प्र० मिश्र, पृ० ३८०।
२. 'काव्य और चित्र कला में जिस प्रकार नायिका भेद का चित्रण अबाध गति से होने लगा उसी प्रकार विविध राग-रागिनियों को उनके गुण तथा प्रभाव के आधार पर नायक तथा नायिकाओं के रूप में बद्ध कर उनकी व्याख्या की गई।' हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डा० नगेन्द्र, पृ० २८।

रागिनी-नायिका में किसी विशिष्टता और नवीनता का समावेश करता था और शैली में भी अलंकारिता और चमत्कारिता का अधिक से अधिक प्रयोग उसका लक्ष्य होता था ।

रीति ग्रंथों का प्रचार

शृंगार युग अथवा रीतिकाल में मुख्य प्रवृत्ति 'रीति' ग्रंथों की रचना की थी । 'रीति' शब्द की व्याख्या तो अनेक प्रकार से की गई है, परन्तु सभी ग्रंथों को सामने रखते हुए हम एक निष्कर्ष पर आते हैं कि जो भी काव्य किसी विशेष रीति (शैली) को अपना कर लिखा गया हो, वही रीति काव्य है । विशेष रीति से तात्पर्य है आचार्यों के द्वारा बताए गए मार्ग-विशेष का अनुकरण । अतएव जितना भी काव्य इस समय में लिखा गया, वह सभी संस्कृत काव्यों के आधार पर अथवा काव्य-शास्त्रों में बताए गए विविध मार्गों को आधार बना कर लिखा गया । इसी प्रवृत्ति के कारण रीतिकाल के काव्यगत विषयों में मौलिकता का एक प्रकार से सर्वथा अभाव है ।^१ इस प्रवृत्ति ने संगीतज्ञों के मस्तिष्क को भी प्रभावित किया और उनके क्षेत्र को भी संकीर्ण कर दिया । फलतः, समस्त संगीत-काव्य रीति ग्रंथों की प्रणाली पर, संस्कृत संगीत-ग्रंथों के अनुरूप लिखे गए । संस्कृत ग्रंथों के नियम लक्षणों के रूप में ज्यों के त्यों रख दिए गए और उन्हीं लक्षणों के अनुसार उदाहरण प्रस्तुत कर दिये गए, यद्यपि संगीत का प्रचलित रूप उससे भिन्न था ।

लक्षण और लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण

इस युग में जिस प्रकार अलंकार, नायिका भेद तथा छंदशास्त्र आदि विषयों पर लक्षण और लक्ष्य ग्रंथ लिखे गए उसी प्रकार संगीत को विषय बना कर भी लक्षण और लक्ष्य ग्रंथ लिखे गए । इस परम्परा में रागमालाओं का नाम उल्लेखनीय हैं । प्रायः सभी रागमालाएँ इसी परम्परा में रखी जा सकती हैं ।

आचार्यत्व का शौक

काव्य, कला तथा अन्य क्षेत्रों में लक्षणों का निर्धारण करने वाला कवि आचार्यत्व के पद से विभूषित किया जाता था । उस युग में आचार्यत्व का पद प्राप्त करना बहुत बड़ा प्रलोभन था । इस लोभ ने भी संगीत-काव्यों के निर्माण को प्रेरणा दी । कितने ही संगीतकार लक्षण-ग्रंथ लिखकर आचार्य-पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुए ।

संस्कृत काव्य का आधार

इस युग के लगभग सम्पूर्ण संगीत-साहित्य का आधार संस्कृत-साहित्य है । मौलिक रचनाएँ बहुत ही कम हैं । इसीलिए संस्कृत काव्य में वर्णित जो विषय इस युग के अनुकूल

१. 'इन सब विवेचनाओं में नूतन मौलिकता का क्षयः अभाव ही रहा ।' हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास—सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २८ ।

पड़े, उन्हीं का पिष्ट-पेपण शास्त्रकारों में मिलता है। काव्य-शास्त्र और छंद-शास्त्र के समान, संगीत शास्त्र भी इस युग की पांडित्य-प्रदर्शन-प्रियता के अनुकूल था। संगीत, विलासी प्रवृत्ति और रस-लोलुप सामंतों को सन्तोष प्रदान करने वाला था ही, अतः संस्कृत साहित्य से संगीत शास्त्र ज्यों का त्यों ले लिया गया।

साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत जानने वाले हिन्दी के कवि काव्य-शास्त्र-सम्बन्धी नियमों का हिन्दी में यथारूप प्रतिपादन कर रहे थे। एक तो उक्त काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के विचारों और सिद्धान्तों का विरोध करना उनके साहस और सामर्थ्य दोनों ही के बाहर था, दूसरे हिन्दी में रचना करना भी हेय समझा जाता था; फिर, संस्कृत काव्यों में वर्णित सिद्धान्तों से रहित हिन्दी रचनाएँ तो सुपठित जनता के लिए निम्नकोटि की ही थीं।^१ इसी के अनुरूप संगीत सम्बन्धी सिद्धान्तों को भी हिन्दी रचनाओं में ज्यों का त्यों ले लिया गया।

धार्मिक परिस्थितियाँ

देश की धार्मिक स्थिति ऐसी थी, जिसने स्वाभाविक रूप से संगीत-काव्य की सृष्टि को प्रोत्साहित किया। भक्तिकाल के अन्त में कृष्ण-राधा की माधुर्य भक्ति का ही प्रचार अधिक था। माधुर्य भक्ति और संगीत का अनन्य सम्बन्ध था। तत्कालीन कुछ भक्ति सम्प्रदायों ने संगीत को विशेष प्रश्रय दिया था। इनको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

(क) वैष्णव भक्ति

१. राम भक्ति २. कृष्ण भक्ति

(ख) संत भक्ति

१. सूफी २. निर्गुण

दोनों प्रकार के धार्मिक साहित्य में संगीत की अनिवार्यता थी। इनमें भी वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत कृष्ण भक्तों ने तथा सन्तों में निर्गुण सन्तों ने पद, कीर्तन तथा भजन आदि में संगीत को अधिक प्रश्रय दिया; अतः धार्मिक परिस्थितियों ने भी संगीत-काव्य के पोषण में सहायता दी।

इनसे प्रभावित रीतिकाल में रचे गए साहित्य में निम्नलिखित दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—

एक, जो भक्ति भाव से प्रसूत थीं तथा इष्ट के प्रति अनन्य प्रेम के परिणाम स्वरूप लिखी गई थीं।

दूसरी, जो राधा और कृष्ण को नाम मात्र के लिए आलम्बन बनाए थीं, वस्तुतः कवि की शृंगारिक वृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए लिखी गई थीं।

पहले प्रकार के काव्य में सन्त और भक्ति-परम्परा के गीत हैं, जिनमें इष्ट की आठों-याम की चर्या के अनुकूल बनाए गए गीत हैं, जिन्हें अधिक रसपूर्ण बनाने के लिए राग-रागिनियों में गाया जाता था।

१. हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३३।

दूसरे प्रकार के गीतों में संगीत ही प्रधान हो गया था। घोर शृंगारिकता को वचाने के लिए राधा और कृष्ण को आलम्बन बनाया गया था। रसिकता और माधुर्य की वृद्धि करने के लिए राग-रागिनियों में विशेष रूप से बाँधा गया था; अतएव धर्म को आंशिक रूप में अपनाते हुए भी इन गीतों में शृंगार की ही प्रमुखता है।

मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ

औरंगज़ेब के समय में 'संगीत का शव' निकालने की किंवदन्ती के आधार पर^१ साहित्यिकों और इतिहासकारों ने अभी तक यह प्रमाणित किया है कि औरंगज़ेब बहुत अधिक संगीत-विरोधी था उसने 'शव' को इतना गहरा दफ़नाने की आज्ञा दी, जहाँ से उसकी गुंज भी न आ सके।

इस किंवदन्ती की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षा करने पर यह सिद्ध होता है कि औरंगज़ेब भी वास्तव में संगीत के प्रभाव और शक्ति को खूब समझता था। उसके समय में अन्य पूर्वोक्तलिखित परिस्थितियों के कारण, संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर था। वह जानता था कि जन-साधारण संगीत-माधुर्य से प्रभावित है, अतः यदि सामन्त वर्ग इसी में डूबा रहा तो राजनीति-सम्बन्धी कार्य स्थिर पड़ जाएगा। एक कुशल राजनीतिज्ञ और बादशाह के लिए यह बहुत आवश्यक था कि वह सर्वप्रथम राजनीति के इस प्रबल शत्रु, संगीत को निर्बल बना दे। यही कारण था कि उसने थोड़ी भी छूट देनी उचित न समझ कर बहुत कठोरता से काम लेना चाहा और संगीत पर रोक लगाकर राज्य के संचालन के हेतु सामन्तों में आई हुई विलास-प्रियता और अकर्मण्यता को दूर करने की चेष्टा की।

संगीत अपने सर्वांगीण उत्कर्ष के साथ जनता के लिए आनन्द तथा मनोरंजन का साधन तो था ही, उसमें विकार उत्पन्न होते देखकर औरंगज़ेब को उसके दमन की कठोर आज्ञा देनी पड़ी। यदुनाथ सरकार ने एक स्थान पर लिखा है कि उस समय की एक प्रथा सी बन गई थी कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ महात्माओं की समाधि पर दर्शन करने के वहाने घूमने-फिरने जाया करते थे। उसका उद्देश्य धार्मिक न होकर मनोरंजन होता था,

१, "About one thousand of them, assembled on a Friday when Aurangzib was going to the mosque. They came out with over twenty highly ornamented biers, as is the custom of the country, crying aloud with great grief and many signs of feeling, as if they were escorting to the grave some distinguished defunct. From afar Aurangzib saw this multitude and heard their great weeping and lamentation, and, wondering, sent to know the cause of so much sorrow. The musicians redoubled their outcry and their tears, fancying the king would take compassion on them. Lamenting, they replied with sobs that the king's orders had killed music, therefore they were bearing her to the grave. Report was made to the king, who quite calmly remarked that they should pray for the soul of music and see that she was thoroughly well buried." Manucci, *Stona do mogor*, ed. Irvin ii. p.346.

अतः औरंगजेब को इसके ऊपर कठोर नियन्त्रण लगाना पड़ा।^१ इसी प्रकार का 'मनोरंजन' सम्भवतः संगीत भी बन गया था, जिसे नियन्त्रित करना अनिवार्य हो गया।

वास्तव में औरंगजेब प्रारम्भ में संगीत-विरोधी नहीं था। समाज में बढ़ते हुए दुराचारों ने ही उसे कठोर बनने के लिए विवश किया। एडवर्ड्स और गैरेट ने लिखा है कि स्वयं औरंगजेब भी नर्तकियों और संगीत जानने वाली स्त्रियों को अपने दरबार में बुलाता था। बल्तावर खाँ के अनुसार औरंगजेब संगीत-कला को भली-भाँति समझता था और अपने शासन के प्रारम्भिक काल में उसने संगीत को रोकने का प्रयत्न भी नहीं किया।^२

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शृंगार युग में संगीत का विकास रीति-परम्परा पर हो रहा था। उसका प्रमुख आधार संस्कृत साहित्य था और उसमें मौलिकता की कमी थी, यद्यपि उसका सम्बन्ध, काव्य और चित्रकला से स्थापित हो गया था। लोक-जीवन के साथ भी उसका सम्पर्क स्थापित हुआ था, जिससे, उसमें जन-जीवन के मनोभावों की सरल तथा सफल अभिव्यंजना होती थी।

१. "The opportunity was utilised for pleasure rather than piety and the spread of immorality that it caused, led Aurangzib to issue an order for stopping the practice, but it was too popular to be put down." History of Aurangzib, J.N. Sirkar, p.471.

२. "Notwithstanding the ban, which he placed on music, however, Aurangzib, according to Munucci's testimony continued to entertain dancing and singing-girls in the palace, for the diversion of his ladies, and so far unbent as to confer special names on their female superintendents. Bakhtawar Khan states that the Emperor understood music thoroughly and made no attempt to interfere with the art during the first few years of his reign. His subsequent objection to music was, based on the teaching of the great Muhammadan Imam, Shafi." Mughal Rule in India, Edwardes and Garrett, p.338.

मध्यम

शृंगार युगीन संगीत-काव्य के विविध रूप और वर्गीकरण

यह सिद्ध किया जा चुका है कि शृंगार-युगीन परिस्थितियाँ संगीत के उत्कर्ष के लिए अत्यन्त अनुकूल थीं और संगीत वास्तव में इस समय अपनी चरम कलात्मकता को प्राप्त कर चुका था, अतः यह कहना कि इस युग में संगीत ह्रासोन्मुख था, संगत नहीं है। जिस प्रकार रीति काल में काव्य-शास्त्र के अनुसार कविता-कामिनी सुन्दरतम अलंकृत रूप में साहित्य के मंच पर आई, उसी प्रकार शास्त्रीय नियमों में आवद्ध संगीत-काव्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया। यह स्पष्ट है कि संगीत भी शृंगार-भावना के उस रंग से अपने को विलग न रख सका, जिसमें समस्त युग रँग रहा था, फलतः राग-रागिनियों के स्वरूप में भी नायिकाओं का राग-रंजित रूप देखा गया। गीतों में विलासमयी अभिव्यक्तियों को स्थान मिला। आश्रयदाताओं की तुष्टि के लिए गंभीर ध्रुपद और घमार का स्थान चंचल गायन, ख्याल, टप्पा, ठुमरी और तराना आदि को दिया जाने लगा। रीति काव्यों की भाँति संगीत को भी अधिक से अधिक शास्त्रीय नियमों में जकड़ लेने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप रागों के मिश्रण से अनेक रागिनियों का निर्माण किया जाने लगा। संगीत शास्त्र की परिभाषाओं को भी वे चमत्कार-प्रियता से अलग न रख सके और स्वरों की सरगम लिखते समय 'स्वर-कल्प' लिखे गये। 'स्वर-कल्प' में संगीत के सात स्वरों का इस प्रकार प्रयोग किया जाता है, जिसमें कुछ काव्यात्मक सौन्दर्य भी उपस्थित हो जाए अर्थात् इन्हीं सात स्वरों (स रे ग म प ध नी) से कविता का निर्माण भी किया गया। यह स्वर-कल्प निश्चय ही अलंकार-प्रेम के परिणाम-स्वरूप लिखे गए। इसे हम एक विशेष प्रकार के श्लेष या 'राग-श्लेष' के नाम से पुकार सकते हैं। श्लेष अलंकार के अनुसार इसमें दो अर्थ तो होते हैं, परन्तु उनमें से एक अर्थ राग के स्वरों का निर्देश करता है। उदाहरण के लिए, श्री पूर्ण मिश्र कविरागी रचित 'संगीत-नादोदधि' का एक 'स्वर-कल्प' देखा जा सकता है :—

“धुरस सोधे सीस गोपी गोरस स्याम गोप धै पागे रस ।

धीन धनीन सो रशै पैगो रस ।

पेम धैपो धनि साधे पगि रसे । सिरै शोरशे धन सो मागे रस ।

मूररि सो धेन सोरे रेसे साधि पूरण सो पागो रशः ।”

इस पद में एक ओर तो गोपी के प्रेम रस से पूर्ण होकर दूध बेचने के लिए जाना और कृष्ण का रस माँगना आदि अर्थ लगाया जा सकता है और दूसरी ओर 'स रे स, स

घ, सा स, ग प, ग रे स, सा म, ग प घ प ग रे स' आदि स्वर समुदायों की सरगम (स्वरलिपि) बनाई जा सकती है।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि औरंगजेब के भय से संगीत की ध्वनि दफना दी गई, तथापि संगीत-शास्त्र तथा कला अपने पूर्ण उत्कर्ष पर काव्य में विकसित होता रहा। इसके अतिरिक्त यद्यपि दरबारों में गायकों का अभाव हो गया, तथापि राजाओं में संगीत-प्रियता के परिणाम स्वरूप अनेक रागमालाओं का निर्माण हुआ।

शृंगार युग के प्राप्त संगीत-काव्य को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

१—सैद्धान्तिक संगीत-काव्य

२—व्यावहारिक संगीत-काव्य

३—जैन रागमालाएँ।

सैद्धान्तिक संगीत काव्य के अन्तर्गत उन रचनाओं को लिया जा रहा है, जिनमें संगीत के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। संगीत-शास्त्र पर लिखे गए ऐसे ग्रन्थ हमें दो प्रकार के मिलते हैं।

प्रथम, सर्वांग-निरूपक हैं, जिनमें संगीत के प्रत्येक अंग पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय, जिनमें केवल विशिष्ट अंगों का ही विवेचन किया गया है।

व्यावहारिक संगीत-काव्य के अन्तर्गत उन रचनाओं को लिया गया है, जो रागबद्ध थीं तथा गेय रूप में व्यवहार में प्रयुक्त होती थीं।

जैन रागमालाएँ नाम मात्र के लिए उल्लेखनीय हैं। उनका विषय प्रस्तुत प्रबन्ध से सम्बन्धित नहीं है, वह जैन ग्रन्थ हैं। कवि ने अपने इष्ट का अथवा किसी कथा का उल्लेख किया है, परन्तु रागमाला का आवरण उसे पहना दिया है। किसी न किसी राग में बांध कर मुक्तक छंदों में वर्णन किया गया है, अतः आवश्यक समझ कर यहाँ उसका उल्लेख किया गया है।

सर्वांग निरूपक ग्रंथ

समस्त सर्वांग निरूपक ग्रन्थों का सूक्ष्म विवेचन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं।

ऐसे ग्रन्थ संख्या में कम ही हैं, परन्तु अपनी विषय-वस्तु में परिपूर्ण हैं। संगीत-शास्त्र का कोई भी अंग ऐसा नहीं है, जिस पर दृष्टि न डाली गई हो। ग्रन्थ-परिचय में इसका उदाहरण दिया गया है।

इनमें नाद, ग्राम, मूर्छना, स्वर, श्रुति, राग, आलाप, तान, वाद्य तथा ताल आदि का संपूर्ण विवेचन है। कहीं कहीं इन्हीं लक्षणों के साथ कुछ उदाहरण स्वरूप कवित्त भी दिए गए हैं, परन्तु ऐसे कवित्त अपवाद स्वरूप ही प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए, मूर्छना का विस्तृत वर्णन करते हुए कवि हरिवल्लभ कहता है—

मूर्छना मे होत है सात सात क्रम आइ।

अपनी बुद्धि प्रमान सो तिन कों कहों बनाइ।

अंतर सुर उच्चार करि प्रथमादिकनि गनाइ ।
 यही क्रम ते होत है ये सब क्रम के भाइ ।
 संप्या तिन की होत है नैन अंकहर नैन ।
 गुनजन जे समभत इने तिन को बहु सुप दैन ।
 पाडव वोडव कीजिए मूरछन। कों आनि ।
 सुद्ध तान तब होत है सहे जु चित में जानि ।
 सात मूर्छना पड़ज की तिन प्रति चारि घटाउ ।
 रिषभ रु पड़ज रु पंचमी बहुरि निपाद जनाउ ।
 इहि विधि पाडव तान ये बीस रु आठ गनाई ।
 मध्यम हूँ के तान अब कछु वक कहो बनाई ।^१
 इसी प्रकार संगीत के अंग-प्रत्यंग का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है ।

लगभग सभी ग्रन्थों का आधार शाङ्गदेव का संगीत-रत्नाकर है । नृत्याध्याय के अन्तर्गत 'आश्रय' की दृष्टि के विभिन्न भेदों में से एक भेद 'लज्जिता' के वर्णन में दोनों ग्रन्थों में इस प्रकार साम्य है—

‘अथ पलक जु नीचें लागें । मन में लज्जा अति ही जागें ।
 लज्जा द्रष्टि कहत है याहि । सब कवि कोविद चित में चाइ ।’

(संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ)

X

X

X

‘पतितोर्ध्वपुटा दृष्टिर्लज्जायां लज्जिता मता । ४१६ ।’

(संगीत-रत्नाकर—शाङ्गदेव)

‘संगीत-दर्पण’ ‘संगीत-महोदधौ’ ‘नारद-संहिता’ आदि अन्य संस्कृत संगीत ग्रन्थों का आधार भी मिलता है, परन्तु स्पष्ट रूप से ऐसा जान पड़ता है कि इन कवियों ने स्वयं उन ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया है ।^२ किसी ने प्रकट रूप में उसका आधार माना है और किसी ने नाम कुछ और देकर उन्हीं मान्यताओं को माना है । कवि उस्तत ने अपनी राग-माला का प्रारम्भ इस प्रकार किया है—

१. ‘संगीत-दर्पण’—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. ‘नारद संहितायां (१।७।) श्री भगवानुवाच
 नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च
 मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।
 अथ नादोत्पत्ति
 अथ नादस्य चोत्पत्ति वक्ष्ये शास्त्र विवेकतः
 धर्माथे काम मोक्षाणामिदमेवैक साधनम् ।’

राग कल्पद्रुम—श्रीकृष्णानन्द व्यास देव रागसागर, भाग १।

‘भरथ नाद ग्रंथ की साख ।

नाद ग्राम स्वरापदा विधि गुणागालिया तालया ।

आलित्यागमका इचताल रचना जोति कला मूर्छना ।

मुध्याद्यंग तुरंग राग मरण देसी चसालंगणा ।

गीति स्यापि समस्तसुष्ट सुषमा स्थाना तरपानुके ।

(उस्तत कृत रागमाला से)^१

इसके अतिरिक्त राग परिवार और स्वरूप के वर्णन में कुछ स्थलों पर मौलिकता भी दृष्टिगत होती है, जिसका उल्लेख ‘संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन’ में किया गया है ।

अधिकतर इन ग्रन्थों का विभाजन शाङ्गदेव के ‘रत्नाकर’ के समान सात अध्याय, क्रमशः स्वराध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय और रागाध्याय में हुआ है ।

इन ग्रन्थों की रचना कवियों के आश्रयदाताओं की रुचि और आग्रह के फलस्वरूप हुई है :-

कवि राधाकृष्ण अपने ‘राग-रत्नाकर’ के प्रारम्भ में कहते हैं—

‘दिन रैन भक्ति ब्रजराज की भीमसिंह मन मानिये ।

इहि हेतु कह्यो कवि कृष्ण सों रस संगीत बखानिये ।’

‘संगीत-नादोदधि’ के रचयिता श्री पूर्ण मिश्र ‘कविरागी’ को भी आश्रयदाता से ही प्रेरणा प्राप्त होती है ।

‘प्रेम कियो कवि चाल सों वीर शाह अवतार ।

तासों पायो भेद हम नाद वेद विस्तार ।’^२

सभी ग्रन्थों की भाषा प्रमुख रूप से ब्रज है, परन्तु कहीं कहीं प्रान्तीयता के प्रभाव के कारण उर्दू, पंजाबी, राजस्थानी अथवा अन्य ग्रामीण शब्दों का प्रयोग मिलता है । इसका कारण स्पष्ट ही संगीतज्ञों का विभिन्न समाजों में प्रवेश तथा समादर पाना और उनकी भ्रमणशीलता है । संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय उस पर प्रकाश डाला गया है ।

इन ग्रन्थों में शास्त्र का प्रतिपादन कवि का मुख्य उद्देश्य है, अतः काव्य कला की दृष्टि से ये अधिक उत्कृष्ट नहीं हो पाए हैं । फिर भी जहाँ कवि को कल्पना का आश्रय लेने का अवसर प्राप्त हुआ है, वहीं उसने कलात्मकता का समावेश कर दिया है । रागाध्याय में रागों का स्वरूप-वर्णन और शृंगार-वर्णन ही इसका प्रमाण है ।

१. उस्तत कृत ‘रागमाला’ में यद्यपि यह उदाहरण ‘भरथ नाद’ ग्रन्थ से लिया हुआ बताया गया है, परन्तु ऐसा उदाहरण भरत के ‘नाट्य-शास्त्र’ में कहीं भी प्राप्त नहीं है, शाङ्गदेव के ‘संगीत-रत्नाकर’ का ही उद्धरण जान पड़ता है ।
२. म्यूज़ियम, अलवर ।
३. वही ।

सभी ग्रन्थ स्तुति अथवा मंगलाचरण से प्रारम्भ होते हैं। उदाहरणार्थ,

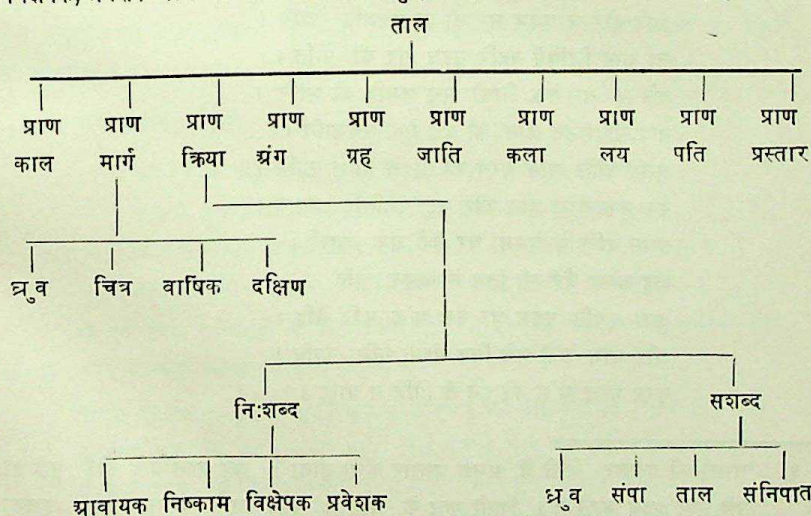
‘जै गंगा गौरी धरन। मंगल करन सुजान।

नाद मई अबढरढरन। जन जगहरन प्रमान।’^१

सर्वांग-निरूपक ग्रन्थों में महाराज प्रतापसिंह देव रचित ‘राधा गोविन्द संगीत-सार’, हरिवल्लभ कृत ‘संगीत-दर्पण’, श्री पूर्ण मिश्र ‘कविरागी’ द्वारा रचित ‘संगीत-नादोदधि’, कवि राधाकृष्ण कृत ‘राग-रत्नाकर’ तथा उस्तत कृत ‘राग-माला’ बहुत महत्वपूर्ण हैं, अतः यहाँ पर उन्हीं का आधार प्रमुख रूप से लिया जा रहा है।

‘राधा-गोविन्द-संगीत-सार’ सर्वांग निरूपक ग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करने का अधिकार रखता है। यह ग्रन्थ सवाई महाराज प्रतापसिंह जी द्वारा संकलित किया गया है। इसमें उनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों के द्वारा लिखे गए संगीत सम्बन्धी विचार हैं। यह ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त होकर संगीत के सातों अंगों १—स्वर, २—वाद्य, ३—तर्जन, ४—प्रकीर्ण, ५—प्रबन्ध, ६—ताल और ७—राग का ज्ञान कराता है। विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन का एक उदाहरण पर्याप्त होगा। तालाध्याय में ताल के दस प्राण बताए गए हैं। १—प्राण काल, २—प्राण मार्ग, ३—प्राणक्रिया, ४—प्राण अंग, ५—प्राण ग्रह, ६—प्राण जाति, ७—प्राण कला ८—प्राण लय, ९—प्राण पति, १०—प्राण प्रस्तार।

इनमें से एक प्राणमार्ग के चार प्रभेद होते हैं—ध्रुव, चित्र, वार्तिक और दक्षिण। प्राणक्रिया के दो भेद निःशब्द और सशब्द तथा निःशब्द के चार भेद आवायक, निष्काम, विक्षेपक, प्रवेशक और सशब्द के चार भेद ध्रुव, संपा, ताल और संनिपात बताए हैं।



इनमें से प्रत्येक की व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिए, निःशब्द के भेद ‘आवायक’ का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

‘जहाँ ऊँचो सुधो हाथ करि अंगुरीन को संकोचिए सो ‘अवाय’ जानिये और लौकिक

१. ‘संगीत-नादोदधि’—श्री पूर्ण मिश्र, म्यूजियम, अलवर।

में बाईं ओर तिरछो हाथ को चलावनों आवाय है ।' इसी प्रकार 'जहाँ ताल दे ऊँचे हाथ सों चुटकी वजाइ के हाथ कों ऊँचे डारना', वही 'सशब्द' का भेद 'ध्रुव' है ।

संगीत के सभी अंगों से पूर्ण परिचित कराने में समर्थ दूसरा ग्रन्थ हरिवल्लभ का 'संगीत दर्पण' है । शार्ङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' के समान यह भी सात अध्यायों में विभक्त है । 'संगीत-सार' में जहाँ केवल शास्त्रीयता पर बल दिया गया है, वहाँ इस ग्रन्थ में काव्यात्मकता का पुट अधिक है । जहाँ शास्त्र का वर्णन है, वहाँ भी पूर्णता तथा सूक्ष्मता है ।

तालाध्याय के 'पंडमेरु-नष्टोदिष्ट' प्रकरण में 'नष्ट', 'और' 'उद्दिष्ट' आदि का अर्थ तथा उन्हें लिखने का ढंग बड़े स्पष्ट रूप में समझाया गया है ।

ये इकादिक सुरनि में संख्या जान प्रकार
जु कुछ सुनी में गुनिन पै कह्यो सुकरि निरधार ।
येक अंक त सात लौं क्रम तैं तू करि देषि
पूरख पूरख अंक सौं पर अंकनि गुन लेषि ।
येक सुरादिक तान की संख्या कौ परिमान
क्रम ही तैं ये होत हैं कहैं सु बड़े सुजान ।
द्विस्वर तिस्वर चारिस्वर पंचुर पट् पुनि सांत
काहू ये कहि क्रमहि लिपि कर प्रस्तारहि धाँत ।
अगले कें पाछे लिप्यो प्रथम प्रथम सुर बानि
आगे होई जु प्रथम सुर तौ ता प्रथमहि आनि ।
ता आगे लिपियै बहुरि उरध सूर की पाँति ।
बचे जु सुर तेऊ लिपौ मूल क्रमहि की भाँति ।
नष्ट उद्दिष्टिन जान कौ पंड मेरु अवजानि ।
आदि पाँति मुनि घरन की पहिले ही तू ठानि ।
इक रक कोठा हीन करि पटु पंगतिहि बनाइ ।
प्रथम पंक्ति के प्रथम घर येकै अंक जनाई ।
छह कोठा जैहें रहे तिन में विबुक् देहि
दूजो पंगति प्रथम घर येक अंक करि लेहि ।
और घांम जे हैं बचे तिन संख्या गुनि काढि ।
पूरख पूरख अंक को इन तै होहि न वाढि ।

१. 'तालों की प्रस्तार श्रेणी में, अमुक प्रस्तार कैसा होगा ? यह प्रश्न यदि कोई पूछे तो उसे नष्ट प्रश्न कहते हैं । किसी नष्ट के बारे में पूछा जाने वाला प्रश्न, इसका अर्थ है ।'

'किसी रूप के बारे में यह कहना कि इस रूप का प्रस्तार अमुक भेद का—अर्थात् चतुर्थ, पंचम इत्यादि का है, उद्दिष्ट है ।' पृष्ठ ४०२, ४०३, संगीत-शास्त्र—के० वासुदेव शास्त्री । विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए, संगीत-शास्त्र—के० वासुदेव शास्त्री ।

ताही अंकहि धाम की संप्या कहि गुनकारि ।
 आगे आगे लिपि तिनहि योंही यह परकारि ।
 जितनों सुर के भेद कौ जान्यो चाहे मित्त ।
 इहि प्रमान करि कांकरी नभ कोठनि के चित्त ।
 बहुरयो लिपि तूं मूल क्रम ता ऊंचे ऊदित्त ।
 याकौ मारगु यों कहे सब कवि पंडित सिष्ट ।
 अन्तर स्वर जु उदित्त कों मूल क्रमहि जा ठौर ।
 अंतहि तैं गनतीं करै ता प्रमान करि डोर ।
 कांकरु यो ऊंचे धरयो सो नीचैं कों आनि
 लव्य सुरहि को छोडि के बहुरि इहां विधि ठानि ।
 अंत अंत कै सुर दोऊ जो आवहि सम भाइ
 तो तिनहूं को छोडि देयो ऊदित्त बनाइ ।
 अंक नाम लै जग कहे याको रूप युवताई ।
 ताको नष्ट जु कहत है पंडित चित्त के चाइ ।
 जिन अंकनि के जोर सों मूल अंक मिलि होइ ।
 संप्या तिनके यान तैं नष्ट दुते जिअ जानि ।
 लव्यसुरनि कों त्याग करि ऊंचे नष्ट बखानि ।'
 इति षंड मेरु नष्टोदित्तोदित्त प्रकरनं ।'

कवि की काव्यात्मकता का पूर्ण परिचय राग-रागिनी के स्वरूप-वर्णन में प्राप्त हो जाता है ।

‘अथ बराटी लक्षण’

‘चोर लिअै चतुराचित चोरिति कंकन की भनकार सुनावै ।
 विथुरी सुथरी अलकें अलकें छव रास छवीली अनंद बढ़ावै ।
 श्रोण पे सोहत फूल विचित्र दुकूल बनो चित कों ललचावै ।
 ऐसी बराटी बनी हरि-वल्लभ प्रीतम कों बहु भांति रिझावै ॥’

श्री पूर्ण मिश्र कविरागी के ‘संगीत-नादोदधि’ में भी संगीत-शास्त्र का सम्पूर्ण विवेचन है । नाद का भेद बताते हुए कवि कहता है—

‘प्रथम सहद नाद मुष तैं जो है अकार अष्टादश भेद सोहैं अद्भुत प्रकाश है ।
 दूसरो विहद नाद भेद है जुगल जाको तीजै अनहद नाद जानो बिन त्रास है ।
 सोऊ हैं जुगल भेद विमल विचार कीन्हें संकर क्रिपा तैं कोऊ जाने भेद ताल है ।
 पूरन कहत नाद भेद बाइ सों विचार भाषा नादोदध यह देवें मुष रास हैं ॥’^{१३}

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. म्यूजियम, अलवर ।

संगीत की शास्त्रीय व्याख्या से अधिक गीतों और उनके गाने के ढंग पर बल दिया है। क्रियात्मक रूप पर अधिक प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ—

‘स्वर प्रच्छन्न,

रोही अवरोही स्वरन्ह अस्थाई निधि ध्यानु ।

संचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउ ।

सा यथा ताल रूपका । धनि सर गम पध नी ।

सरी । इत ।

स्वर प्रच्छन्न :—अथ स्वर प्रकाश यथा ताल चौताल ।

स स रि रि स स नि ध । नि स । म म म प । ग ग रि श ।

स स म म प प ग ग म प । ध ध म प । ग ग रि स ।

ध ध ध प ग ग रि श । म म म ध ध ध

प प ध नि । स ध प ध ध प ग ग रि श ।”^१

कवि राधाकृष्ण का ‘राग-रत्नाकर’ भी संगीत के सभी अंगों पर प्रकाश डालता है, परन्तु विशेष बल राग और रागिनियों के लक्षण देकर स्वरूप और शृंगार वर्णन को दिया गया है। नाद के मन्द्र, मध्य और तार तीन प्रकार बताते हुए कवि कहता है—

‘प्रथम नाभि तैं ध्वनि उठे ताको शुद्ध उच्चार

तीन ग्राम तामें भये चंद मध्य अउतार ।

चन्द्र हृदय ते जानिये मध्य कंठ ते होय ।

उपजे तारक पाल तैं भेद कहे कवि लोय ।”^२

राग हिंडोल का लक्षण तथा स्वरूप बताकर कवि अपने संगीत-ज्ञान तथा अपना काव्यात्मकता का परिचय देता है ।

‘हिंडोल राग लक्षण

पिरज गेह सुर स ग म ध नि ओडव जाति हिंडोल ।

दिन बसंत पहिल पहरि सुनत डोल गति लोल ।

सर्वेयो

सब अंग कपोत के रंग लसे मुष की उपमा सरसावत हैं ।

मिलि गावत तान गुमान भरी तिय कंचल फूल भुलावत हैं ।

अति झुलत पीत दूकूलन की दुति दामिनि सी फहरावत हैं ।

यहि राग हिंडोल महा प्रवीन छकौ रस वीन बजावति हैं ।”^३

उत्तत कृत ‘रागमाला’ में यद्यपि वर्णन संक्षिप्त हैं, फिर भी संगीत के सभी अंगों

१. ‘संगीत-नादोदधि’ पूर्ण मिश्र कविरागी, म्यूजियम, अलवर ।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. राग रत्नाकर - राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

पर पूर्ण प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए, उनचास तालों के नाम इस प्रकार गिनाए गए हैं —

जोग योग, २- रेपा, ३- रतन, ४- तारन, ५- नन्दन, ६- तारा, ७- अरभावना, ८- मधुरा, ९- लता, १०- प्रणाम, ११- इसफुरता, १२- लोलता, १३- बाना, १४- मोचन, १५- लोचन, १६- तन, १७- लालित, १८- कोक, १९- काक, २०- पिगल, २१- अभिलाषा, २२- मदन, २३- नन्द, २४- नेत, २५- श्रुत, २६- नेपात, २७- गुनी, २८- कंठ, २९- सहेत, ३०- चरण, ३१- चन्द्रिका, ३२- चतुर, ३३- चतुरा, ३४- वेमा, ३५- वीर, ३६- निरमल, ३७- चारण, ३८- चालणा, ३९- रेता, ४०- हिता, ४१- हंजी, ४२- लता, ४३- हास, ४४- भूताङ्गा, ४५- मान, ४६- सम्मान, ४७- रित, ४८- क्रीडा, ४९- सुरतांत^१

इसके अतिरिक्त गीतों के प्रकार, कला वर्णन आदि विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् रागों के स्वरूप और उनके परिवार का वर्णन किया गया है।

विशिष्टांग निरूपक ग्रंथ

संगीत शास्त्र के अन्य ग्रंथों को न लेकर केवल एक विशिष्ट ग्रंथ 'राग' का विवेचन करने वाले ग्रंथों को 'विशिष्टांग निरूपक ग्रंथ' की संज्ञा दी गई है। साधारणतया इन ग्रंथों में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं।

रागों की उत्पत्ति, परिवार, स्वरूप, लक्षण और इनके उदाहरण इन ग्रंथों का वर्ण्य-विषय है।

'हीयहुलास' ग्रंथ में भैरव की पाँचों रागिनियों को विरहिणी नारियों के रूप में दिखाया गया है—

‘भैरू’ की धुनि भैरवी बंगाली बैराड।

मधु माधवी अरू सिधवी पांचो विरहन नार ॥^२

इसी प्रकार स्वरूप तथा शृंगार आदि का वर्णन सभी रागमालाओं में प्राप्त होता है, जिसका विस्तृत उल्लेख 'संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय में किया गया है।

इन ग्रंथों का नाम अधिकतर 'रागमाला' ही रखा जाता है, उदाहरणतः पद्मनन्दन मुनि कृत 'रागमाला'^३, घनश्याम कृत 'रागमाला'^४, हरिश्चन्द्र कृत 'रागमाला'^५, तथा यशोदानन्दन शुक्ल कृत 'रागमाला'^६ आदि, परन्तु कुछ ग्रंथ अन्य नामों से भी भूषित किए गए

१. रागमाला - उस्तद, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२. हीय हुलास ग्रन्थ तथा रागमाला, श्री मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर।
३. मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर।
४. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली।
५. मुनि कान्तिसागर संग्रह, उदयपुर।
६. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

हैं, जैसे गंगाराम कवि का 'सभाभूषण',^१ राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर',^२ गोपाल पंडित का 'संगीत-सार',^३ पुरुषोत्तम का 'राग-विवेक',^४, सरदारसिंह कृत 'सुरतरंग',^५ तथा रघुनाथ कृत 'जगत्मोहन'^६ आदि ।

इन रागमालाओं की रचना का कारण भी कवियों के आश्रय दाताओं की रुचि तथा उनका आग्रह है । उदाहरण के लिए, कवि पुरुषोत्तम के 'राग-विवेक' को लिया जा सकता है, जहाँ अपने आश्रयदाता फतेचंद का यश वर्णन करने के पश्चात् कवि उन्हीं के निमित्त ग्रन्थ का रचा जाना बताता है ।

‘हय दे हाथी मोल को कस वीद सिर पाइ ।
फतेचंद सों सों कह्यो चित को नेह जनाइ ।
सुरवानी में सब कविन कीन्हें ग्रन्थ अनेक ।
रसिक है श्रव तुम रचो भाषा राग विवेक ।
या तैं , मैं या ग्रंथ को कीन्हो उद्यम एह ।
फतेचंद को देपि के रागन सों अति नेह ।
सब रागन के मैं कहे या में भेद अनेक ।
नाम धर्यो या ग्रंथ को यहै राग विवेक’ ।^७

संस्कृत ग्रन्थों का प्रभाव यहाँ भी दृष्टिगत होता है । छः राग और उनकी तीस रागिनियों की मान्यता इसका प्रमाण है । राधाकृष्ण के 'राग-रत्नाकर' में शिव के पाँच मुखों से पाँच रागों की तथा गिरिजा मुख से छठे राग की उत्पत्ति बताई है ।

‘पंच वदन प्रगट किये पांच राग सुष रूप ।
श्री गिरिजा मुष तै भयो छठही राग अनूप ।
भैरव प्रथम गिनाय मालकौश हिंडोल ।
कहि दीपक श्री सुषदाय मेघ राग जानहु बहुरि ।’^८

इसी प्रकार प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियों का वर्णन किया गया है ।^९

रागों के स्वरूप वर्णन में अधिकांश तो संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर ही किया गया वर्णन है, परन्तु कहीं कहीं कवि की मौलिकता का भी परिचय प्राप्त होता है ।

१. म्यूजियम अलवर तथा श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली ।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर; आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
३. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी (राजस्थानी विभाग), बीकानेर ।
४. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।
५. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, (राजस्थानी विभाग) बीकानेर ।
६. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।
७. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
८. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
९. वही ।

इसका विस्तृत उल्लेख 'संगीत का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय में किया गया है ।

इन ग्रन्थों की भाषा ब्रज है, परन्तु प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र मिलता है । उर्दू, राजस्थानी और पंजाबी का प्रयोग अधिकांश रूप से है । कला की दृष्टि से ये ग्रन्थ अधिक सुन्दर हैं । अलंकारों का प्रयोग और सुन्दर वर्णों का चयन भी इन ग्रन्थों की विशेषता है । इन ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय इन सभी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है ।

इन ग्रन्थों का प्रारम्भ सदैव मंगलाचरण अथवा आश्रयदाता के यशोगान से हुआ है । कवि हरिश्चन्द्र 'परम पुरुष' के चरणों में प्रणाम करके 'रागमाला' का आरम्भ करता है ।

'अकल अरूप अमेय गुण सुन्दर है जसु दीन ।

परम पुरुष पग लगी के राग माल यह कीन ।'^१

कुछ ग्रन्थों में मंगलाचरण न देकर अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति गाकर ग्रन्थारंभ किया गया है । राधाकृष्ण कवि ने अपने ग्रन्थ 'रागसमूह' में 'राजा रतन' की प्रशंसा करते हुए कहा है—

'पूरन प्रताप पुढुमी ते परगट ताको यह रथ जाकौ सूरज सुवेस है ।

बड़ी प्रभुताई बड़े अहित सहकर सोभित विमल अंग अवर प्रवेस है ।

आपु वरषतु सुवरनु जग पापन को ऐसी गृहपती देखियतु देस देस है ।

कस्तन कविताई में बनाई बात या में कहा जैसो राजा रतन सोई दिनेस है ।'^२

इन ग्रन्थों में वर्णित रागों के स्वरूप वर्णन में नायिका-भेद के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं । राग विशेष नायक और रागिनियाँ नायिकाओं के रूप में वर्णित हैं ।

उदाहरणार्थ, भैरव अनुकूल नायक दिखाया जाता है ।

'सोहे बाल इंदु भालो लोचन विसाल तीन गरे मुंड माल गजखाल परधान री ।

जटा जूट से हैं गंग भूषित भुजंग अंग अंगराग अगर भसम अनुमान री ।

चूमत कपोल निज कामनी कौ अंक लियें कुंडल विलोल भलकत जुग कान री ।

देव्यो बड़े भोर आज अद्भुत छवि रंग लाल मंगल विधान राग भैरव
समान री ।'^३

रागिनी मधुमाधवी कृष्णाभिसारिका नायिका के रूप में विरह से दग्ध हो प्रिय से मिलने जाती है —

'नील तमाल तिलक तकि चली, प्रीतम विरह जबहि दल मली ।

पिय मिलाप कह जिय अनुरागिनी । वरषा घन निकसी भर जामिनी ।

१. मुनि कान्ति सागर संग्रह, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. आर्यभाषा पुस्तकालय, याज्ञिक संग्रह, वाराणसी ।

३. रागमाला, यशोदानंदनशुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

चपला चमकि उज्यारी करी । लाल मात लगी त्रिय लरपरी ।

तिहि छिन मार उठयो कहराई । वरजति भामिनि भुजा उठाई ।^१

राग विशेष जिस रस को उत्पन्न करने में समर्थ है, उसका उसी प्रकार वर्णन किया गया है, जैसे विलासी मेघ, अनुराग अथवा 'रति' के भाव को जगाता है^२ तथा वियोगिनी भूपाली विरह को पीड़ा उत्पन्न करने में सहायक होती है ।^३

विशिष्टांग निरूपक संगीत-ग्रन्थों में शृंगारयुगीन अन्य सैद्धान्तिक काव्यों के समान, लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थों की शैली में लिखे गए दोहों में, लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप कवित्त प्रस्तुत किये गये हैं । इन उदाहरणों में कहीं तो लक्षणों से साम्य है और कहीं भिन्नत्व भी है । रागों के लक्षणक और उदाहरण में स्वाभाविक रूप से एकत्व की स्थापना नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षणों में स्वरों का प्रयोग बताया है, और उदाहरणों में रागों का स्वरूप वर्णन है । ऐसे लक्षण-उदाहरण ग्रन्थ केवल उन्हीं कवियों के हैं, जिन्होंने विशिष्टांग निरूपक ग्रंथ अथवा केवल पा-रागिनियों का वर्णन दिया है । इन ग्रन्थों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं —

एक, जिनमें, राग का स्वर लिपि में लक्षण बताकर स्वरूप वर्णन दिया गया है ।

दूसरे, जिनमें, केवल उदाहरण स्वरूप राग का स्वरूप तथा शृंगार वर्णित है ।

तीसरे, जिनमें, राग का नाम देकर उदाहरण स्वरूप गीत दिये गये हैं । पहले प्रकार के ग्रन्थों में उदाहरण स्वरूप श्री पूर्ण मिश्र 'कविरागी' के 'राग-निरूपण' को लिया जा सकता है । भैरव राग का लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप शृंगार-वर्णन है ।

'रोही अवरोही स्वरन्ह, अस्थाई निघ ध्याउ ।

संचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउं ।'

भैरव-स्वरूप

'लाल रिसाल बनी मनि सीस लसित जोति कुंडल श्रवन सुप गौर वरन ।

जटा जूट में तरंग करत रहत गंग चन्द्रमा लिलाट सेत बसन धरन ।

मोहित त्रिनैन सूल अभै कर डमरू वजावत लाप्त उर प्रिया करन ।

कवल अस्वर गान करैगी व पूरन प्रकास दास दोष हरन ।'

अथवा

'आसावरी लक्षण—

'धैवत अंस रु न्यास ग्रह हीन निषाद गंधार ।

पोडव करुना रसहि में आसावरी विचार ।

१. रागमाला - लछिमनदास, भारत कला भवन, बनारस युनिवर्सिटी, बनारस ।

२. कै मेघ राग निज मानिनी आलिंगन संजुक्त ।

विलसैं केलि सदन में आननि चुं वति नित । रागमाला, हरिचंद, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

३. भोपाली विरहन खरी केसर वीरे चीर ।

भयो विरह की ज्वाल ते पीरी सबै सरीर । हीय हुलास, मोतीचंद जी खज्वांची संग्रह, बीकानेर ।

४. राग निरूपण—श्री पूर्ण मिश्र, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

मलयागिरि के वन में वनिता हरिवल्लभ आनन्द भार भरी ।
 हार सुठार गरे गज मोतिन मोर पपौवन सारी करी ।
 चंदन के द्रुम तै गहि नागनि ले कर मैं गजरा पुपरी ।
 निजु देहि की दीपति ही सों असावरी दीपति स्याम घटा की हरी ।^१

अधिकतर रागमालाओं में स्वरों का निर्देश नहीं है, केवल काव्योचित क्षेत्र को लिया गया है अर्थात् रागों का स्वरूप वर्णन किया गया है । जैसे—
 'मधु माधवी वर्णन'

मधु माधवी रूप निधि नारि । नील सुभग तन भ्रमक सारि ।
 भाऊ भेद भूषण अति नीके । देषि दासु रति गज मन फीके ।^२

अथवा घनाश्री का स्वरूप

असित देह रमणी कलभ लिपित कुसुम पीय हास ।
 मुगुध घनासी लोचनह मृगमद तिलक सुवास ।^३

अथवा देवकरी का स्वरूप

कमलकली कुच गौर अंग देवकरी पिकवेंन ।
 धेलाउल मिल पी को उमंग चली सुप देंन ।^४

तीसरे प्रकार का वर्णन यह है, जिनमें केवल रागों के नाम दिए गए हैं और उनमें बंधा हुआ गीत लिखा गया है । ऐसे गीतों का वर्ण्य विषय अधिकांश रूप से कृष्ण और राधा का प्रेम वर्णन है । विप्रलंभ से अधिक संयोग को ही स्थान मिला है । यह काव्य संगीत की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसा सभी काव्य गेय है । संगीत के अनुकूल रंजक तथा ललित पदावली में बद्ध होने के कारण संगीतात्मक है । इस प्रकार के काव्य में जवानासिंह जी महाराज 'नगधर', कृष्णानन्ददेव व्यास 'रागसागर', महाराज मानसिंह 'रसराज', नागरीदास, महाकवि देव, प्रतापसिंह जी 'व्रजनिधि' आदि की रचनाएँ मुख्य रूप से ली जा सकती है । उदाहरण के लिए—

'राग सिद्धो (सिधोरा) ताल दीपचन्दी
 कनइया मोरे अनवट बिलवां समेत ल्यादे
 मोरे पैरुं कुं रतन नुपंरवा । अस्ताई ।
 फगवा में पेलत वाजत नीके सौत का कलेजा
 जलाऊंगी सुना के ।
 भीना भीना वाजना घघरवा, हीरा मोती
 पनाउवा में मानिक लगा दे ।
 रसीला राज पिय लटुवा भयो जो तूं अपने

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. लल्लिमनदास कृत रागमाला, भारत कलाभवन, बनारस युनिवर्सिटी ।
३. रागमाला, हरिचंद, अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
४. रागमाला कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

करन सों वेसर फहरा दे ।^१

जवानसिंह जो द्वारा रचित 'रस तरंग'^२ में अनेक ऐसे गेय गीत हैं, जिनका विभिन्न उत्सवों और संस्कारों के समय गान होता रहा प्रतीत होता है। यहाँ एक सामूहिक गीत का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जो विवाह के अवसर पर गाया गया है।

‘धमार राग काफी

सरस सुहाइयावे रितु छवि देत है रितुराज ।
सुन्दर सरस सोभावे गोभा काम जन्म सुराज ।
अति मन भाँइया वे समधी मिलन हेत सकाज ।
उनयो मान मंदिर वे सुन्दर सुघर समाज ।

सुन्दर समधन आई । वाह वा ।
संग दोउ घोटाँ लाई । वाह वा ।
सब जन हरष वधाई । वाह वा ।
समधी नीत बुलाई । वाह वा ।
कीरत सनमुष आई । वाह वा ।
मंगल कलस बढ़ाई । वाह वा ।
भीतर भवन लवाई । वाह वा ।

अद्भुत गारि सुनाई । वाह वा । १।
सुनाई गारि अद्भुत वे श्री नन्द राय कों ब्रज नार ।
संग बलराम मोहन वे मन दां भांवदा दिलदार ।
आगम सरस सोभा वे श्री ब्रषभान के दरवार ।
सरसों सीं फूलि रहिया वे भुंडन भूमती सुकुमार ।

भुंडन धूमत आवे । वाह वा ।
फागुन रंग बढ़ावे । वाह वा ।
हो हो शब्द सुनावे । वाह वा ।
अबिर गुलाल उड़ावे । वाह वा ।
मोहन सनमुष धावे । वाह वा ।
गहि तन स्यामहि लावे । वाह वा ।
रावे चरन नवावें । वाह वा ।
संग मिल प्रेम बढ़ावे । वाह वा । २।

बढ़ावे प्रेम सुन्दर वे मंदिर भांव सरस सुहाय ।
गावें व्याह मंगल वे ललिता प्रीत गांठ जुराय ।
मोरी मोर सोहें वे सुन्दर पीत पट फहराय ।
भांवर सरस सोभा वे सोहत अधिक रूप लुभाय ।

१. महाराजा मानसिंह का धुपद ख्याल, मुनि कांतिसागर-संग्रह, उदयपुर ।

२. मुनिकांतिसागर संग्रह, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर में यही ग्रंथ, गीत-संग्रह, के नाम से प्राप्त है ।

सोहत अद्भुत जोरी । वाह वा ।
 बोलत हो हो होरी । वाह वा ।
 गुरुजन कान्हि तोरी । वाह वा ।
 गहि रंग कमोरी । वाह वा ।
 ढोरत स्याम पे गोरी । वाह वा ।
 कुम कुम सबै बोरी । वाह वा ।
 फाग पैलि भकभोरी । वाह वा ।
 दोउ मुष मीडत रोरी । वाह वा । १३।
 रोरी रंग बोरी वे गहवर विपुन में तिय आन ।
 कदली कुंज घोरी वे धूमत लतनि में दरसान ।
 प्रीतम परस को वे अद्भुत सरस आनन्द मान ।
 फागुन हरस को वे अंग अंग प्रीत की हुलसान ।
 अंग अनंगन जांची । वाह वा ।
 केसर कांदों मांची । वाह वा ।
 प्रीतम प्रीतहि पाची । वाह वा ।
 गहि कर स्यामहि नाची । वाह वा ।
 मोहन मांगत यांची । वाह वा ।
 देपा प्रीत जु सांची । वाह वा ।
 नग घर पिय रंग रांची । वाह वा । १४।

श्री कृष्णानन्द व्यासदेव 'राग सागर' के 'संगीत राग कल्पद्रुम' में सभी भाषाओं के प्रचलित गीत संकलित होने के कारण उसमें बड़े मनोरंजक गीत भी मिलते हैं ।
 उदाहरण स्वरूप एक लोक-गीत है—

'धानी तिताला ।

बाबा कहत पुरवैया के सइयां मोरे सोवे यह पुरवैया
 मोरा बैरन सइयां नहीं जागे ।
 अम्बा की डारी पकड़ खड़ी गोरी बैराग भरी
 क्यों तोरे नैहर डर के क्या तेरी सास बुरी ।
 न मोरे नैहर डर न मोरी सास बुरी
 तू चलो जा रे वीर बटोही तुझे मेरी क्या परी ।
 जो मैं बन की कोयया मैं बन बन रहती रे ।
 जो पिया जावे शिकार को मैं शब्द सुनाती रे ।
 जो मैं जल की मछरिया जल जल रहती रे ।
 जो पिया जावें नहाने को मैं पइयां छुआती रे ।^१

विशिष्टांग निरूपक ग्रन्थों की संख्या बहुत अधिक है । कुछ प्रमुख ग्रंथों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है ।

१. लखनऊ विश्वविद्यालय-पुस्तकालय, लखनऊ ।

अहमद,^१ हरिश्चन्द्र,^२ कवि कल्याण मिश्र,^३ घनश्याम,^४ भगवान,^५ श्री मन्मालवीय बेनी राम,^६ श्री पं० पद्म नन्दन मुनि,^७ यशोदानन्दन शुक्ल,^८ हीय हुलास,^९ सागर कवि,^{१०} गिरधर मिश्र^{११}, की रागमालाएँ देव कवि का 'राग रत्नाकर'^{१२}, पुरुषोत्तम कृत 'राग-विवेक'^{१३}, भूधर मिश्र की 'राग-मंजरी'^{१४}, गंगाराम का 'सभाभूषण-रागमाला'^{१५}, शिवराम कविराज का 'राग-कौतिकपुर-नवधा-भक्ति सुवंश'^{१६}, राजा सिरदारसिंह कृत 'सुर-तरंग'^{१७}, पं० दयाचन्द जी की 'राग-वत्तीसी',^{१८} रस राशि का 'राग-संकेत',^{१९} पूर्ण मिश्र कृत 'राग निरूपण'^{२०}, कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा रचित 'संगीत राग रत्नाकर',^{२१} रघुनाथ कृत 'जगत्सोहन'^{२२}, गोपाल पंडित का 'संगीत-सार'^{२३}, माधव दास जी की 'राग-चितनी'^{२४}, लछीराम का 'राग-विचार'^{२५}, उक्त प्रकार के ग्रन्थ हैं।

इस प्रकार के सभी ग्रन्थों में राग-परिवार, तथा राग-श्रृंगार वर्णन हुआ है। उदाहरण के लिए, भैरव का परिवार इस प्रकार वर्णित है—

१. म्यूजियम, अलवर, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर।
३. मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली।
५. म्यूजियम, अलवर।
६. प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग।
७. श्री मोतीचन्द जी खजांची संग्रह, बीकानेर।
८. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
९. मोतीचन्द जी खजांची संग्रह, बीकानेर, महिमा भक्ति भंडार, बीकानेर।
१०. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
११. वही।
१२. आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
१३. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
१४. अनूप संगीत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१५. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली; म्यूजियम, अलवर।
१६. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
१७. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१८. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
१९. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२०. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
२१. म्यूजियम, अलवर।
२२. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।
२३. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
२४. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली।
२५. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।

‘भैरव परिवार,

मैरव रूप जटा सिर नील तन भस्म वास तिलक रेप
मुद्रा श्रग त्रिसूल घर मैरव राग शुदेप ।

भैरव स्त्री,

मारू सिधू भैरवी घनासरी बंगाल
सुद्ध भैरवी नारि सब गावत गुन गोपाल ।

भैरव-पुत्र नाम

भैरव शुद्ध ललित परम पंचम बंगाली पंच
भैरव शुद्ध के पंच सुत गावत हरि गुण संच ।
इति भैरव ।^१

इसी प्रकार रागों के शृंगार और स्वरूप का लगभग सभी में एक ही सा वर्णन किया गया है । कहीं कहीं कुछ अन्तर मिलता है ।

गिरधर मिश्र की रागमाला में पटमंजरी का स्वरूप इस प्रकार है—

‘विरह ताप तन धूसरइ पट मंजरी वियोग ।

मलिन कुसुम माला घरइ प्राणि दुखित मल योग ।^२

यही राग हरिश्चन्द्र की रागमाला में लगभग इसी रूप में प्राप्त होती है—

‘पट मंजरी तउ धूसरइ कंत वियोग अनंत

मलिन कुसुम माला घरें अली अविसीस तजंत ।^३

कहीं कहीं भिन्नत्व के साथ भी वर्णन मिलता है, जैसे राग मारू का वर्णन हरिश्चन्द्र के शब्दों में इस प्रकार है—

‘कै हेरि लर्का वीन तन नागरि मारू नाम ।

कर लें बैठी पीय सों जाणि कणें री काम ।^४

परन्तु कल्याण मिश्र की रागमाला में इस प्रकार वर्णित है—

मारू ऊष्मा मरण अरुण वसन चंद्रमुखी गज चाल ।

रिण रस धुन गोपाल के गावत मारू ऐन ।^५

अहमद कृत सभा विनोद

अहमद ने अपनी रागमाला का नाम ‘सभाविनोद’^६ रखा है । ‘सभा विनोद जु नाम या पोथी को जानियो ।’ इसमें भी राग परिवार का वर्णन किया गया है । भैरव का वर्णन इस प्रकार है—

‘धैवत सुर ग्रह ताको जानो, शिव मूरति संगीत वषानो ।

१. कल्याण मिश्र कृत रागमाला, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

३. मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर ।

४. वही ।

५. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

६. म्यूजियम, अलवर ।

कंकन उरग और शशि भाल, सुरसरि जटा गरे रुंड माल ।
 सेत वसन नैन पुनि तीन, सिद्धि सरूप अरु महा प्रवीन ।'
 इस प्रकार राग के लक्षण तथा स्वरूप दोनों पर ही प्रकाश डाला गया है ।

हरिश्चन्द्र कृत रागमाला

हरिश्चन्द्र ने अपनी 'रागमाला' में केवल रागों की पत्नियों का निर्देश किया है । रागों का वर्गीकरण करके राग-रागिनियों का स्वरूप-वर्णन किया गया है । हरिश्चन्द्र की कविता में शृंगारिकता की मात्रा भी अधिक है । वर्गीकरण में मौलिकता है, जैसे वसंत इनके वर्गीकरण में दीपक की पत्नी है ।

'सिपि पुछ सूकी रपि धरै पुनि रसाल अंकूर ।

राग वसंत जु कामनिहि भ्रमत काम सों तूर ।'

इसके विपरीत अन्य स्थलों पर वसंत श्री राग की पाँच रागिनियों में से एक है ।^१

कल्याण मिश्र कृत रागमाला

कल्याण मिश्र की 'रागमाला' में रागों के नाम देकर पत्नी तथा पुत्रों का वर्णन अलग अलग किया है । उदाहरणार्थ, हिंडोलके पुत्र स्याम, वसंत, कामोद, सीमंतक और शुद्ध बंगाल बताकर प्रत्येक का पृथक् पृथक् वर्णन है ।

'अथ पुत्र स्याम

पीत वशन तनु स्याम दुति कंठ लाल की माल

स्याम राग कुंकुम तिलक गावत गुन गोपाल ।

वसंत

अरुन वशन तनु कनक छवि मुष तंबोल मृदु हास

राग वसंत हिंडोल सम वन में नित विलास ।'

घनश्याम कृत रागमाला

चतुर्भुज मिश्र के पुत्र घनश्याम द्वारा लिखी गई 'रागमाला' में श्रुति वर्णन, राग-परिवार वर्णन तथा स्वरूप-शृंगार का वर्णन है ।

भगवान कवि की रागमाला

भगवान रचित 'रागमाला' में रागों के शृंगार और स्वरूप का वर्णन है । शृंगार को प्रधानता देने के कारण भैरव को स्त्री का रूप दिया है और भैरव को प्रसिद्ध योगी रूप में न लाकर काम-क्रीड़ाओं में रत दिखाया है ।

'त्रिय भैरों-भूषण अंग साजे । काम रूप कामिणि संग राजे ।

करत कीलोल काम रस भीनो । भुज पसारि आलिंगन दीनों ।

बढ़यो नेह नैन टक लागी । रिति तरंग अंगन अनुरागी ।

१. अभय जैन ग्रन्थालय, वीकानेर; मुनि कांतिसागर संग्रह, उदयपुर ।

२. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ और राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण ।

३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर; मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

४. सरस्वती भंडार, श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली ।

५. म्यूजियम, अलवर; विद्या मंदिर, नाथद्वारा ।

चेरी चतुर चोर करि लियो । अति विचित्र चितवत चित दियो ।

महल सरंग सेज सुपकारी । ये ते रुचि मुषि पावत पिय प्यारी ।

वेनीराम कृत रागमाला

इन ग्रन्थों में श्री मन्मालवीय वेनी राम द्वारा रचित रागमाला^१ अपना अलग महत्त्व रखती है। संगीत की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी अपनी विचित्रता के कारण कथनीय है। रीतिकालीन साहित्य को समृद्ध बनाने योग्य यह पुस्तक अपने हृत्भाग्य के कारण संग्रहालय में सुरक्षित होने पर भी उचित रक्षा न पा सकी और प्रत्येक पृष्ठ के दोनों ओर से दीमक द्वारा खाए जाने के कारण मूल पाठ भी उपलब्ध नहीं हो सकता, परन्तु जितना अंश प्राप्य है, उसी के आधार पर मौलिकता का परिचय मिलता है। यह इस प्रकार की अकेली रचना है, जिसमें राग रागिनियों का नायिका भेद से साम्य स्थापित करके शृंगारिक वर्णन किया गया है। यों तो रागों का शृंगार वर्णन नायिका वर्णन के समान ही हुआ है, परन्तु दोनों में एकता स्थापित करने की दृष्टि से ही केवल वेनीराम जी ने चित्र खींचा है। इसका कारण वे बताते हैं—

राग रागिनी रूप लपि मिटत जो जिय को पेद

याते इनको समुझ के कहौ नाइका भेद ।

एक राग और उसी के समान भाव और रूप धारण करने वाली नायिका को लेकर वर्णन करते हैं—

कलहान्तरिता नायिका

पिया आवे निज गेह जे पहिले बोलेहि नाहि ।

फिर पाछे पछताये अति कलहन्तरिता ताहि ।

अथ कलहन्तरिता देवगिरि यथा

.....हि विन.....ही विनय बहु भांतन ते हंसि

हैरवे को क.....ड़ी है ओली ।

वांह गह्यो हर ए हि हरे...अंचल ऐंचि के धुंटी पोली ।

रुसि पयोधर को उठि के तो कियो पिय ही नहि बोली ।

मान तू मोहि गह्यो तब तों हठि जाइ परो अब तो किन होली ।'

इस रचना के लगभग सभी दोहे या कवित्त अपूर्ण हैं, परन्तु अर्थ से जाना जा सकता है कि नायिका के भेद तथा रागिनियों में समान भाव दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

यह संगीत ग्रन्थ से अधिक शृंगार ग्रन्थ है, जिसमें अपने आश्रयदाता दिल्ली के बादशाह, शाहजहाँ की विलास तुष्टि के लिए, इस प्रकार का वर्णन किया गया है। रागों का नायक से और रागिनियों का नायिका से साम्य दिखाकर भैरव को अनुकूल नायक बताया है।

अन्य रागमालाओं के समान राग-परिवार इसमें भी बताया है।

'प्रथम राग भैरों दुजो मालव रूप

तीजों हों हिंडोल अरु चौथों दीपक....'

१. प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग ।

गोरी राग है पांचयो, छठयो मेघ मलार ।

...त है गुनी लपि लपि भेद अपार ।'

इन्होंने ओड़व, पाडव और संपूर्ण जाति न बताकर केवल मुख्य स्वरों का प्रयोग बताया है, परन्तु स्वर, अन्य संगीतकारों के समान भी नहीं हैं और आज के प्रयोग से भी भिन्न हैं। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि इन्हें संगीत का ज्ञान स्वयं नहीं था, केवल सुने हुए वर्णन के अनुसार लिखा है।

जैसे,

‘धैवत पंचम ऋषभ सुनायो । तीनों...भैरव गावीं ।

ऋषभ निपाद मिले सुर दोउ । मालकोस को गावो सोऊ ।

मध्यम भेद निपाद...इ । राग हिंडोल कहो सुख पाइ ।

इसमें रागों का लक्षण नहीं पता चल सकता, क्योंकि इन्होंने स्वरों का निर्देश ठीक नहीं किया है। भैरव में ऋषभ और धैवत का प्रयोग तो होता है, परन्तु पंचम का मुख्य नहीं होता। संपूर्ण जाति का होने के कारण पंचम का प्रयोग अन्य स्वरों के समान होता है। मालकंस में रिषभ और पंचम वर्जित होते हैं, इन्होंने रिषभ और निपाद को मुख्य बताया है। इससे जान पड़ता है कि यह स्वयं संगीत शास्त्र के ज्ञाता नहीं थे, अपितु अपने आश्रयदाता की आज्ञावश इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की, जिसके कारण शास्त्रीय अशुद्धियाँ रह गईं।

पद्मनन्दन मुनि कृत रागमाला

श्री पद्मनन्दन मुनि की ‘रागमाला’^१ में पट राग, प्रत्येक की पाँच भार्या और अष्ट पुत्रों के संक्षिप्त वर्णन हैं। उदाहरणार्थ—

‘भैरव राग भूवालः वृषभ विण लाठ चलावै

मालकोस वन माल मृग मस्तक पहिरावै ।

दीपक जोति पतंग कुंड में कविजन न्हावै ।

श्री राग सिरताज प्रगट पाहण पधलावै ।

मीठो मेघ मल्हार मेघ चहुँ दिस वरपावै ।

तत वेता तिहुँ लोक में, विविध राग विसतरयो

सरव राग में समरतां परम राग परचो लह्यो ।’^२

इसके पश्चात् सूर, तुलसी, गिरधर दादू, कवीर, कृष्णदास आदि कवियों के भजन संग्रहीत हैं। जैसे ‘चंद सखी’ का एक भजन है—

मुरली वाले स्याम, ब्रज में बस जा रे ।

नैन भरे भर हंस जा रे । मु०

कोरी मटकीया दही जमायो, एक अंगली भर चप जा रे । मु०

जे तू चाल्यो मथुरा नगरी, मोहन माला जप जा रे । मु०

जे तू मोरी ब्रज मां चाले, नैन भरी भर हंस जा रे । मु०

१. खजांची संग्रह, बीकानेर ।

२. श्री मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर ।

तेरे कारण मैं महल चुनायां, एक महीनो तू बस जा रे । मु०
 तेरे कारण मैं बाग लगायां, पटडा मिटडा चप जा रे । मु०
 जे तू चाल्यो मथुरा नगरी । मोहन माला जप जा रे । मु०
 चंद सपी डत बाल कृष्ण छव हर चरण चित लग जा रे । मु०

यशोदानन्दन शुक्ल कृत रागमाला

श्री यशोदानन्दन शुक्ल कृत 'रागमाला'^१ में आश्रयदाता का परिचय मंगलाचरण आदि के पश्चात् रागों का परिवार वर्णित है । काव्यात्मकता से पूर्ण रागों का शृंगार वर्णन है । संगीत के अन्य ग्रंथों पर भी प्रकाश डाला गया है ।

पहाड़ी रागिनी का वर्णन—

'पय परदेश चलयो चहत, सुनि भामनि सुध भूल ।
 गह्यो पांव तन पाहिडा, ग्रीवा डारि दुकूल ।
 चलत प्रवास पिय सुनि के भई उदास आइ तिय पास
 लै उसास कुछ कहिरही ।
 भूले पान पांन बोलत है आन आन लागे मैन वान
 हिय गाढी पीर सहि रही ।
 अँन से नयन दोऊ देपत हैं पिय मुख मुख नैन हूँ कह्यो
 न जात दुष आगि दहि रही ।
 पाहिडा सी प्यारी बह प्यारे इंगीले जू कों चरण
 सरोज कर कंजन सों गहि रही ।'

इन्होंने रागों के परिवार में पत्नी और पुत्र के साथ सखा-सखी का भी वर्णन किया है ।

हीयहुलास

'हीयहुलास'^२ में रागमाला ही के समान रागों के परिवार तथा स्वरूप का वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकें 'रागमाला' (पद-संग्रह)^३ और 'हीय हुलास ग्रंथ' के नाम से प्राप्त हैं, जिनका वर्ण्य विषय समान ही है, परन्तु कहीं कहीं 'हीय हुलास' स्वयं कवि का नाम जान पड़ता है । 'हीयहुलास' में एक स्थान पर कहा गया है—

'देसकार कंचन वरन पेलत पिय के संग
 हीय हुलास है काम की चढो जुदा जो रंग ।'

यहाँ 'हीय हुलास' ग्रंथ से अधिक कवि का नाम जान पड़ता है ।

इस ग्रंथ का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है । रागों में प्रयुक्त स्वरों का निर्देश नहीं है, परन्तु समय, रस तथा प्रभाव की दृष्टि से उनका विवेचन किया गया है ।

'भैरं की धुनि भैरवी बंगाली बैराड
 मधु माधवी अरु संघवी पांचों बिरहन नार ।'

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

२. मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर ।

३. 'रागमाला हीय हुलास' (रागबद्ध पद) श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली ।

स्वरूप वर्णन में अधिकतर रागिनियों को विरहिणी रूप दिया है। रागिनी भूपाली भी विरहिणी है—

भोपाली विरहन परी केसर बोरे चीर
भयो विरह की जाल तें पीरी सवै सरीर'
तथा मल्हार भी विरह में दग्ध है।

'बीन गहै गावत बहुत रोती है जल धार
तन दुरबल विरह दह्यो विरहिन नाम मल्हार।
सेज बिछाई कमल दल लेट रही मन मार।
लेत उसासनि सियरि तन तनक वियोगिनि नार।

रागों के अतिरिक्त ताल का भी अध्ययन किया है। तालों के 'बोल' देकर संगीत के क्रियात्मक पक्ष पर प्रकाश डाला है।^१

सागर कवि कृत रागमाला

सागर कवि की 'रागमाला'^२ बहुत संक्षिप्त है। केवल षट् राग, उनकी रागिनियाँ और पुत्रों के नामों के पश्चात् उनका संक्षिप्त वर्णन है। इसके पश्चात् रागों में जो गीत दिए गए हैं, उनमें नवीनता है। रागिनी किसी विशेष रस में तल्लीन एक विशिष्ट नायिका के रूप में चित्रित है।

उदाहरणार्थ—

'राग ललिता—

प्रीतम चालीया है सपी ललिता करै विलाप।
हिरदा ऊपर हीडतों मो विरहण की हार।'

गिरधर मिश्र कृत रागमाला

गिरधर मिश्र की रागमाला में^३ छः रागों और तीस रागिनियों का स्वरूप वर्णन हुआ है। इसका वर्णन बहुत कुछ हरिश्चन्द्र की रागमाला से मिलता जुलता है।

'भैरव रूप

स्याम रूप सोभा सुभग, परम पुरुष मन लीन।
राग शिरोमणि पेपि यइ भइरं भव भय हीन।'

+ + +

माल श्री का रूप मुग्धा नायिका के समान है।

'मुग्ध वेस तनु हेम द्युति माल सिरी बहु भाँति।
वडठत गिरि कानन तरइं लावत वीरा पाँति।'

देव कृत 'राग-रत्नाकर'

महाकवि देव का 'राग-रत्नाकर', दो अध्यायों में विभक्त एक संक्षिप्त ग्रन्थ है। यह संगीत तथा काव्य दोनों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

१. 'सम ताल—भन धी दि भ ना धी दि धी भा धी क ता।'

२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

प्रथम अध्याय में छः राग, भैरव, मालकाँस, हिंडोल, दीपक, श्री तथा मेघ, अपनी अपनी पाँच-पाँच भार्याओं के साथ वर्णित हैं। द्वितीय अध्याय में उपरागों का वर्णन है। संगीत-शास्त्र को समृद्ध बनाने के हेतु कवि ने प्रत्येक राग तथा रागिनी के स्वरों का निर्देश किया है। लक्षण के पश्चात् रागों के स्वरूप तथा श्रृंगार का आलंकारिक वर्णन किया है। काव्यात्मक सौंदर्य अधिक होने के कारण 'राग-रत्नाकर' का महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से अन्य राग-मालाओं की अपेक्षा अधिक हो गया है। रागों का वर्णन करते हुए कवि अनुप्रासमयी भाषा का प्रयोग तो करता ही है, साथ ही श्लेष अलंकार के द्वारा स्वर-ज्ञान भी करा देता है। रागिनी वसन्ती का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

‘सांवरी, सुन्दरी पीत दुकूलनि, फूल रसाल के मूल लसन्ती,
लीन्हें रसाल की मंजरी हाथ, सुरंगित आंगी हिये हुलसन्ती।
पूरन प्रेम, सुरंग में प्यो घनी, संग-ही-संग विलोल हसन्ती,
है उत है उत ही दिन मांझ, समौ करि राखेय वसंत वसन्ती।’

उक्त उद्धरण में कवि ने श्री राग की भार्या वसन्ती मानकर वसंत का नारी रूप चित्रित किया है। ‘सुरंग में प्यो घनी’ शब्दों में, पङ्कज, रिपभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निपाद आदि सप्त स्वरों का अर्थ का संकेत करके चमत्कार दिखाया है।

पुरुषोत्तम कृत रागविवेक

कवि पुरुषोत्तम कृत ‘राग-विवेक’^१ में कवि परिचय आदि देने के पश्चात् राग-परिवार और स्वरूप वर्णन हुआ है। काव्यात्मकता की दृष्टि से यह उत्कृष्ट कोटि का काव्य है। भैरव का स्वरूप निम्नलिखित शब्दों में वर्णित है—

उज्ज्वल गात सोहात सुधा सम उज्ज्वल वस्त्र विराजत तैसो।
सीस जटा मनि कानन कुंडल कानन कण्डं विपे विप सोम सो जैसो।
लोचन लाल लसे ससि भाल, त्रिमूल कपाल घरे कर केसो।
सिंगी वजावत देखत भावत भैरव राग को रूप है ऐसो।
प्रात समय अरु सरद ऋतु भैरव सुप को देत।
प्रगट भयो सिव वदन तें उपजावत चित चेत।

इस ग्रन्थ में कुछ प्रचलित रागिनियों के अतिरिक्त नए नामों का निर्देश भी किया गया है, जैसे, ‘चन्द्रबिम्ब राग’ और ‘हर्ष राग’ आदि। इन रागों का लक्षण स्वरों में नहीं बताया गया है, केवल श्रृंगार वर्णन है।^२

१. हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, सप्तम संस्करण, पृ० २०८।

२. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

३. ‘यथा चंद्रबिम्ब राग

पद्माधर पंकज वसन पद्मपानि कंज नैन।

पुष्पमालि नाना कुसुम चन्द्रबिम्बहि ऐन।’

भूधर कृत राग मंजरी

भूधर मिश्र की 'राग-मंजरी' में सत्ताईस पृष्ठों के भीतर राग तथा रागिनियों का परिवार वर्णन है तथा स्वरूप-शृंगार का विस्तृत चित्रण है।

गंगाराम कृत सभाभूषण

कवि गंगाराम कृत 'सभाभूषण रागमाला'^१ में रागों का परिवार वर्णित है। रागों के स्वरूप का भी वर्णन है।

'मालकोस भार्या गौरी

कोकिल वयन तन वर्न सु स्याम वांम सुन्दर

सुषिम नाद आव कली कानि हैं।

धवल वसन मूष देखे चंद लाजों विधि

रचि पचि कें बनाइ सुष दानि है।

स रि ग म पध नि गेह संपूरन

सरद दिन चौथे पहर वषानि हैं।

अति ही सलोनी गौरी रागिनी वषानि हैं

इस सुर समयो वीचार गुनी जन मानि हैं।'

इसके पश्चात् कुछ रसखान के कवित्त भी दिए गए हैं।

शिवराम कवि कृत राग कौतिकपुर नवधा भक्ति सुवंश

'राग कौतिकपुर नवधा भक्ति सुवंश' शिवराम कविराज द्वारा रचित एक वृहद् ग्रन्थ है। इसके पाँच खण्डों में से केवल तृतीय खण्ड में राग वर्णन, परिवार वर्णन और स्वरूप वर्णन है। अन्य खण्डों में ईश स्तुति कवि वंश, कवि कुल, कवि के देश के ठाकुर के देश नगर, ठाकुर का वंश, सूरजमल का वंश, कुम्हरी नगर का वर्णन, सभा वर्णन, नवधा भक्ति, प्रेम लक्षणा, नव रस, कीर्ति, सूरजमल के पुत्र का वर्णन, आदि है।

तृतीय खंड में षट् राग, राग ऋतु वर्णन, प्रत्येक राग की पाँच भार्या और अष्ट पुत्रों के वर्णन करने के पश्चात् इन सबों का स्वरूप वर्णन है। इसके पश्चात् शिवराम कवि ने भी रागों का मिश्रण करके राग बताए हैं।

सरदारसिंह कृत सुरतरंग

सरदारसिंह कृत 'सुरतरंग' में संगीत के कुछ अंगों पर प्रकाश डाला गया है। राग तथा रागिनियों का विवेचन प्रमुख है।

१. सरस्वती भंडार, काँकरोली; आर्यभाषा पुस्तकालय वाराणसी; म्यूज़ियम, अलवर।

दयाचंद जी कृत रागवत्तीसी

“राग वत्तीसी और रागमाला” पंडित दयाचन्द जी की रचना है।^१ यह जैन ग्रंथ है। इसमें रागों का विभाजन संस्कृत भाषा में है, परन्तु उसके पश्चात् रागों का स्वरूप ब्रज में है। अन्त में राग वद्ध पद भी दिये गए हैं। ताल का प्रकरण भी ले लिया गया है।^२

रसरशि कृत राग संकेत

‘रस राशि’ के ‘राग संकेत’^३ में संगीत के अन्य अंगों पर संक्षिप्त प्रकाश डालकर, एक सौ दस रागों के नाम लक्षण सहित दिए गए हैं। यह ग्रंथ राजा श्री प्रताप के लिए संवत् १८५१ की माघ वदि सप्तमी को सम्पूर्ण हुआ।

प्रारम्भ में कुंडलिया छंद में मंगलाचरण देकर ही कवि विषय-प्रवेश कराता है।

श्री हरिहर गिरिजा गिरा गन पति गोपी गोप।

इनके मुख की लाग सौं भई राग की ओर।

भई राग की ओर चोप करि इन ही गायो।

छओ रागिनी राग सवन को रूप दिखाओ।

नाद ब्रह्म को स्वाद प्रकट कीन्हों अमृतभर।

रसिकन में रस रासि आदि नायक श्री हरिहर।’

पूर्ण मिश्र कृत राग निरूपण

श्री पूर्ण मिश्र ने ‘राग-निरूपण’ में केवल रागाध्याय को वर्ण्य विषय बनाया है। कुछ अंश इनके बृहद् ग्रंथ ‘संगीत-नादोदधि’ (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है) के समान हैं। रागों के लक्षणों पर अधिक प्रकाश डाला है। उदाहरणतया—

‘रोही अवरोही स्वरन्ह अस्थायी निव ध्याउ।

संचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउ।

सा जथा ताल रूपक

व नि स रि ग म प ध नि स रि। इति स्वर प्रच्छनं।’

संगीत राग-रत्नाकर

‘संगीत राग-रत्नाकर’ एक प्रकार का संकलन है। इसमें विभिन्न कृष्ण भक्त कवियों के पद संग्रहीत हैं। प्रारम्भ में राग-रागिनियों के चित्र भी दिए गए हैं। संगीत के अन्य अंगों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रंथ विभिन्न अध्यायों में विभक्त है। प्राप्त ग्रंथ तृतीय

१. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।

२. मार्ग ताल पाँच ते कवण। ताले चचपुटा ल्येत।

गुरु द्वं लघु प्लुतो ऽऽऽ चचपुटा ताल। आदि।

३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

अध्याय है, जिसमें रागाध्याय को लिया गया है। स्वरूप वर्णन करते समय मल्हार का वर्णन 'हीय हुलास' के समान ही किया है।

‘विरह राग गावत अधिक रोवत है जलधार ।
तन दुर्बल विरहा दहें विरहित नाम मल्हार ।
सेज विछाई कमल दल लेट रही मन मार ।
सजल जलद तन मन बस्यो रही सु छवि उरधार ।’

रघुनाथ कृत जगन्मोहन

रघुनाथ कृत ‘जगन्मोहन,’^१ ज्योतिष, वैद्यक, छन्द, अलंकार, नखशिख और गायन सभी का सम्मिलित विशद ग्रन्थ है, जिससे कवि की बहुज्ञता का पता चलता है। संगीत शास्त्र पर प्रकाश डाला गया है।

‘सुद्ध सनातन ब्रह्मसो पहले उपज्यो नाद
वेद भयो ब्रह्मा भयो फेरि शास्त्र अनुवाद ।
नाद रूपी ब्रह्म है, ब्रह्म सरूपी नाद ।
नाद ब्रह्म में भेद नहिं बरने मुनि निरवाद ।’

रघुनाथ कवि ने रागिनियों के स्वरूप-वर्णन को विषय नहीं बनाया है।

गोपाल पंडित कृत संगीत सार

गोपाल पंडित कृत ‘संगीत-सार’ तीरासी पृष्ठों का ग्रंथ है, परन्तु अपूर्ण है। इसका विषय भी राग तथा रागिनियों का विवेचन है।

माधवदास कृत रागचिंतनी

‘माधवदास’ की ‘रागचिंतनी’^१ में सोलह रागों का वर्णन है, परन्तु इस वर्णन में यह नवीनता है कि रागों के स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं, बरन् नायिका के स्वप्न देखने पर एक राग उत्पन्न हो गई, प्रिय की प्रतीक्षा में किसी विशेष राग का नाम आ गया। इसी प्रकार सभी रागों का नाम किसी न किसी रूप में आ गया है।

लछीराम कृत राग विचार

लछीराम कृत ‘राग विचार’ बारह पृष्ठों का छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमें रागों तथा रागिनियों का स्वरूप-श्रृंगार वर्णित है।

इन सभी रागमालाओं में परिवार, स्वरूप और श्रृंगार वर्णन के पश्चात् रागों का मिश्रण दिया गया है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सबने एक ही सा मिश्रण किया हो। कहीं समान मत है, तो कहीं भिन्न भी है।

१. सरस्वती भंडार, रामनगरदुर्ग, वाराणसी।

२. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली।

जैसे—

“त्रिवन पहारी मालवों तीन राग इक ठाड़
नाम मनोहर गौरि यह रचि के श्रुतिहि मुनाउ ।”

संगीत दर्पण—हरिवल्लभ^१

और

“मार त्रिविनि पहारी का तीन्यों सुर सम तानि
यह मनोहर राग है कही आपहुनु मानि ।”

राग-रत्नाकर राधाकृष्ण^२

रागों के मिश्रण में कहीं कहीं भिन्नता मिलती है। फ़रोदस्त राग गाने के लिए राधा-कृष्ण के अनुसार श्याम, गूजरी और गौरी को मिलाना पड़ता है, परन्तु हरिवल्लभ के अनुसार गौरी और श्याम में पूरवी का मिश्रण करना होगा,^३ फिर भी अधिकांश रागों के सम्बन्ध में मत एक ही है।

कुछ राग मालाएँ ऐसी भी प्राप्त हैं, जो विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, परन्तु उनके लेखकों का नाम अज्ञात है। अभय जैन ग्रन्थालय में प्राप्त कुछ ऐसी रागमालाएँ हैं, जिनका प्रारम्भ और अन्त यहाँ सूचनार्थ दिया जा रहा है। प्रथम ‘रागमाला’ तीन पृष्ठों में वारीक अक्षरों में लिखी हुई है, जिसका प्रारम्भिक तथा अन्तिम अंश यहाँ दिया जा रहा है।

प्रारम्भ

रागमाला दूहा
स्याम वरन तन दुष हरन सब रागन कौ राइ ।
चँवर दुरे भरदर करे, वनिता भैरों भाई ।
पुहुप माल गर छजिहें, राग करत हैं ताल
घाम फटक सर पीत संग भाव भैरवी वाल ।

अन्त

करत संजोग भरतार सों, रंग है पीत विलास,
वस्तर पहिरत पुहुप के, आवत तनहि सुवास ।
वैनी लांवी स्याम बहु बंगाली रंग सेत

१. द्वारकेश पुस्तकालय; काँकरोली, म्यूजियम, अलवर; गंगा गोल्डेन जुवली म्यूजियम, बीकानेर; पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर; सरस्वती मंदिर, उदयपुर।
२. पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर; म्यूजियम, अलवर; हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
३. “स्याम राग अरु गुजरी गोडोमिलि अभिराम। फ़रोदस्त या राग को गुनी कहत हैं नाम ।” —राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण। “जहाँ पूरवी गाइये गौरी स्याम समेत। फ़रोदस्त सो जानिये होइ श्रवन सुष हेत ।”—सगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

राग रागिनी तीस षट्सुनी राइ कर हेत ।

इति रागमाला दोहा सम्पूर्ण ।”

द्वितीय रागमाला में भी छः राग और तीस रागिनियों का वर्णन है । रागिनियों का स्वरूप वर्णन किया गया है ।

प्रारम्भ

चले कामिनी कन्त के गृह सुर-अरु सब मेव
रह निरूप लक्षण कहो करो कृपा गुरु देव ।

अन्त

नैन कमल मुख चन्द कुच कठोर कन्चन वरन
हरति नाह दुष दंद देसकार सुकुमार तन ।

इति पट राग तीस रागिनी समेत समाप्त ।

तीसरी रागमाला प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग में प्राप्त है, जिसमें लेखक और रचनाकाल का परिचय नहीं मिलता । छः राग और तीस रागिनियों का स्वरूप और शृंगार वर्णन छत्तीस पृष्ठों में किया गया है । संस्कृत और हिन्दी दोनों में रागों का स्वरूप वर्णित है ।

प्रारम्भ

श्रीः अथ मेघ रागः ।

नीलोत्पलाभव पुरिन्दु संमानचैलः पीतं वरं : स्नुषित चातक जाच्यमानः ।

पीयूष मद हसितो घन मध्यवर्ती वीरे युराजित जुवाकिल मेघरागः ।

दोहा— नील कमल द्विति पीत पट अमृत हास सित चीर ।

चातक जाचत मध्य घन मेघ जुवा जुत वीर ।

मल्लारी देशकारी च भूपाली गुर्जरी तथा टंका ।

च पन्चमी मार्ज मेघ रागस्य जोषिता ।

अन्त

अथ नट रागिनी दीपक की ।

तुरंगम स्कंधनि पवत बाहः : स्वनं प्रभः शोभित शोनगामः

संग्राम भूमौ विचरन्प्रतापी ।

नाटीय मुक्तः किल रंग भूतिः ।

दोहा— हय के कांथे हाथ वरि मल्ल रूप मधि रंग ।

लोह चर चो गात सब नाट जुद्ध उत्तंग ।

इति श्री रागमाला समाप्तं ।

चतुर्थ रागमाला राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर के पुरोहित हरिनारायण संग्रह में प्राप्त है, जिसका लेखक अज्ञात है । सं० १८७५ को लिखी हुई इस प्रति में रागों का विचित्र रूप है । राग का नाम लेकर कवि ने काल्पनिक दोहों का निर्माण किया है ।

प्रारम्भ

राग गिरी

पीव पधारय प्रीति करि ऐसी सुणंत आवाज
हंसि हरपी उमगी अधिक राम गरी वन वाज ।
विलावल
संगि सखी सब ही सरस मुख मुरली की ढेर
पीव पघारे पाहुण विलावल जो बेर ।

अन्त

सौ तन तो पिजर भयो मन सुवटडो मांहि ।
मति रमजारी मारिसी जो रे आवे सी नाहि ।
दीपग हाथिन विरहनी मारगडो जोवंत
तुम बिन म्हाारा प्रीतमां निसि वासुर जोवंत ।

रागमालाओं के उपर्युक्त विवरण के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

- १—रागमालाओं का आधार शास्त्रीय तथा संस्कृत संगीत साहित्य है ।
 - २—लक्षणों में विशेष अन्तर नहीं है, केवल थोड़े बहुत परिवर्तन से संस्कृत लक्षणों का अनुवाद कर दिया गया है ।
 - ३—वर्णन शैली, दोहा-सवैया या दोहा-घनाक्षरी छन्दों के आधार पर चली है । अन्य छन्द भी हैं, किन्तु प्राधान्य उपर्युक्त छन्दों का है ।
 - ४—उदाहरणों में शृंगार-विषय प्रधान है । विविध प्रकार के प्रणय चित्र, संयोग और वियोग शृंगार के अन्तर्गत प्रस्तुत किए गए हैं ।
 - ५—नायिका भेद का विषय बहुत प्रमुख और स्पष्ट रूप में चित्रित हुआ है । अलंकार स्वभावतः आ गए हैं और पिंगल शास्त्र का उल्लेख गीत छन्दों के स्वरूप निर्धारण के अन्तर्गत हुआ है ।
 - ६—भाषा प्रधानतया ब्रजभाषा है, उसमें बुन्देलखंडी, राजस्थानी, तथा कहीं कहीं बहु प्रचलित फ़ारसी शब्दों का भी मेल है । भाषा में संगीत तत्त्व प्रमुख है ।
- उपर्युक्त विशेषताएँ शृंगार युगीन काव्य के साथ संगीत काव्य के साम्य को स्पष्ट करती हैं । दोनों क्षेत्रों की एकरूपता बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है ।

चित्र रागमालाएँ

शृंगार युग में वादशाहों के चित्र कला प्रेम के कारण फ़ारसी और हिन्दी की रचनाएँ चित्रित की जाती थीं । चित्रों को कविताओं में और कविताओं को चित्रों में बदलना मुगल कालीन भारत में एक अलग कला ही बन गई थी ।^१ इसी के फलस्वरूप अनेक संगीत

१. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक—त्रिभुवनसिंह, पृ० २४ ।

ग्रन्थ, विशेष रूप से रागमालाएँ चित्र रूप में अंकित की गईं । रागमालाओं की पूर्व वर्णित पंक्ति में ऐसी कुछ चित्र रागमालाओं को रखना भी अप्रासंगिक न होगा । यहाँ कुछ उन रागमालाओं का भी परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनका विषय भी यद्यपि राग और रागिनियों का स्वरूप-वर्णन ही है, परन्तु चित्रों में अंकित होने के कारण उनका अपना विशेष महत्व है । काव्य की पंक्तियों में व्यक्त भाव को लेकर उसके आधार पर चित्र अंकित किए गए हैं । इनमें से कुछ तो उपलिखित रागमालाओं में से ही हैं, और कुछ भिन्न हैं । ये सभी रागमालाएँ राजाश्रय में लिखी गई हैं, अतः कवि के द्वारा स्वयं नहीं चित्रित की गई हैं, वरन राजाओं की कला-प्रियता के कारण सुन्दर भावों से युक्त रागमालाओं को लेकर राजाश्रित चित्रकारों के द्वारा उनका अंकन किया गया है । यों तो चित्रकला की विविध शैलियों की दृष्टि से उनका अपना अलग महत्व है, पर यहाँ केवल काव्यात्मक महत्व को दृष्टि में रखकर उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है ।

ऐसे ग्रन्थों में हरिवल्लभ का 'संगीत दर्पण'^१ लक्ष्मणदास कृत 'रागमाला'^२ गोविन्द कृत 'रागमाला'^३ उल्लेखनीय है ।

हरिवल्लभ के संगीत दर्पण की यह प्रति सुन्दरतम कही जा सकती है । सभी रागों के चित्र दिए गए हैं, यद्यपि केवल एक सौ सोलह दोहों की रचना है । अपूर्ण प्रति है । कहीं कहीं काव्य में वर्णित रूप और चित्रित स्वरूप में साम्य नहीं है । चित्रकार के मौलिकता के प्रेम के कारण ऐसा हुआ जान पड़ता है । उदाहरण के लिए, भैरव का वर्णन है :

भैरव राग विराजत भू पर,

सीस जटानि में गंग तरंगति लोचन चन्द लिलार्ति ऊपर ।

हर रूप किए कर मूल लिए हरिवल्लभ दीभे वजे, डमरू पर ।

भूपन नागनि के तन में धरि भैरव राग विराजत भूपरि ।

चित्र में शिव जटाधारी तो हैं, परन्तु जटाओं में गंगा नहीं है, चन्द्रमा भी नहीं है । हाथ में त्रिशूल के स्थान पर वीणा लिए हैं, डमरू भी नहीं लिया है, धोती पहने हैं । नागों के स्थान पर मोती के आभूषण हैं । संग में तीन स्त्रियाँ हैं । एक गाने के लिए है, दूसरी मृदंग और तीसरी शंख बजा रही है । इस प्रकार भैरव के प्रसिद्ध योगी रूप में भी श्रृंगारिक रूप का ही आरोप कर दिया गया है ।

लक्ष्मणदास की 'रागमाला'^४ में रागों के स्वरूप और चित्र वर्णन में समानता है, परन्तु वर्णन में मौलिकता है । भैरवी, भैवर की रागिनियों में से भी एक है और हिडोल की भी एक रागिनी है । श्री राग की रागिनी को भी 'श्री' बताकर उसका वर्णन करते हैं—

“अथ श्री राग की रागिनी श्री रूप वर्णन ।

मृदुल दुर्बल स्याम सरीर । ऊजल मंजुल भीने चीर ।

१. गंगा गोल्डेन जुवली म्यूजियम, तथा खज़ांची चित्रशाला, बीकानेर ।
२. भारत कला भवन, बनारस यूनिवर्सिटी ।
३. वही ।
४. भारत कला भवन, बनारस यूनिवर्सिटी, बनारस ।

खंजन गंजन राजत नैन । कोकिल कल जीते मृदु वैन ।
 परम मनोहर रूप उज्यारी । तलफ़ति पंच वान की मारी ।
 पोड़स वरस मध्य वर नारी । पिउ विदेस विरहिनि दुपकारी ।
 लै पाटो लेपनि लै तिया । दरसन हेत लिप्यो कर प्रिया ।
 भई सुमंगल मूरति जवहीं । अस्व सिधु उमगे दृग तवहीं ।
 आंखिन तैं आंसुन की धार । जनु छूटे मोतिन के हार ।
 लोचन जल करि दिष्टि दिखाई । पिय तनु चिथु न देख्यो जाई ।

हिंडोल राग की रागिनी देसाप में नवीनता के कारण नारी का परुष रूप चित्रित किया गया है ।

माल मेप देसाप विराजै । जाकी दुति हिमकर छवि लाजै ।
 पवो ठोककर करी अवाज मानौ सरद मेघ की गाज
 मल जुघ कौं कछनी किए । है सब मधु गुमान हि लिये ।
 बहु विसाल ऊंचंडु जाके रूप कपै भुव पंडु ।
 ताकी अली माल वृषु धरें । आनन्दि उमगि अवागाव भालरै ।
 माल रूप एक मांडी लगै प्रीतम चित्तु पैम लपि पगे ।
 लगति लगति ऊपर चढि गई । नीचे नागन वनि फिर लई ।

दोहा— गुन आगरि नागरि तन सुगन्ध जनु साथ ।
 राषी चित चेतरेपति इमि देपी देसाप ।

इसके चित्र में भी एक स्तम्भ पर उल्टी चढ़ी हुई नग्न स्त्री है । दो पहलवान व्यक्ति इधर-उधर खड़े हैं । इस शैली विशेष में शारीरिक बल की ओर महत्त्व दिया जान पड़ता है । तभी नग्न स्त्री को भी पहलवानों के मध्य दिखाया है ।

गोविन्द कवि की 'रागमाला'^१ में शृंगारिक वर्णन अधिक है । यद्यपि अनेक स्थलों पर अक्षर अस्पष्ट हैं, फिर भी अर्थ जाना जा सकता है । इसमें भी रागों का परिवार और स्वरूप वर्णन है । राग दीपक की रागिनी देसी का वर्णन है—

दिपावत दर्पन अंग म...हां काम कलानि बढावतु है
 रहै चित उदास पिया परदेस हैं और कछु न सुहावतु है ।
 हार सिंगार बनाय क अंग सपी यह हासु बढावतु है ।
 गोविन्द कहै यह दीपक को रागिनी देसी ये नाम कहावतु है ।

चित्र में भी ऐसा ही चित्र अंकित है ।

इसके अतिरिक्त कुछ पूर्ण और कुछ खंडित प्रतियाँ, बम्बई तथा लखनऊ म्यूजियम में प्राप्त हैं । चित्र रागमालाओं का विभाजन चित्र-शैली तथा राग विशेष के नामों के आधार पर किया जाता है, अतः एक ही रागमाला के पृष्ठ भिन्न भिन्न पुस्तकालयों में बिखर गए हैं । लखनऊ म्यूजियम में कुछ रागमालाओं की खंडित प्रतियाँ हैं । चित्र रागमालाओं

१. भारत कला भवन, बनारस यूनिवर्सिटी, बनारस ।

की इन खंडित प्रतिष्ठों का साहित्यिक दृष्टि से यही महत्त्व है कि एक चित्र पर लिखी हुई पंक्तियों के आधार पर कवि की सम्पूर्ण रचना को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, लखनऊ म्यूजियम में बीकानेर शैली की एक रागमाला प्राप्त है, जिसमें कवि अनंत की रचना के आधार पर चित्र बनाये गए हैं। उसका एक अंश यहाँ दिया जाता है।

“रागिनी मालविका—

भैरुं की रागिनी मालविका नाम।

थलनुतपनि कमल दल लीये । तन पीने दीपरावति कीये ।

श्री फल ब्रछ तरे विश्राम। कवि अनंत मालविका नाम।”

अथवा “श्री राग की रागिनी गुजरी प्रथम।

स्याम सरीर अति सुंदर केस। मलय ब्रछ पलवनि सुदेस।

कर लीये साव कारति करै नाव अनंत गुजरी घरै।”

इसी प्रकार सम्पूर्ण ‘रांग माला’ के चित्र कवि के नाम की छाप से समन्वित कविता के आधार पर एक ही स्थान पर संकलित किए जा सकते हैं। इस प्रकार की रागमालाएँ समस्त भारत के विभिन्न ‘कला-संग्रहालयों’ में प्राप्त हैं।

व्यावहारिक संगीत-साहित्य

व्यावहारिक संगीत-साहित्य से तात्पर्य है—वह साहित्य-संगीत जो समाज के लिए विशेष उपयोगी रूप में प्रयुक्त हो। इस साहित्य को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है :—

१—उदाहरण ग्रन्थ

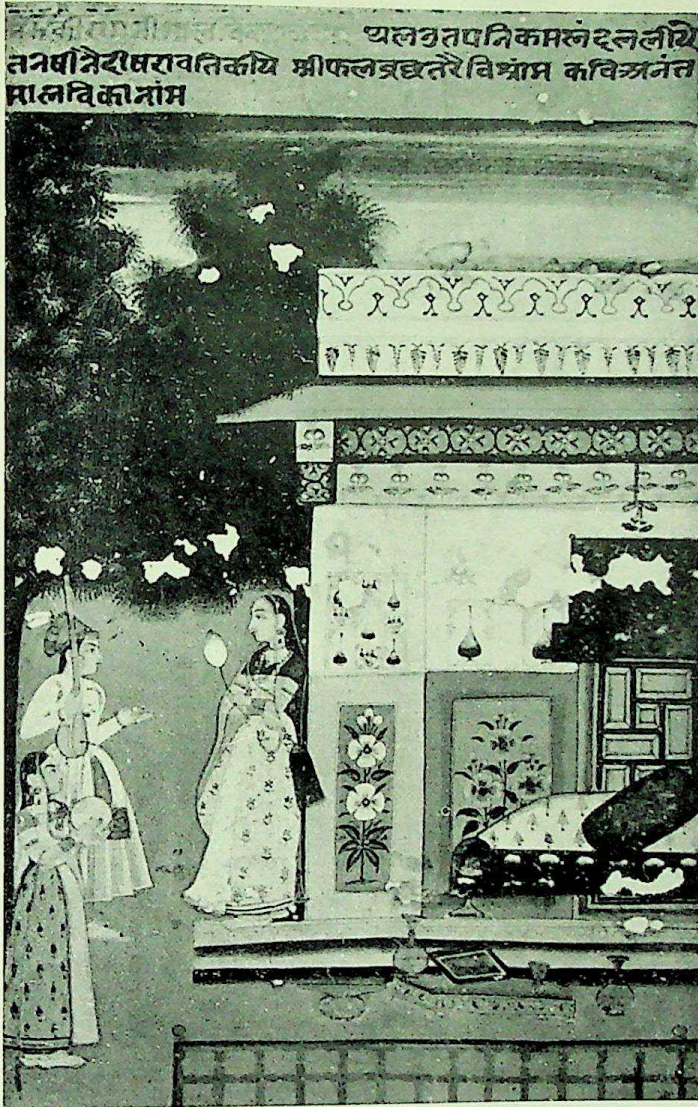
२—जन संगीत

धार्मिक दृष्टि से ईश्वर की स्तुति के लिए लगभग सभी देशों में संगीत का आश्रय लिया जाता है। भारतीय समाज में धार्मिक उत्सवों के अतिरिक्त ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब केवल संगीत के ही माध्यम से भारतवासी अपने आत्मा को प्रकट करते हैं। इस प्रकार का संगीत उनके जीवन में इतना विद्यमान है कि किसी भी शुभ घड़ी को मनाने के लिए गीतों का आश्रय लेना आवश्यक है, इसका प्रमाण वैदिक काल से मिलता है। ईश्वर को रिझाने के लिए यदि हमें भजन, कीर्तन पद और आरती की आवश्यकता पड़ती है तो वच्चे के जन्म, विवाह अथवा अन्य किसी अवसर पर, बधावा, घोड़ी, बत्ता आदि गीतों को गायक हर्ष मनाया जाता है। यह केवल घरों में ही सीमित नहीं रहा। सामाजिक, राजनीतिक तथा किसी भी प्रकार के सामूहिक उत्सवों के लिए सामूहिक गान और सामूहिक नृत्यादि से अवसर को राग रंजित किया जाता रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदि काल में लिखे गए अनेक ‘रासो’ इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

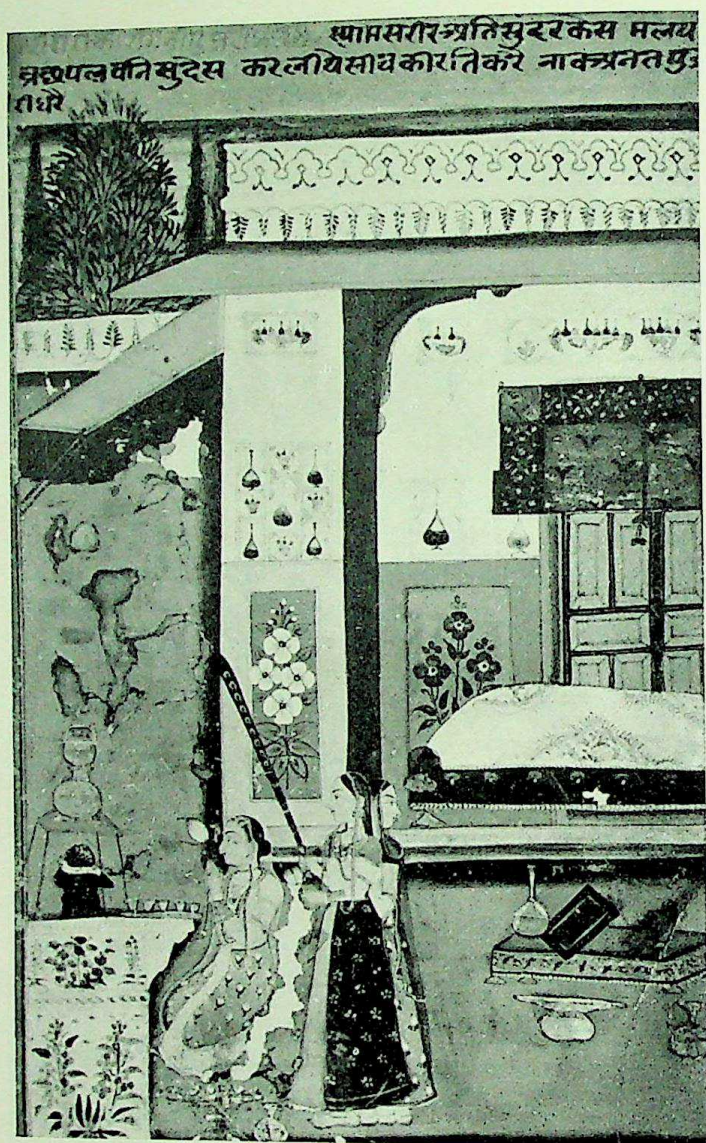
जनता की इस व्यावहारिक माँग के ही कारण ऐसी सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त

१-देखिए, चित्र रागिनी मालविका।

२-देखिए, चित्र रागिनी गुजरी।



रागिनी मालविका
(स्टेट म्यूजियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)



रागिनी गूजरी
(स्टेट म्यूजियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)

है, जिसका विविध अवसरों पर, साधारण जन समूह द्वारा, राज घरानों में, उत्सवों में तथा मन्दिरों में गायन होता था और उसका अपना अलग महत्त्व था। शृंगार युग में संगीत का प्रचार होने के नाते हर समय पर इसकी आवश्यकता पड़ती थी, अतः ऐसे गीतों से साहित्य का भी कोष भर गया। इसमें राग-रागिनियों को भी महत्त्व मिला और कुछ केवल गेय काव्य के रूप में व्यवहृत रहा।

संख्या में अधिकता और विषय में विविधता होने के कारण इस कोटि की रचनाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

प्रथम, उदाहरण ग्रन्थ

और

द्वितीय, जन-संगीत।

उदाहरण ग्रन्थ

शृंगार युगीन काव्य की विशेषताओं में से एक है—लक्षण-लक्ष्य ग्रन्थों का लिखा जाना। आचार्यत्व की उपाधि प्राप्त करने की इच्छा से कवियों ने रीति ग्रन्थ लिखे। संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार हिन्दी में भी काव्य शास्त्र, नाट्य शास्त्र और छन्द शास्त्र आदि पर लक्षण ग्रन्थ लिखे गए और लक्षण ग्रन्थों के आधार पर जो लक्ष्य ग्रन्थ लिखे गए, उन्हें उदाहरण ग्रन्थों के नाम से पुकारा जा सकता है। ये लक्ष्य ग्रन्थ शास्त्रीय दृष्टि से तो पूर्ण हैं, परन्तु उनमें रस का स्वाभाविक प्रवाह कम मिलता है। संगीत-काव्य के उदाहरण ग्रन्थ लक्ष्य ग्रन्थों से कुछ भिन्न हैं। इनमें दोनों प्रकार के ग्रन्थ प्राप्त हैं। कुछ शास्त्र को दृष्टि में रख कर लिखे गए हैं और कुछ ग्रंथों में ऐसे गीतों की रचना है जो शास्त्रीय दृष्टि से संगीत के लक्षणों के अनुसार ठीक बैठते हैं, ऐसे ग्रंथों को उदाहरण ग्रन्थों में रखा गया है। इनमें नियमों की कठोरता न रहने के कारण स्वच्छन्द प्रवाह भी मिलता है। सभी राग-रागिनियों में बद्ध गीत काव्य को उदाहरण ग्रन्थों के अन्तर्गत रखा गया है। ये काव्य साहित्यिक दृष्टि से भी सुन्दर हैं। ऐसा साहित्यिक उदाहरण-काव्य अधिकांशतः साहित्य के विद्यार्थियों के सम्मुख आ चुका है, जैसे सन्त साहित्य और भक्ति साहित्य। यहाँ पर ज्ञात साहित्य पर संक्षेप में विचार करके केवल अप्रकाशित और अभी तक लगभग अज्ञात रचनाओं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

भक्ति-काव्य

भक्ति काव्य के अंतर्गत निर्गुण सन्तों तथा सगुण भक्तों द्वारा रचित काव्य संगीतात्मक है। संत साहित्य में विविध मतों के सन्तों के भजन राग-रागिनी बद्ध मिलते हैं। विशेषतया दादू पंथियों के असंख्य पद संग्रह हैं। वह एक अलग विषय है। यहाँ तो केवल यह देखना है, कि उससे और संगीत के लक्षणों से कितना सम्बन्ध है। यह ठीक है कि ये वैराग्य पूर्ण भजन सन्तों द्वारा गाए जाते थे और उन्हीं रागों में गाए जाते थे, जिनमें लिखे हुए मिलते हैं, परन्तु यह केवल एक परम्परा का निर्वाह करने के हेतु था। यदि कोई भजन भैरवी में गाया जाता है तो इसका अर्थ यह नहीं था कि माल कोष में उनको नहीं गाना चाहिए या

गौरी में गाने से उसका प्रभाव बदल जाएगा, वरन् केवल इसलिए कि गुरु के द्वारा जिस राग में भजन गाया गया वह शिष्यों के द्वारा उसी में गाया जाता रहा और लिपिकारों के द्वारा उसी प्रकार लिखा गया। अब केवल पढ़ने और लिखने में ही राग के नाम का निर्देश होता है, शेष कोई सम्बन्ध नहीं।

इन गायकों को रागों के सम्बन्ध में इतनी जानकारी अवश्य थी कि अमुक राग अमुक समय में ही गाना चाहिए, अतएव जाग्रति के सन्देश का गीत भैरव-भैरवी में गाया गया। जो पद गुरु ने जिस समय गाया, उसे उसी समय के अनुकूल राग में बाँध दिया और शिष्य उसे उसी प्रकार गाते रहे। ऐसा राग-वद्ध काव्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त है।

राग-वद्ध गीत-साहित्य का प्रचार बहुत अधिक था। सन्तों का सम्बन्ध अधिकतर जनता से था, अतः ऐसा राग-वद्ध साहित्य लोक-गीतों के रूप में साधारण जन-समूह को कंठाग्र भी है और लिखित रूप में भी प्राप्त है।

सन्तों के अतिरिक्त सगुण भक्तों के भजन-संग्रह भी रागों में बद्ध मिलते हैं। भक्ति-साहित्य में राग-रागिनियों का अधिक महत्त्व है, इसका कारण उनकी सगुण भक्ति है। सगुण भक्ति होने के कारण उनकी उपासना मन्दिर में किसी देवता को प्रतिष्ठित करके भी होती थी और मन्दिरों में प्रातः से लेकर रात्रि तक, समय के अनुसार रागों में पद (गीत) गाए जाते थे। उसी परम्परा का पालन अन्त तक होता रहता था। इन पदों (गीतों) में रागों का स्वरूप भी कम बिगड़ता था। मालकोंस का भजन उसी-राग के स्वरों में रात्रि को ही गाया जाता था। सुबह के समय रात्रि का राग नहीं गाया जाता था। यही कारण है कि लगभग जितना अष्टछापी साहित्य मिलता है, सभी रागवद्ध है। शृंगार युग में केवल कृष्ण भक्ति ही प्रचलित थी, अतः तत्कालीन सभी भजनों का आलम्बन कृष्ण है। इसका उदाहरण आज भी भारत के कुछ मन्दिरों में मिलता है, जहाँ परम्परा का पालन हो रहा है। वहाँ हमें भक्तिकालीन गेय काव्य के स्वरूप की भाँकी मिलती है। नाथद्वारा (उदयपुर) का श्रीनाथ जी का मन्दिर इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। भोर से रात्रि के दस बजे तक का परम्परानुगत कार्यक्रम और श्रीनाथ जी की प्रत्येक सेवा पर विशेष रागों में बद्ध विशेष भजनों का गायन अभी तक प्रचलित है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि रागों में उसी स्वर-लिपि का प्रयोग अब भी किया जाता है, जो उस समय प्रयुक्त की जाती थी या लक्षणों की दृष्टि से रागों का सही गायन होता है—क्योंकि उनके गाने का ढंग ऐसा है, जिनमें अशुद्धि होना सम्भव ही नहीं, अनिवार्य है। निर्धारित समय में निर्धारित कुछ भजनों की नियुक्ति आठ या नौ गायकों के द्वारा गाये जाने के आदेश का अब भी पालन किया जाता है। समयाभाव के कारण द्रुत लय हो जाती है और शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का लग जाना सम्भव ही है, अतः राग के लक्षणानुसार स्वर नहीं लग पाते, परन्तु गायन-काल का ज्ञान अभी तक गायकों को बहुत पूर्ण है। इसके अतिरिक्त, होली के दिनों में धमार का गायन और प्रातःकालीन स्तुति के लिए गम्भीर ध्रुपद का गायन अभी तक प्रचलित है, किन्तु उन गीतों में भी द्रुत लय के कारण धमार के बोल चाँचर में परिवर्तित हो जाते हैं और गीत (पद) की मूल गम्भीरता नष्ट हो जाती है।

चाहे उन गीतों का वर्तमान रूप कुछ भी हो, रागों में वाँवने का महत्त्व इससे सिद्ध होता है। एक ही पद यदि भिन्न रागों में मिलता है, तो भी इसका कारण यही जान पड़ता है कि वह पद विभिन्न कालों में गाया गया है। ये भक्त गायक रागों को समयानुसार ही गाते थे। इस साहित्य की मात्रा बहुत अधिक है। भक्ति काल से चला आता हुआ साहित्य श्रृंगार युग में भी जीवित रहा। अनेक संग्रह ऐसे प्राप्त हैं, जो केवल भजनों को एकत्र करके बनाए गए हैं।

उदाहरण ग्रन्थों में कृष्णानन्द व्यास देव 'रागसागर' कृत राग कल्पद्रुम^१, कुदरतुल्ला कृत रागमाला^२, व्यास कृत रागनिर्णय व्यास जी की वाणी^३, पं० देवकी नन्दन मिश्र गौड़ की पुस्तिका (जिसमें मुसलमान कवियों के पद संग्रहीत हैं)^४, गहर गोपाल कृत संगीत पञ्चवीसी^५, राग रत्नाकर तथा भक्त चिन्तामणि^६, मानसिंह कृत राग-सागर^७, जवानसिंह जी 'वृजराज' कृत 'रस-तरंग'^८, नागरीदास कृत अनेक ग्रन्थ^९, प्रतापसिंह जी 'वृजनिधि' कृत हरि पद संग्रह^{१०} को लिया गया है।

राग-कल्पद्रुम

उदयपुर महाराणा के संगीतज्ञ श्री हीरानन्द व्यास देव के पुत्र श्री कृष्णानन्द व्यास देव 'राग-सागर' का लिखा हुआ 'राग कल्पद्रुम' एक सुन्दर उदाहरण ग्रन्थ है। इसमें नाद, स्वर और संगीत-शास्त्र के मुख्य अंगों पर संक्षेप में, अन्य संस्कृत ग्रन्थों के उद्धरण देकर उदाहरण स्वरूप भजन दिए हैं। इन भजनों का संग्रह इन्होंने बीस-वाइस वर्ष भारत भ्रमण करने के पश्चात् किया है। इसीलिए इसमें संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, कर्णाटी, तैलंगी, तामिल, बंगला, उड़िया, अरबी, फारसी, उर्दू, पेंगयान, अंग्रेजी तथा राज-पूताने की नाना प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित अनेक प्राचीन गानों का संग्रह है। बहुत से ऐसे गान हैं जो अब प्रायः लुप्त हो चुके हैं, अतः अनेक प्रसिद्ध और अज्ञात संगीतज्ञों तथा लेखकों की रचनाओं के साथ 'राग सागर' कृत रचनाएँ भी हैं।

यह ग्रन्थ सात विभागों में विभक्त है। 'राग विवेकाध्याय' संस्कृत में है। 'राधा

१. पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय।
२. आर्य भाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
३. वही।
४. वही।
५. वही।
६. पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय; म्यूजियम, अलवर।
७. मुनि कान्ति सागर संग्रह, उदयपुर।
८. पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर; मुनि कान्ति सागर संग्रह, उदयपुर।
९. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।
१०. ब्रज निधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा द्वारा सम्पादित।

गोविन्द संगीत सार' के समान इसमें भी तान-प्रस्तार, आलाप, पलटा प्रस्तार, अलंकार आदि की सरगमें दी हैं ।

उदाहरण स्वरूप, स्वरालाप पलटा प्रस्तार

स रे ग म प ध नि १ स नि ध प म ग रे स २
सरे सेरेग १ रेग रेगम २ ग म ग म प ३ म प म प ध ४
प ध प ध नि ५ ध नि ध नि स ६ स नि स नि ध ७
नि ध नि ध प ८ ध प ध प म ९ पम पम ग १०
मग म ग रे ११ ग रे ग रे स १२

इस ग्रन्थ में तत्कालीन प्रचलित लक्षण गीतों का भी संकलन है । उदाहरण के लिए सदारंग का प्रचलित भैरव का लक्षण गीत चौताल में इस प्रकार दिया है:—

‘भैरव चौताल’

स रे रे ग म प ध नि सप्त स्वर मो मन में ऐसे आए ।
आरोही अवरोही स रे ग म नि ऐसे होत नि ध प म ग रे स ।
पुन दुगुन कीजै तो ऐसे लीजै सुरन को तव आवे
सवन के मत में कण्ठ को सुधार ।
धनि सनि सरे सरेग रेग मग मप मप मप ध प ध नि ध
नि स सनि धनि धप धम मप मग मग मग रे ग रे स

अथ दूसरा आभोग

दुगुन सरगम कियो विचार
गुरून पै सिख के स्वरन को उचार
सस रे सस सरे गरेस मस रे ग रे स स रे ग म गरेस
स स रे ग म प ध नि ध प म ग रे स । स रे ग म प नि ध नि स
नि ध प म ग रे स नि ध प म ग रे स ध प म ग रे स
प म ग रे स म ग रे सा ग रे सा सा नि नि ध नि
नि ध प ध ध प स प प म ग म ग रे ग ग रे स रे रे स ।

अथ तीसरा आभोग

और दुगुन कीजै तो ऐसे होते हैं
सवन के श्रवण में नीके सुहावे
स स रे स रे रे रे ग रे ग ग म ग म म प स
प प प ध प ध ध ध नि ध नि नि नि स नि सा
नि सा सा नि सा नि नि नि ध नि ध ध ध
प ध प प प म प म म ग म ग ग ग रे ग रे रे रे स रे सा ।

धुरपद मध सदारंग बनाई

सभी प्रकार के लक्षण गीत, गीत, भजन और लोक गीत, एकत्रित हैं । उदाहरण के लिए एक लोक गीत है,

“महाराज बननिया गीने चली, अरे हों ठाढ़ी रही रे ।
 नैनो रोवे वारी मुख हंसे री, छटकी न खाई है पछाड़,
 आए बनिया ले चले गवने नेहर हो गए पहाड़—अरे हों ठाढ़ी रही रे । ॥”
 देशी तथा विदेशी भाषाओं के गीतों का भी संकलन है । उदाहरण स्वरूप पंजाबी का एक
 ध्रुपद है ।

‘असा नाल कुड़ी कुड़ी गलांकर ।
 दारहंदा प्यारिय और दे नाल
 हंसदा बोलदा सदेखे जादानी के घोलघोल
 रतदेहाडे ध्यान रहंदातु
 साड़ा सोण्या आवदा नांही साडडे कोल
 मायल करसानु घायल कीना
 सावली सुरत निरखहु न लीना चितचोर अमोल ।
 भोंह कमान तिरछी चलावदा
 नैना दे वानतु सोच लावदा तोल तोल ।’

गायन की विभिन्न शैलियों के गीत ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, तराना आदि
 सभी संग्रहीत हैं ।

‘टप्पा

मेड़े वेड़े नुआमीवे तेड़े घोल घतिने
 नित उठ ज़िंद तप दी रहंदिवे
 तेड़े खातर अपने पराए लोक देसाई
 तेड़े न चह दिवे ।’

राग-रत्नाकर तथा चितामणि

प्रकाशित पुस्तकों में ‘राग कल्पद्रुम’ के पश्चात् ‘राग-रत्नाकर तथा भक्त चिन्तामणि’
 उल्लेखनीय हैं । इसमें अष्टछापी भक्त कवियों के पद संग्रहीत हैं । इन पदों का संग्रह लाला
 भक्त राम, मेम्बर धर्मसभा, जालन्धर ने विनोदार्थ किया था । संवत् १९७८ में खेम राज
 श्री कृष्णदास ने इसको प्रकाशित कराया । इस पुस्तक में कृष्ण भक्तों के प्रचलित पद
 संकलित है । ये रचनाएँ राग और तालबद्ध हैं । इनका साहित्य में बहुत महत्त्व है । इसमें
 स्वरों के लक्षण नहीं हैं, केवल उदाहरण स्वरूप भजन ही दिए गए हैं । इनका भजनों की
 दी हुई रागों से सम्बन्ध यही है कि ये गीत इन्हीं रागों में और इन्हीं तालों में गाए जाते
 रहे होंगे । कृष्ण से सम्बन्धित सभी विषयों पर बनाए गए पद, विनय के पद, पूजा तथा
 सब अवसरों पर गाए जाने वाले पद, मिलते हैं । जन्म, दान, साँझी, सरद, होली आदि
 पर लिखे गए हैं ।

राजाओं की रुचि के कारण संगीत में भी चंचलता का आदर था, अतएव ध्रुपद
 और धमार की कम बन्दिशें मिलती हैं और ख्याल, ठुमरी और टप्पा अधिक मिलता है ।

धमार की संख्या यदि अधिक है तो उसका कारण यह है कि धमार होली गायन है। होली पर पूरे मास उत्सव मनाया जाता था। उसमें धमार आज के समान गम्भीरता से न गाया जाकर, द्रुत लय में गाया जाता था, अतः चाँचर^१ के समान प्रभाव डालता था। ध्रुपद में भी विषय की गम्भीर तान रहकर शृंगारिक पद गाए जाते थे। जैसे,

लाय दिखावो री माई प्यारे को चरण

श्याम विरह मोहि व्यापत है वाही के शरण ।^२

यही बोल 'ख्याल' के हो सकते हैं।

इन संग्रहों में राजस्थान के महाराजाओं का बहुत बड़ा हाथ है। महाराजा मानसिंह 'रस राज', 'जवानसिंह जी महाराज' 'ब्रजराज', 'नागरीदास (सावंतसिंह)', प्रतापसिंह जी महाराज 'ब्रजनिधि' के बहुत संकलन मिलते हैं। इन सभी ने विभिन्न प्रचलित राग-राग-नियों में प्रचलित गीतों का संकलन किया है।

महाराज मानसिंह ने एक ग्रन्थ 'राग सागर' लिखा और इसके अतिरिक्त अनेक गीतों की रचना की। गीत अधिकतर शृंगारिक भावनाओं से भरे हैं। ध्रुपद भी 'चारताल' में है, पर उसमें न तो चारों अंग, स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग हैं और न भावों की गम्भीरता है। उदाहरण के लिए,

'राग देवगंधार चौतालो

राखे कजरारे तेरे जून विना ही दीनै अंजन के अनिय्यारे। अस्ताई

मतवारे रसराज विना ही मद प्याके कन्हईय्या कुं पियारे ।^३

ध्रुपद और ठुमरी में भावों तथा आकार की दृष्टि से विशेष भेद नहीं है ।^४

'राग कालिंगडौ ठुमरी आडो तितालो

अलबेले चम्पा चीर में । असताई

विजली सो चमके सरीर पियारी जी रो

पियरी घटा की भीर में

इनके काव्य में शृंगारिता भी बहुत है।

जवानसिंह जी महाराज ने 'ब्रजराज' और 'नगवर' के नाम से राग और ताल में बद्ध सुन्दर रचनाओं का संग्रह किया है और कुछ स्वयं भी बनाए हैं। इन्होंने केवल ध्रुपद ख्याल, टप्पा, ठुमरी ही नहीं लिखे हैं, बरन् घोड़ी, बन्ना, समघिन के स्वागतार्थ गीत, साँझी या किसी भी अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों को राग-ताल में बाँध कर लिखा है ।^५

१. चाँचर एक चंचल गति की ताल है।

२. रत्नाकर तथा भक्त चिन्तामणि, लखनऊ यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी; म्यूजियम, अलवर।

३. ध्रुपद गान्धर्व प्रधान तथा ठुमरी चाँचल्य प्रधान गीत है।

४. जन्म के समय का गीत—'बघाई सारंग': अलबेली जचा माग सुहाग भरी हो गोद खिलावे प्यारे लाल कों।

संगीत-काव्य के विविध रूप तथा वर्गीकरण

८१

इन्होंने अधिकतर 'नगधर' के नाम से पद लिखे हैं। पुरातत्त्व मन्दिर (अब जोधपुर में है) में जो इनके संग्रह की खंडित प्रति 'गीत-संग्रह' के नाम से मिलती है, उसमें 'नगधर' के नाम से ही पद हैं। जैसे—

‘भूलत भूमक भूकोर नमें अति नगधर पिय मन भाई’
अथवा ‘नगधर स्याम तमाल के मनु लपटी हैं वेल सुहाई हो।’^१
अन्य गीतों के अतिरिक्त रास के गीत और उस पर काव्य बहुत सुन्दर हैं। सामूहिक नृत्य ‘गरवा’ जो गुजरात में बहुत प्रचलित है, उसके लिये लिखे गए गीत अत्यन्त सुन्दर हैं। गुजराती, मेवाड़ी, मारवाड़ी और ब्रज भाषाओं में पद हैं। रास के पद (गीत) का उदाहरण—

“राग ईमन रास चीतालो
थोंग थोंग तत तत तत थेई थेई थेई
नृत्यत सुवर स्याम ताल मन भाई
धुमकट धुमकट धिलान रंग रही पिय संग नृत्यत
नवेली सबही सुहाई।
तता थेई तता थेई थोंग गतें लेत प्रीतम संग
गत अलान मिली राग केदारो गाई।
उघट उघट रीझ नगधर संग रंग लेत
चपल नैन वक्रु भहें त्रिभुवन छवि छाई।”

‘नगधर’ के संग्रह में कहीं कहीं नागरीदास कृत दोहे या पदांश और हरिदास स्वामी कृत दोहे भी गीतों के बीच बीच में मिलते हैं।

‘नागरीदास’ महाराज सावंतसिंह का उपनाम है। इन्होंने ‘उत्सव माला’^२ में राधा कृष्ण के वर्षोत्सव का राग-रगिनियों में वर्णन किया है। इनकी एक पुस्तक ‘पद-मुक्तावली’ पोथी खाना, जयपुर में है, जिसका लिपिकाल सं० १७६८ है तथा लिपिकार नानग राम है।

नन्द महर कुल दीप उजारो शत्रुन के उस साल को
महर जसोदा ढोटा जायो सोहत है तन स्याम को
नगधर जनम असीसन टाढिन भैया भयो बलराम को।
या वनरा राग सोरठ मल्हार-ताल भूमरी
बनडा जा हो राज नवल बना रे रंगराता।
भुष पंकज की सोभा निरषत निरष निरष निरषाता
प्रोत छके देषत प्यारी कुं थिर दृग वहि दिस जाता।
देष छबी दृग धंजन इकटक नगधर पिय मदमाता।

१. गीत-संग्रह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. म्यूजियम, अलवर।

इनके संग्रह फाग विलास,^१ फूल विलास^२, फाग-विहार^३ के नाम भी प्राप्त हैं। नागरी दास के अन्य अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं तथा सभी समान रूप से संगीतात्मक हैं।

इसके अतिरिक्त प्रतापसिंह ब्रजनिधि के 'ब्रजनिधि-वीसी',^४ 'प्रेम-प्रकाश'^५ 'फाग-रंग', 'रमक भमक वत्तीसी' (अठारह कृतियों का संग्रह),^६ 'गीत-संग्रह',^७ चतुर कवि के 'कवित्त संग्रह'^८, सिरदारसिंह जी का 'सुर-तरंग',^९ महमद शाह की 'संगीत मालिका टीका'^{१०}, 'शृंगार-संग्रह'^{११} आदि अनेक कवित्त-संग्रह ऐसे प्राप्त हैं, जिनमें राग और ताल वद्ध गेय पदों का संग्रह है।

जन-संगीत काव्य

व्यावहारिक संगीत ग्रन्थों में दूसरा वर्गीकरण 'जन-संगीत काव्य' का है। 'जन-संगीत काव्य' का अर्थ है जो काव्य जन मात्र पर आधारित अथवा उससे सम्बन्धित हो। ऐसा गेय काव्य 'जन-संगीत काव्य' के नाम से यहाँ रखा जा रहा है। यह काव्य विविध प्रकार का है। विषय की दृष्टि से इसको हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं : ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक।

इस साहित्य की यह विशेषता है कि यह गेय है, परन्तु इनमें राग और ताल का बन्धन नहीं है। ताल के अभाव में कोई भी गायन कर्णप्रिय नहीं हो सकता, इसलिए प्रत्येक गीत बिना प्रयास के ही एक विशेष लय में बँध जाता है। यह लय विशेष, स्वयं ही एक ताल को जन्म दे देती है। गाँवों में प्रचलित वाद्यों पर ही ये गेय-काव्य ठीक बैठते हैं।

ऐतिहासिक गजल

ऐतिहासिक विषयों को आधार बनाकर 'गजल' और 'आल्हा' लिखे गए। जिस प्रकार 'आल्हा' में वीर रस प्रधान रख कर ऐतिहासिक कथाओं से कथानक लेकर एक विशेष लय वद्ध गेय काव्य बनाया जाता है, उसी प्रकार 'गजल' में कवि अपने राज्य के राजा का,

१. म्यूजियम, अलवर।
२. वही।
३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. पोथीखाना, जयपुर।
५. म्यूजियम, अलवर।
६. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. म्यूजियम, अलवर।
८. पब्लिक लाइब्रेरी, भरतपुर।
९. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
१०. वही।
११. लेखिका के निजी संग्रह में विद्यमान है।

नगर का, तत्कालीन नगर की स्थिति का तथा प्रकृति का थोड़ा-थोड़ा वर्णन करता है। दोनों ही काव्य सामूहिक गान के रूप में गाए जाते हैं। जन-संगीत काव्य में वर्णित 'गज़ल' आधुनिक गायन शैलियों में प्रचलित 'गज़ल' से सर्वथा भिन्न है। उसका वर्णन छन्दों में किया गया है। गज़ल का तात्पर्य है, वह विशेष छन्द जिसमें आठ मात्राएँ होती हैं। कहरवा (जो गांवों में बजाई जाने वाली तालों में अत्यधिक प्रचलित है) को दुगुनी लय में बजाकर, दो आवृत्ति में एक पंक्ति को गाया जा सकता है। जितनी गज़लें प्राप्त हैं, सभी की लय एक ही होती है। खेतल कवि की 'चित्तौड़ की गज़ल'^१, उदयपुर और 'चित्तौड़ की गज़ल'^२, अर्जुन चन्द कवि की 'दुगौली गांव की गज़ल'^३, कल्याण कवि कृत 'गिरनार गज़ल'^४, भोज कवि की 'उदयपुर गज़ल'^५, नन्ददास की 'वियोग ओली गज़ल'^६ आदि सभी में एक ही प्रकार की लय है।

खेतल कवि की चित्तौड़ की गज़ल का एक अंश यहां उद्धृत किया जाता है।

‘गढ़ चित्तौड़ है बंका
कि सांनु समंद में लंका
कि वेडल पूर तल बहती
कि अरू गम्भीर भी रहती
कि अल्लदेत अल्लादीन बांधी
पुल बड़ी परवीन गेंवी पीर है गाजी
कि अकबर अवली या राजी।’ आदि

कहीं कहीं एक-दो अक्षरों का बाहुल्य या कमी है। उसका कारण उनके गाने का विशेष ढंग है। 'कि' के प्रयोग से ही अगली पंक्ति प्रारंभ करने का बोध होता है। यह छन्द मुसलमानों के प्रभाव से ही हिन्दी में आया है, इसीलिए भाषा में भी उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है।

मजलस

गज़ल के अतिरिक्त एक प्रकार का काव्य मिलता है, जो 'मजलस' कहलाता है। बहुत से साहित्यकार तो इसे काव्य और फिर संगीत-काव्य मानने के लिए तैयार ही न होंगे, परन्तु जिस प्रकार गद्य का अंश होते हुए भी कुछ अंश पद्य का होने के कारण चम्पू को काव्य के अन्तर्गत रखा गया है, उसी प्रकार गद्य में लिखे जाने पर भी लयात्मक होने के

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

१. वही।

३. वही।

४. वही।

५. वही।

६. वही।

कारण 'मजलस' को भी संगीत-काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।^१ इसकी ओर अभी तक साहित्यिकों का ध्यान नहीं गया है। जितना साहित्य प्राप्त हैं, उसको देखने से पता चलता है कि इसको लिखने वाले या तो चारण कवि थे अथवा अन्य कोई भी दरबारी व्यक्ति थे। इनका प्रयोजन मुख्यतः राजा की प्रशंसा और दरबार का वर्णन करना होता था। विशेष प्रतिभावान न होने के नाते साधारण भाषा में उसको लिखते थे, परन्तु प्रत्येक वाक्य में एक ही तुक के कुछ शब्दों को जोड़कर गद्य को भी पद्य सा बना देते थे। सम्भव है कि यह 'मजलस' राजा के सामने दरबार में विशेष लय में गाया जाता रहा हो। मुसलमानी प्रभाव इस पर स्पष्ट है।

उदाहरण के लिए—

‘अथ मजलस लिख्यते
अहो आठो बेयार बैठो दरबार बंदणी रात कहो मजलस की बात
कहो कोण कोण मुलक कोण कोण राजा देपे कोण कोण
वादसाह देखे कोण कोण दईवान देपे कों कों महिवान देपे
हां तो कहें कि दिल्ली दईवान फरखुं साहि देपे
चीतौड़ संग्राम सीध दीवान देपे
जोधाम राठोंड़ राजा अजीत सिध देपे
बीकान राजा सुजाण सिध देपे
आवेर कछु ठाहो राजा जय सिध देपे
जे साण जदमुरावल बुध सिध देपे
ए कैसे हैं वड़े सुविहान हैं वड़े महिवान है वड़े सिरदार है
वड़े बूमदार हैं वड़े दातार हैं
जमी आसमान बीच संभू अवतार है
हा तो कहें कि वाह वे वाह साहिव की पनाह’^२ आदि।

इसी प्रकार प्रश्नोत्तर शैली में राजा की प्रशंसा की जाती है। शैली की विचित्रता ही विशेषता है। इस 'मजलस' का रचना काल सं० १८५२ है, लेखक का नाम अज्ञात है।

१. “कविता शब्द से सामान्यतया जो अर्थ ग्रहण किया जाता है, वह किसी अनुभूतिपूर्ण लय छन्दयुक्त कलापूर्ण अभिव्यक्ति तक ही सीमित होता है, किन्तु साहित्य के इतिहास में ऐसी कृतियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनका वाक्य-विन्यास गद्यवत् होते हुए भी लयात्मक है, जो छन्दहीन होकर भी संगीतमय है और जो अपनी भावानुभूति एवं कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति के कारण ठीक वैसा ही प्रभाव छोड़ती है जैसा कि कोई भी श्रेष्ठ काव्य-कृति !”—डा० नगेंद्र, आमुख, पुलकावली, बद्रीनाथ; प्रकाशक, आत्माराम एंड संज, १९६२, पृ० ५।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

संगीत-काव्य के विविध रूप तथा वर्गीकरण

८५

पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर (अब जोधपुर में) ऐसी अन्य कुछ मजलसों प्राप्त हैं, जिनका विषय और स्वरूप इसी प्रकार का है।

सामाजिक संगीत-काव्य

‘सामाजिक संगीत-काव्य’ में उन गीतों को लिया गया है, जिनमें समाज के प्रचलित रीति-रिवाजों और सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अवसरों को वर्ण्य-प्राधार बनाया गया है। जैसे, जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के जीवन में जितने हर्ष, के अवसर आते हैं उन सभी पर विशेष विषय को लेकर गीत गाए जाते हैं। जन्म, मुंडन, कर्णभेदन, तथा विवाह आदि के शुभ अवसरों पर बनाये हुए गीत इसके अन्तर्गत आते हैं। सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से कुछ त्योहार प्रमुख हैं, जैसे दीपावली, होली, सावन की तीज तथा अन्य त्योहार। इसके अतिरिक्त कुछ राजनीतिक और सामाजिक ऐसे अवसर आते हैं, जिन्हें समाज द्वारा सामूहिक रूप से मनाया जाता है। ऐसे अवसर पर सामूहिक गान और सामूहिक नृत्य किये जाते हैं। कभी-कभी समाज की कोई घटना लोकप्रिय हो जाती है, उसी को आधार बनाकर लोग रचनाएँ करते रहते हैं। इन सबको दृष्टि में रखकर हम सम्पूर्ण सामाजिक गेय काव्य को चार भागों में विभाजित करते हैं।

१—उत्सव गीत

२—त्योहार-गीत

३—रास और नृत्य-गीत

४—ढोला और वारामासा-गीत

उत्सव गीतों के अनेक संग्रह मिलते हैं, जिनमें जवानसिंह जी की भाँति रागों का निर्देश नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि वे गाये जाते थे। इसलिए उनका संग्रह कर लिया गया है और जो ऐसे गीत राग वद्ध हैं, उन्हें भी इसी कोटि में रखा गया है। उन पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है।

त्योहारों में सर्वाधिक होली और उसके पश्चात् सावन की तीज पर गीत मिलते हैं। ये दो त्योहार शृंगार युगीन विलासी प्रवृत्ति की पुष्टि करते थे। विशेषतया होली पर असंख्य पद रचे गये, जिनमें कृष्ण-राधा या गोपियों को नाम मात्र के लिए आलम्बन बनाकर होली के समय मनोरंजन किया जाता था। अनेक पद ऐसे होते हैं, जिनमें सावन की तीज पर भूला भूलने का वर्णन है, जिन्हें ‘हिंडोला’ के नाम से पुकारा गया है। वह भी कृष्ण लीला के अन्तर्गत ही है।

तीज का एक उदाहरण देखिये।

हो जी हो रंगीली छवीली घणरा मारू जी

हो भूलन आई छै तीज मुहाई।

वणि वणि साजि सिंगार नवेली अधिक अधिक अधिक।

१. इन ‘मजलसों’ को लेखिका ने स्वयम् देखा है।

रंग रंग भूपन वसन साजि तन प्रीतम प्रीत लुभाई ।
भूलन भूमक भूकोर नमें अति नगधर पिय मन भाई ।^१

रास और नाच के गीत भी बहुत बड़ी मात्रा में लिखे गए। इसमें शृंगारिक भाव-नाश्यों को प्रसार मिल सकता था और कृष्ण और राधा के साथ गोपियों का सरस वर्णन हो सकता था। मृदंग के बोल भी इन पदों में मिलते हैं। ऐसे गीत भक्त कवियों में भी प्रचलित रहे हैं।

ढोला और बारामासा अपनी अलग विशेषता रखते हैं। राजस्थान की प्रचलित ढोला-मारू की प्रेम कहानी ने संगीत में बहुत महत्व पाया है। पूरे प्रबन्ध काव्य के समान ढोला की कहानी लिखी और गाई जाती थी। पृथ्वीराज राठौड़ की लिखी हुई ढोला-मारू की कथा से सभी परिचित हैं। उसके अतिरिक्त इतना अधिक इसका प्रचार हुआ कि ढोला गाने वालों की एक विशेष जाति बन गई। उदयपुर में 'ढोली' एक जाति है, जिसका कार्य 'ढोला' गाना है। वाचक कुशललाभ की 'ढोला मारवणी री चौपाई'^२ प्रकाशित हो चुकी है। और भी ऐसी अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं। ढोला गाने का एक विशेष ढंग है, जो नवल-सिंह के ढोला से पता चलता है।

'रोला छंद'

ढोला गावे जोग छंद रोला तजवीजो ।
ढोला ही सी भपट लटक गावत मे कीजो ।
चौथी तुक को अंत अर्थ दुहरा के गावो ।
तापे अच्छर चार अर्थ के मिलवत आवो ।
रे पै स्वर विश्राम ठहर कर रापत जाई ।
ढोला कैसी पान प्रकट जह रीति जगाई ।
पंभाइत पंजरी ताल तबला वजगावो ।
निज रुचि को चातुर्ज करव औरहु जो जानो ।^३

बारामासा

'वारह मासा' की परम्परा संस्कृत काव्य से चली आती है। संयोगिनी अथवा वियोगिनी नायिका का छहों ऋतुओं में तथा वारहों महीनों में किस प्रकार प्रेम बढ़ता है और प्रिय के संयोग और वियोग से किस प्रकार सुख और दुख होता है, इसका वर्णन आदि कालीन काव्य में भी होता था। भक्ति काव्य में भी इसका प्रचार था। विशेषरूप से प्रेम मार्गी शाखा के सूफ़ी भक्तों की रचनाओं में इसको प्रमुख स्थान मिला। शृंगार युगीन काव्य में यह और भी अधिक प्रिय विषय रहा। वर्षा ऋतु के सरस वातावरण में प्रिय के लौटने का

१. गीत संग्रह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. ढोला, नवलसिंह, लाला लक्ष्मी प्रसाद, फौरेस्ट आफिसर, दतिया।

समय होता है, अतः नायिका सदैव ही प्रिय की प्रतीक्षा सावन में करती है और पहले एकादश मासों के लिए कहती है कि 'प्रिय ! किसी भी मास में चाहे तुम नहीं आए, परन्तु पावस ऋतु आ गई अब तो आ जाओ।' यही कारण है कि सावन में और भूले के गीतों में बारह मासा अभी भी प्रचलित है। जैन साहित्य में 'वारामासे' का बहुत प्रचार रहा। जैन कवियों ने राग वद्ध 'वारहमासे' लिखे। प्रेमानन्द का 'राधा विलाप वारामासा',^१ उदयरत्न का 'नेम राजुल वारामासा',^२ किशनदास का 'कृष्ण वारामासा',^३ संगम कवि का 'राधिका विरह वारामास'^४ आदि जैन कवियों के ग्रन्थ हैं।

बारह मासा का अधिक प्रचार होने के कारण इनमें विषय की विविधता भी मिलने लगी। कुछ काव्य वियोग-शृंगार को प्राधान्य देकर लिखे गए, कुछ में व्रत और उत्सव का वर्णन हुआ। कुछ भरत और राम आदि की जीवनी को लेकर लिखे गए।

धार्मिक

राग वद्ध धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त ऐसी रचनाएँ प्राप्त हैं, जो गेय काव्य थीं और केवल धार्मिक होने के नाते विशेष पूजा के लिए लिखी गईं। जैसे घरों में प्रचलित भजन और कीर्तन के संग्रह, जो प्रसिद्ध कवियों के द्वारा नहीं रचे गए थे, वरन् उस समय गायन में प्रचलित थे। ऐसे संग्रह श्री द्वारकेश पुस्तकालय कंकरोली में बड़ी मात्रा में संग्रहीत हैं। ईश्वर की पूजा में लिखी गई स्तुति के लिए अनेक कविताओं और आरती-गीतों की रचनाएँ हुईं। स्तुति केवल ईश्वर सम्बन्धी ही नहीं, राजाओं के लिए भी लिखी गई। आरती लगभग सभी देवताओं पर लिखी गई जैसे 'अंबा री आरती', 'काली जी की आरती', आदि।

इसके अतिरिक्त कुछ देवी देवताओं के गीत अपना अलग स्थान और महत्त्व बनाए हुए हैं। इनके गाने वालों की एक विशेष जाति हो जाती है। इनकी गायन-शैली भी एक विशेष प्रकार की होती है। जनता में ऐसा विश्वास है कि जिस व्यक्ति पर देवी इष्ट रहती है, उस देवी के गीत केवल वही व्यक्ति या उसके उत्तराधिकारी गा सकते हैं। इस प्रकार के गीत, भैरू जी के गीत, पावा जी के गीत तथा देवी के गीत आदि प्रचलित थे और हैं। इन पर पर्याप्त सामग्री भी मिलती है। इन गीतों का प्रचार अधिकतर राजस्थान में है। उदाहरण के लिए, राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर' लिखने के पश्चात् लिपिकार रेपराज ने सं० १८७१ में एक देवी का गीत लिखकर, ग्रन्थ समाप्ति की है।

“धार में आबो काली धार में आबो काली।

ध्योली ध्यार में दरसन पाया भोली माइ पहार में। आबो।

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. वही।

३. वही।

४. वही।

नगर दारा जां नी ज्मं ज्मं बसयो
 जीन ते—र...वन चनायां
 हो चीना वा भोली माइ पहार में । आबो ।
 नागा नागा पावां अकबर सा आये
 सोने दा छत्र चढ़ाया—भोली माइ पहार में—आबो ।
 धानु मग ते मयां तेरा जस गावे
 मन अंछा फल पाया । भोली माइ पहार में । आबो ।^१

जैन ग्रन्थ

जैन ग्रन्थों में शास्त्रीय संगीत का प्रचार रहा है, अतः जैन कवियों के द्वारा लिखे गए अनेक धार्मिक ग्रन्थ नामों से तथा अधिकांश वर्णन में भी रागों से सम्बन्धित हैं । जैन ग्रन्थों में से कुछ के काव्य रूप इस प्रकार के हैं, जिनसे संगीत काव्य का भ्रम उत्पन्न हो जाता है । ऐसे काव्यों में तीन प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं ।

- १—रास ग्रंथ
- २—वारहमासा
- ३—राग माला

रास ग्रंथ

रास ग्रंथ नाम से रास नृत्य के लिए लिखे गए काव्य का भान होता है, परन्तु जैन रास ग्रंथों की एक लम्बी सूची है । एक बहुत बड़ी संख्या में ऐसे ग्रंथ लिखे गये हैं; जैसे उदय यश का 'यशोधर रास', कान्ति विजय कृत 'मलय सुंदरी रास', दीप्ति विजय कृत 'मंगल कलश रास', सोम विमल कृत 'श्रेणिक रास' तथा भाव रत्न कृत 'धम्माशील भद्र रास' आदि ।^१ इन सब रास ग्रन्थों में वर्ण्य विषय संगीत-नृत्य नहीं है, अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में इसका वर्णन नहीं किया गया है ।

वारहमासा

वारहमासा लोक गीतों में प्रचलित एक प्रकार का गीत है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है । इस नाम से लिखे गये ग्रन्थ भी जैन-धार्मिक ग्रन्थ हैं । संगीत काव्य से उनका सीधा सम्बन्ध नहीं है । नेम जी का 'वारामासा', रूप चंद का 'नेम नाथ वारामास', कवियण का 'नेम नाथ वारामास', संगम कवि का 'वारामास', तथा उदयरत्न का 'नेम

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

ऐसे अन्य ग्रन्थों की सूची सहायक पुस्तकों की सूची में दी गई है ।

राजुक वारामास', आदि । इन ग्रन्थों में भी मुख्य विषय अपने धार्मिक नेता का उपदेश प्रसारित करना है ।^१

रागमालाएँ

रागमाला के नाम से लिखे गए ग्रन्थ कुछ सीमा तक इस प्रबन्ध से संबंधित हैं । रागों में बाँधकर जैन कथाओं की रचना की गई है । इन कथाओं का नामकरण इन कवियों ने अपने वर्ण्य विषय के आगे रागमाला नाम लगाकर कर दिया है, जिससे सन्देह होता है कि अन्य रागमालाओं के समान इनमें भी रागों का स्वरूप-शृंगार वर्णन है, परन्तु वह भ्रामक है । नाम इस रूप में प्राप्त हैं कि 'राग माला मय स्तवन',^२ 'नेमीश्वर रागमाला मय स्तवन'^३ आदि ।

कवि के संगीत-ज्ञान का उससे परिचय मिलता है । प्रारम्भ में कवि कहता है :—

“विविध राग कुसुमेकरी गुंथित जिन गुणमाल

जय लक्ष्मी संगम मणी मानुं ए वर माल ।”^४

इसके पश्चात् कवि ने राग सोमरी, राग असाउरी, राग केदारो गोडी, राग श्री तथा देशाख आदि रागों में बद्ध करके कथा का प्रबन्धात्मक रूप संगठित किया है । छन्द में किसी न किसी रूप में राग का नाम आ अवश्य जाता है, परन्तु उससे राग का स्वरूप शृंगार तथा लक्षण का कोई परिचय नहीं मिलता ।

उदाहरणार्थ, राग केदारो गोडी

‘सयल देश मा सुन्दर कासी, नगरी वाणरसी गंग अभ्यासी ।

रिद्धिकृत अलकापुरी दासी, लोक वसें जिहां शास्त्र अभ्यासी ।

राज करे नरपति सुषवासी, अश्वसेन तिहां इन्द्र संकासी ।

जिणिम वयरी कीया वनवासी, जिन केदारा गोरी गुणरासी ।”^५

ऐसी रागमालाएँ संख्या में बहुत पाई जाती हैं । परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध में अधिक सहायक नहीं हैं । रागों का प्रयोग भी इच्छानुसार है । रागों के नियमों का पालन नहीं किया गया है । इतना निश्चित है कि क्रियात्मक रूप में जैन समाज में ये गाई जाती थीं और गाने में रागों का प्रयोग होता था ।

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

ऐसे अन्य ग्रन्थों की सूची सहायक पुस्तकों की सूची में दी गई है ।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. वही ।

४. पार्श्वनाथ रागमाला मय स्तवन, पु० सं० जोधपुर ।

५. पार्श्वनाथ रागमाला मय स्तवन, पु०, सं०, जोधपुर ।



पंचम



संगीत-काव्यकार – जीवनी तथा कृतियाँ

शृंगार युग के संगीत-काव्यकार मुख्यतः संगीतज्ञ तथा गीण रूप से कवि होने के नाते, अधिकतर हिन्दी साहित्य के इतिहासों में कवि-सूची मात्र में ही प्रवेश पा सके। उनके काव्य का, अध्ययन करने पर विदित होता है कि संगीत शास्त्र की दृष्टि से तो ये रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं ही हिन्दी काव्य को समृद्ध बनाने में भी अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इन संगीत-काव्यकारों के जीवन के विषय में अधिक सामग्री प्राप्त नहीं हो पाई है, फिर भी कुछ अंतर्साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य तथा जनश्रुतियों के आधार पर जो ज्ञान प्राप्ति होती है, उसका विवेचन यहाँ किया गया है।

प्रस्तुत निबंध में कवियों का क्रम समय के अनुसार नहीं रखा गया है, वरन् साहित्य-सृजन की दृष्टि से सर्व प्रथम सर्वांग निरूपक कवियों को, पश्चात् विशिष्टांग निरूपक, तत्पश्चात् व्यावहारिक संगीतकारों को लिया गया है।

प्रतापसिंह देव

‘राधा-गोविन्द-संगीत-सार’ के रचयिता जयपुर के महाराज प्रतापसिंह देव हैं। श्री अग्ररचन्द जी नाहटा ने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में दो लेख प्रकाशित किए हैं।¹ उनके मतानुसार प्रतापसिंह ने जयपुर में संवत् १८३५ से संवत् १८६० (सन् १७७९ से १८०४ ई०) तक राज्य किया। मिश्रबन्धु विनोद भाग दो (संख्या नं० १०१२) में प्रतापसिंह महाराज का नाम प्राप्त होता है, जो जयपुर के महाराज रहे हैं। इनका उपनाम ‘ब्रजनिधि’ है। परन्तु इनके लिखे ग्रन्थों में ‘राधा-गोविन्द संगीत सार’ का नाम नहीं है। मिश्र बन्धुओं ने भी इनका रचना काल सं० १८३५ दिया है। मिश्रबन्धु-विनोद में ही एक और ‘परतापसिंह’ (सं० ९९३) का उल्लेख है, जिनका समय तो सं० १८३२ ही है, परन्तु यह दरभंगा नरेश हैं और उपनाम ‘भोद नारायण’ है, अतएव यह कोई दूसरे परतापसिंह हैं।

टॉड के ‘ऐनल्स एण्ड एन्टीक्विटी ऑफ राजस्थान’² में एक राजा परतापसिंह का उल्लेख है जो, जयपुर के माधोसिंह के पुत्र, पृथ्वीसिंह द्वितीय के सौतेले भाई थे और

१. शोध पत्रिका वर्ष ३ अंक २ तथा ‘संगीत’ फरवरी १९५३।

२. Annals and Antiquities of Rajasthan. V. 2, Preface by Douglas Sladen Published by Routledge and Kegan Paul Ltd. Broadway House 63-74 Carter Lane, E.C. 4. London, p. 301.

पृथ्वीसिंह के पश्चात् सं० १८३५ में गद्दी पर बिठाए गए। इस समय इनकी अवस्था छोटी थी। इन्होंने पच्चीस वर्ष राज्य किया। सं० १८६० में इनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय यह अधिक से अधिक चालीस वर्ष के रहे होंगे।

रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पद्माकर भट्ट के पिता मोहनलाल भट्ट के आश्रयदाता जयपुर के महाराज प्रतापसिंह का उल्लेख है। यह वही प्रतापसिंह है, जिनके विषय में यहाँ कहा जा रहा है। पद्माकर भट्ट ने अस्सी वर्ष की आयु में सं० १८६० में शरीर छोड़ा। इसके पूर्व वह प्रतापसिंह के और उनके पुत्र जगतसिंह के दरबार में रहे। इस दृष्टि से भी प्रतापसिंह का रचनाकाल सं० १८३५ के लगभग हो सकता है।

सुश्री राजकुमारी शिवपुरी ने अपने शोध ग्रन्थ^१ में महाराज प्रतापसिंह का समय सं० १८२० से सं० १८५६ तक माना है। सं० १८२० इनका जन्म काल है। पृथ्वीसिंह जी सं० १८२३ में गद्दी पर बैठे। इन्होंने ग्यारह वर्ष तक राज्य किया तब प्रतापसिंह जी गद्दी पर आए। इसका अर्थ यह हुआ कि सं० १८३४ में गद्दी मिलने के समय यह चौदह वर्ष के थे और उनतालीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने शरीर त्यागा।

प्रतापसिंह जी के जीवन के विषय में जो कुछ जानकारी पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०, की 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' की भूमिका से प्राप्त होती है, वह भी बहुत-कुछ इससे मिलती-जुलती है और सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जा सकती है। इस ग्रन्थ के अनुसार महाराज प्रतापसिंह सूर्यवंश की प्रख्यात शाखा कछवाहा-वंश के थे। सोढदेव जी की सोलहवीं पीढ़ी में महाराज पृथ्वीराज हुए। पृथ्वीराज जी की वंश परंपरा में महाराज भारमल जी, मानसिंह जी, मिर्जा राजा जयसिंह जी, सवाई जयसिंह जी आदि राजा हुए। सवाई जयसिंह जी के उत्तराधिकारी क्रमशः ईश्वरीसिंह जी और माधवसिंह जी हुए। माधवसिंह जी के बाद उनके बड़े पुत्र पृथ्वीसिंह जी ने (जिनका जन्म वि० सं० १८१६ में हुआ था) सं० १८२४ में, पाँच वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठकर, सं० १८३३ तक राज्य किया। उनके छोटे भाई प्रतापसिंह जी वि० वैशाख वदी तीन बुधवार सं० १८३५ को गद्दी पर बैठे। इनकी माता का नाम महारानी चूड़ावत था। गद्दी पर बैठने के समय भी अनुमानतः यह पंद्रह वर्ष के थे।^२ इन्होंने अपने राज्य-काल में कई युद्ध करते पड़े। जीवन-पर्यन्त राज्य की रक्षा करने के उपरान्त अन्तिम दिनों में ईश्वर के चरणों में अधिक अनुराग हो गया था। महल के तहखाने में स्थित अपने इष्ट ठाकुर ब्रजनिधि जी के चरणों में विश्राम किया करते थे।^३ उसी भक्ति के कारण इन्होंने कविता में अपना नाम 'ब्रजनिधि' रखा। सं० १८६० में इनकी मृत्यु हो गई।

अन्तर्साक्ष्य के आधार पर भी प्रतापसिंह जी देव के कविता-काल पर विचार किया जा सकता है। इनके विविध ग्रन्थों में उल्लिखित समय के अनुसार रचनाकाल सं० १८४८

१. राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवाएँ—राजकुमारी शिवपुरी।

२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० ४०।

३. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० ४५।

से सं० १८५४ तक निश्चित किया जा सकता है। सं० १८४८ में 'प्रीति-लता',^१ 'फाग-रंग'^२ और प्रेम-प्रकाश',^३ सं० १८४९ में मुरली बिहार,^४ 'सुहाग-रेन',^५ सं० १८५० में स्नेह-बहार,^६ विरह-सलिता,^७ सं० १८५१ में 'रमक जमक बत्तीसी'^८ तथा प्रीत पचीसी,^९ ब्रज

१. अष्टादस चालीस अठ, संवत चैत जु मानि ।

कृष्ण पच्छ तिथि त्रयोदसी, भौमवार जुत जानि । ८२ ।

प्रीति-लता ।

२. संवत अष्टादस सतक, अड़तालीस बुधवार ।

फागन सित की सप्तमी, भयो ग्रंथ अवतार ।

पढ़ै कढ़ै पातक सकल, बढ़ै जु प्रेम-उमंग

ग्रंथ कियो जय नगर में, फाग रंग रस रंग । ५३ ।

फागरंग, ब्रजनिधि

३. अष्टादस चालीस अठ संवत फागुन जानि ।

कृष्णपच्छ नवमी जु गुर, ग्रंथ कियो मन मानि ।

कियो ग्रंथ जयनगर में नाम सु प्रेम प्रकाश ।

पढ़ै कढ़ै पातक सकल, बढ़ै प्रेम हिय तामु । ५६ ।

प्रेमप्रकाश, ब्रजनिधि ।

४. मुरलि-बिहारहि ग्रंथ रस भगरई को अंत वह ।

प्रेम-परनि को पंथ, रसकनि अतिहि सुहाव यह । ३२ ।

अष्टादस गुनचास यह, संवत फागुन मास ।

कृष्णपच्छ तिथि सप्तमी, दीतवार है तास । ३३ ।—मुरलीबिहार, ब्रजनिधि ।

५. नाम सुहागहि-रेनि, ग्रंथ यह कीनो अबै ।

— — — — —
अष्टादस गुनचास हैं, फागुन पते कियो सु ।

तिथि दसमी बुधवार दिन, मन आनंद लियो सु । २४ ।—सुहागरेन, ब्रजनिधि ।

६. संवत अष्टादस सतक, पंचासत सुभ वर्ष ।

माघ शुक्ल दुतिया सु तिथि, दीतवार मन हर्ष । ४४ ।—स्नेह बहार, ब्रजनिधि ।

७. संवत अष्टादस सतक, पंचायत सनिवार

माघ कृष्ण-पक्ष दीज को, भयो विरह को सार । ५२ ।—विरह-सलिता

—ब्रजनिधि ।

८. संवत अष्टादस सतक, इक्कावन सु असाढ़ ।

सुकल पच्छ बुध द्वादसी, भयो ग्रंथ अति गाढ़ । ३२ ।—रमक जमक बत्तीसी,

ब्रजनिधि ।

९. संवत अठारह इक्यावन बरख मास,

कातिग उव्यारी तिथि पंचमी सुहाई है ।

ब्रजनिधि-दास पता निहार्यो है नेह-लता,

विरह मता ले प्रीति पचीसी बनाई है ।—प्रीति-पचीसी ।

शृंगार,^१ सं० १८५२ में स्नेह-संग्राम,^२ वैराग्य मंजरी,^३ सं० १८५३ में रंग चौपड़^४ आदि ग्रंथ प्राप्त हैं। इसके पश्चात् 'ब्रजनिधि पद संग्रह' तथा 'हरिपद संग्रह' ग्रंथों की रचना की है। 'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' अपनी सम्पूर्णत के कारण इनका अन्तिम ग्रंथ जान पड़ता है। इसका समय सं० १८५८, ५९ के लगभग माना जा सकता है।

इस दृष्टि से भी प्रतापसिंह जी का जीवन-काल लगभग सं० १८२० से सं० १८६० तक मान लेना उचित है।

ब्रजनिधि जी का प्रारम्भ से ही साहित्य के प्रति अनुराग था। इनके पिता माधव-सिंह जी ने अपने पुत्रों की हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा के लिए यथेष्ट प्रयत्न कर दिया था। कवियों, रसिकों और ईश्वर भक्तों के मध्य रहने के कारण विद्वता के साथ इनकी काव्यात्मक प्रतिभा भी जाग उठी, जिसका प्रमाण इनके द्वारा रचित ग्रंथ ही हैं। यह स्वयं कवि भी थे। तभी इन्होंने अपने राज्य में विविध विषयों के ज्ञाताओं को एकत्र कर उन विषयों पर सुंदर ग्रंथों का निर्माण कराया। उदाहरण के लिए, इन्होंने ज्योतिष में 'प्रताप-मार्तण्ड' (जातक-ताजक सार), वैद्यक में 'प्रताप-सागर' (अनुवादअमृत-सागर), धर्म शास्त्र में, 'धर्म-जहज', फारसी 'आइने अकबरी' का और 'दीवाने-हाफिज' का हिन्दी में अनुवाद करवाया। इसी प्रवृत्ति के कारण, संगीत-रचि होने के परिणाम-स्वरूप चार विद्वानों द्वारा संगीत का बृहद-ग्रंथ 'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' बनवाया।^५ राधा-कृष्ण की भक्ति के परिणाम-स्वरूप, इन्होंने छोटे-छोटे कई ग्रंथ लिखे। प्रीति-लता, स्नेह संग्राम, फाग रंग, प्रेम प्रकाश, विरह-सलिता, स्नेह वहार, मुरली-विहार, रमक-जमक बत्तीसी, रास का रेखता आदि ग्रंथ, जो ब्रजनिधि ग्रन्थावली में संकलित हैं, सब गेय काव्य हैं।

महाराजा प्रतापसिंह का संगीत-प्रेम उनके सब काव्य ग्रंथों की संगीतात्मकता

१. संवत अष्टादस सतक, इक्यावन वर साल।
माध कृष्ण शष्ठी सुरवि, पूरन ग्रंथ बहाल।—ब्रज-शृंगार।
२. संवत अष्टादस सतक वावन्ता सुभ वर्ष।
सुखद जेठ सुदि सप्तमी सनिवासर जुत हर्ष।
—स्नेह संग्राम।
३. संवत अष्टादस सतक ववन्ता सुभ वर्ष
भादों कृष्ण पंचमी, रच्यो ग्रंथ करि हर्ष। १०३।
—वैराग्य-मंजरी।
४. संवत अष्टादस सतक त्रेपन बासुनि मास।
तिथि द्वितिया रविवार जुत, जुगल चरन मन आस।
—रंग-चौपड़।
५. 'जयपुर के राजा प्रतापसिंह ने हिन्दुस्तानी संगीत पर प्रामाणिक ग्रन्थ प्रस्तुत करने की दृष्टि से अपने राज्य में एक बृहत् संगीत-समारोह किया, जिसके परिणाम स्वरूप देश के प्रसिद्ध आचार्यों के मतों का संग्रह करते हुए 'संगीत-सार' ग्रन्थ का सम्पादन हुआ।'
—रीति-काव्य की भूमिका, डा नगेंद्र, पृ० २७।

कता और राग-रागिनी वद्ध पदावली से सिद्ध हो जाता है। इनके गुरु 'बुध प्रकाश जी' थे। गुरु का वास्तविक नाम चाँद खाँ तथा उपनाम दूलह खाँ था। महाराज ने स्वयं इनको 'बुध-प्रकाश' की पदवी दी थी। इन्होंने 'स्वर-सागर' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।^१ उसका एक उदाहरण—

'राग कल्याण (ताल सुरफाकता)
 धम्म गम गेरे गमरे ग रे स। धा नी रे स।
 प प ध सा रे। सारेगम रेगरेस। धा नी रे सा।
 धा नी रे सा। धम्म.....। स्थायी।
 प प ध सरे, सारेगम, रे ग रे स। धा नी धम गरेगम
 रे ग नी रे सा।
 सुच्छम सुरन सोध मध सरगम वनाय,
 पाय गुरन तें भेद, कर कर 'बुध प्रकाश'।
 रिभवन कारन अति प्रवीन परताप सारक
 सकल वरण पट्-दरसन निवास।'^२

इनके समय के भक्त तथा कवियों में 'अमृतराम जी पालीवाल', बख्तेश कवि (ठाकुर बख्तावरसिंह), महाकवि राव शंभूराम जी, महाकवि गणपति जी, भारती, गुसाई रसपुंज जी, रसरास जी, चतुर शिरोमणि जी तथा अन्य कवियों का उल्लेख है। बहुतों के पद इन्होंने अपने 'हजारा' में लिए हैं।

इनकी भगवद्भक्ति को प्रेरित करने वालों में प्रधान रूप से श्री 'जगन्नाथ भट्ट' का नाम लिया जा सकता है।

'मैं कहों कहा अब कृपा तुम्हारी।

यहि कृपा करि गुर में पाए जगन्नाथ उपकारी।'^३

प्रतापसिंह जी 'वंसी अली' और 'किशोरी अली' से भी भक्ति में प्रभावित हुए थे। इनके समय में चारण भी कुछ प्रसिद्धि को प्राप्त हुए थे। हुकमीचन्द डिंगल के गीतों के लिए प्रसिद्ध थे।

श्री राधा-गोविन्द जी के प्रति इनकी अगाध भक्ति थी। उनको दंडवत करके नित्य नए पद गाते थे। पु० हरिनारायण शर्मा ने इनके प्रेम के अनेक उदाहरण दिए हैं।^४

प्रतापसिंह देव 'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' ग्रन्थ के रचयिता प्रसिद्ध हैं, परन्तु वास्तव में इस ग्रन्थ के रचयिता न होकर संकलनकर्त्ता हैं। इन्होंने अपने ही आश्रित अथवा भिन्न स्थानों से संगीतज्ञों को एकत्रित करके इस ग्रन्थ की रचना करवाई थी। संगीत-प्रेमी होने के नाते उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना में पूर्ण प्रेरणा देकर संगीत क्षेत्र को सम्पन्न कर

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना शर्मा, पृ० ४८।

२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० ५०।

३. हरि-पद संग्रह, ब्रजनिधि।

४. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० ५५-५८।

दिया है। इन्हीं के नाम से इस ग्रंथ का निर्माण हुआ, इसीलिए इसके वास्तविक लेखक प्रसिद्धि न पा सके और उनके विषय में अधिक ज्ञात नहीं हो सका।

‘राधा-नोबिन्द-संगीत-सार’ की एक प्रति लाला बन्नीदास वैश्य, वृन्दावन से प्राप्त हुई,^१ जिसके द्वारा यह पता चलता है कि यह ग्रंथ तैलंग भट्ट, श्रीकृष्ण, राम राय और चुन्नीलाल नामक चार ब्राह्मणों ने मिलकर बनाया है।

तैलंग भट्ट और श्री कृष्ण मथुरा निवासी ब्राह्मण थे। चुन्नीलाल कवि-कुल सम्प्रदाय के थे। राम राय जाति के गौड़ मिश्र थे तथा इन्दौर के रहने वाले थे। इन चारों ने मिल कर ब्रज भाषा में इस ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ महाराज की आज्ञा में रचा गया था।

‘हुकुम सीस धरि जोर कर बोले नंदकिसोर
पंडित कवि दरबार में अग्रगत हैं या ठोर ॥१०६॥
मथुरा सवित तैलंग भट्ट सिरि किसन सुप दाय ।
लियो भट्ट चुन्नी लाल हैं कव कुल संपरदाय ॥१०७॥
गोड मित्र इद्रिया राम राय कवि जान ।
इन जुत कीजै ग्रंथ की ब्रज भाषा परवान ॥१०८॥
आग्या कीय नर नाह तब ले बनाय यह ग्रंथ ।
मत प्राचीन पुनीत लव गीत उदध को पंथ ॥१०९॥

*

*

*

आग्या सुन कवि सब धरो फूल माल ज्यों सीस ।

लगे करन संगीत द्विज चारों जपि निज ईस ॥१११॥

उपर्युक्त ग्रंथ में प्रयुक्त शब्द ‘सवित’, ‘वसित’ के स्थान पर अशुद्ध लिखा गया प्रतीत होता है, क्योंकि तैलंग और श्री कृष्ण को मथुरा के निवासी बताने का अभिप्राय कवि का रहा होगा अथवा ‘सवित’ का अर्थ ‘सवित’ अर्थात् ‘घनी’ से भी लिया जा सकता है, जिसके अनुसार इस वाक्यांश का अर्थ ‘मथुरा के घनी’ ‘तैलंग भट्ट’ तथा ‘श्री कृष्ण’ हो जाता है। भट्ट शब्द संगीतज्ञ का पर्याय हो ही चुका है। गाने वालों को भट्ट जाति का बताया जाता है, अतः ये चार प्रमुख ब्राह्मण संगीतज्ञ थे, जिन्होंने प्राचीन ग्रंथों के आधार पर इस ग्रंथ का निर्माण किया।

‘मिश्रबन्धु-विनोद’ के अनुसार अज्ञात कालिक कवियों में एक ‘तैलंग भट्ट’^२ का उल्लेख मिलता है, जो जैसलमेर नरेश (महारावल रणजीतसिंह) के दरबार में थे। परन्तु मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि संवत् १८२० तक वहां कोई महाराजा रणजीतसिंह नहीं हुए। यह सम्भव है कि तैलंग भट्ट, संगीतज्ञ होने के नाते घूमते हुए जैसलमेर पहुंच गए हों और किसी और रणजीतसिंह के दरबार में रहे हों। वहाँ इस ग्रंथ की रचना की हो। संगीत-

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

२. मिश्रबन्धु-विनोद—तृतीय भाग (सं० १४८१) पृ० ६७६।

सार की रचना के लिए तो बाहर से बुलाए हुए संगीतज्ञ भी आए थे। एक अन्य तैलंग भट्ट का प्रसंग इसी पुस्तक में आया है,^१ जिसका नाम दामोदर जी है। यह अलवर दरवार के आश्रित हैं। इन्हें साधारण श्रेणी का कवि माना गया है। इतका जन्म काल सं० १८८७ तथा कविता काल संवत् १९१३ माना है। समय अशुद्ध भी हो सकता है। इन्होंने स्फुट काव्य की रचना की है।

‘तैलंग भट्ट’ नाम बड़ा संदिग्ध है। तैलंग भट्ट जातिवाचक संज्ञा है, व्यक्ति-वाचक नहीं। ‘तैलंग भट्ट’ नाम से प्रसिद्ध कवि पद्माकर का भी भ्रम उत्पन्न होता है। पद्माकर भी तैलंग भट्ट थे और इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे कि ‘तैलंग भट्ट’ मात्र कह कर उनको पुकारा जाता हो, यह भी संभव है। पद्माकर कुछ दिन प्रतापसिंह जी के राज्य में रहे थे, यह इनकी रचना ‘प्रतापसिंह-विरुदावली’ से ही प्रमाणित है।^२ प्रतापसिंह की मृत्यु के कुछ पहले ही यह उनके राज्य में गए थे और मृत्यु पर्यंत वहीं रहे थे। प्रतापसिंह की मृत्यु पर भी इन्होंने कविता की है।^३ प्रतापसिंह इनकी प्रतिभा से प्रभावित थे और इन्हें उन पर गर्व था। प्रतापसिंह के राज्य में एक बार बहुत घूमघाम के साथ जाते देखकर बूंदी वालों को भ्रम हुआ कि कोई चढ़ाई करने जा रहा है, तब इन्होंने भ्रम निवारण करने के लिए यह कविता पढ़ा—

‘नाम पद्माकर डराउ मति कोउ भैया,

हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।’^४

इस किंवदन्ती में और कोई सार न हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि इन्हें प्रतापसिंह के द्वारा बहुत धन तथा आदर मिला था।

ये ‘तैलंग भट्ट’ के नाम से प्रसिद्ध भी रहे होंगे, इसका एक प्रमाण इनके एक कवित्त में मिलता है। राजभोग में लिप्त राजा जगतसिंह से मिलने के लिए जब यह गए तो अपने परिचय में पढ़े गए कवित्त में पहली पंक्ति कही—

‘भट्ट तिलंगाने को, बुंदेलखंड वासी कवि सुजस प्रकासी पद्माकर सुनामा हों।’^५

इसमें भी ‘भट्ट तिलंगाने’ को महत्त्व दिया गया है, अतः यह सम्भव है कि प्रतापसिंह के राज्य में पद्माकर इस नाम से प्रसिद्ध हो गए हों, उसी समय प्रतापसिंह ने ‘संगीत-सार’ की रचना करवाई हो और इनकी काव्यात्मक प्रतिभा और संगीतात्मक रचनाओं से प्रभावित होकर इन्हें भी इन चार ब्राह्मणों में सम्मिलित कर लिया हो।

अतएव संगीत-सार के रचयिता तैलंग ब्राह्मण प्रसिद्ध कवि ‘पद्माकर’ ही जान पड़ते हैं।

मिश्रबंधु-विनोद द्वितीय भाग में (कवि सं० ७४९), श्री कृष्ण भट्ट के नाम से

१. मिश्रबंधु-विनोद—तृतीय भाग (सं० १४८१), पृ० ६७६।

२. ‘जगद्विनोद’—संपादक, वि० प्र० मिश्र, पृ० १२।

३. पद्माकर—पंचामृत, फुटकल, प्रतापसिंह वर्णन, पृ० २७०।

४. जगद्विनोद—संपादक, वि० प्र० मिश्र, पृ० ८।

५. जगद्विनोद—संपादक वि० प्र० मिश्र, पृ० ६।

एक कवि का उल्लेख है। इनकी रचनाएँ हैं—(१) दुर्गा भक्ति तरंगिणी, (२) सांभर जुद्ध। इनका रचना काल सं० १७६१ है। जयपुर दरबार में इनका होना बताया है, अतः प्रतापसिंह के राज्य में इनका होना तो सम्भव है, परन्तु इनके नाम से 'संगीत-सार' नामक रचना नहीं है। उसका कारण प्रत्यक्ष रूप से यही है कि ग्रन्थ कर्त्ता आश्रयदाता प्रतापसिंह ही थे। उपर्युक्त काव्यांश में आया हुआ शब्द 'भट्ट', 'तैलंग' और 'सिरी किसन' दोनों के साथ प्रयुक्त हो सकता है।

ग्रियर्सन के हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (सं० नं० ४५२) में एक 'कलानिधि कवि' द्वितीय के नाम से उल्लेख आता है। जिनका नाम श्री कृष्ण भट्ट बताया है। 'कवि-कलानिधि' उपाधि है और 'लाल' उपनाम है। इनका जन्म काल ग्रियर्सन के अनुसार १७५० ई० अर्थात् सं० १८०६ है, परन्तु श्री किशोरी लाल गुप्त ने सर्वेक्षण के द्वारा सं० १८०७ इनका उपस्थिति काल माना है। यह सम्भव है कि इनका उपर्युक्त 'श्री कृष्ण भट्ट' से ही तात्पर्य हो।

'राम राय' नाम से केवल एक कवि का उल्लेख मिश्रबन्धु-विनोद के द्वितीय भाग में हुआ है, (नं० १६८१) जिनको अज्ञात कालीन कवियों में रखा गया है। इनकी एक रचना 'लैला-मजनू' है।

चुन्नी लाल के विषय में भी अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है। आर्य भाषा पुस्तकालय के शोध विभाग की सूची में इनका नाम 'चुन्नीलाल-ब्राह्मण' दिया है। जयपुराधीश महाराज सवाई प्रतापसिंह के आश्रित थे। इन्होंने मथुरा भट्ट, ब्राह्मण श्री कृष्ण और राम राय के साथ मिलकर 'राधा-गोविन्द-संगीत-सार' की रचना की।

अब हम प्रतापसिंह जी की रचनाओं पर विचार करेंगे। मिश्रबन्धु के अनुसार प्रतापसिंह द्वारा रचित ग्रन्थ १—शृंगार मंजरी, २—नीति मंजरी, ३—वैराग्य-मंजरी, ४—स्नेह संग्राम, ५—संच सागर, ६—रेखता, ७—भर्तृहरि शतक टीका हैं, परन्तु श्री राजकुमारी शिवपुरी के शोध ग्रन्थ 'राजस्थान के राज घरानों द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवाएँ, के अनुसार इन्होंने १—प्रीतिलता २—फाग रंग, ३—प्रेम प्रकाश, ४—मुरली-विहार, ५—रमख भूमक वत्तीसी, ६—सुहाग रैन, ७—रंग चौपड़, ८—प्रीति पच्चीसी, ९—प्रेम पंथ, १० ब्रज शृंगार, ११—श्री ब्रजनिधि मुक्तावली, १२—ब्रजनिधि पद संग्रह, १३—हरिपद संग्रह, १४—रास का रेखता, १५—विरह सलिला, १६—स्नेह बहार, १७—दुख हरण वेलि भी लिखे हैं। इस प्रकार प्रतापसिंह जी द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या चौबीस हो जाती है।

पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' में तेईस ग्रन्थों का सम्पादन किया है। इनमें से पाँच का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने और सत्रह का उल्लेख श्री राजकुमारी शिवपुरी ने किया है। मिश्रबन्धु के अनुसार दिए गए 'संच सागर' और 'भर्तृहरि शतक टीका' ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनका उल्लेख पुरोहित जी ने नहीं किया है। उनकी पुस्तकों में दो अन्य ग्रंथ हैं—'सोरठ ख्याल' और 'रेपता संग्रह'—जिनका उल्लेख उपर्युक्त दो पुस्तकों में नहीं मिलता है। 'राधा-माधव-संगीत-सार' का उल्लेख मिश्रबन्धु व शिवपुरी जी दोनों ने ही नहीं किया है। शर्मा जी ने भी 'ब्रजनिधि-ग्रन्थावली' में 'संगीत-सार' का प्रकाशन बृहद्

आकार होने के नाते नहीं किया है, परन्तु उसके विषय में भूमिका में लिखा है।

राधा गोविन्द संगीत-सार

‘राधा-गोविन्द संगीत सार’ एक सर्वांग पूर्ण ग्रन्थ है। इसकी एक प्रकाशित प्रति श्री अग्ररचन्द जी नाहटा के ‘अभय जैन ग्रन्थालय’ में है। इसका प्रकाशन पूना गायन समाज (वलवंत जियनक सहस्रबुद्धी, सेक्रेटरी गायन समाज) द्वारा सन् १९१० में हो चुका है। महाराज प्रतापसिंह के रचना काल की ऊपर विवेचना की जा चुकी है, अतः उसी के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना सं० १८५८ के लगभग होनी चाहिए। इस ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों की प्रतियाँ अन्य संग्रहालयों में भी प्राप्त हैं। वीकानेर के सेठ श्री मोतीचन्द जी खजांची के व्यक्तिगत संग्रह में इसके तीन अध्याय—तालाध्याय, वाद्याध्याय, नृत्याध्याय प्राप्त हैं। यह प्रति जयपुर में रतिराम ब्राह्मण के पठनार्थ लिखी गई थी। लेखन काल इसमें नहीं दिया है। अलवर के म्यूजियम में दो अध्याय स्वराध्याय और तालाध्याय हैं।

सात अध्यायों में विभक्त यह बृहद् ग्रन्थ संगीत के सूक्ष्मतम विषय का अत्यन्त विस्तार से ज्ञान कराता है। शाङ्गदेव के अनुसार संगीत को सात भागों में विभक्त किया है—स्वराध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रवधाध्याय, तालाध्याय और रागाध्याय नामक सात अध्याय हैं।

स्वराध्याय में स्वरों की उत्पत्ति, ग्रह, अंश, न्यास, जाति आदि पर विचार करके स्वर-समुदाय बताए हैं।

वाद्याध्याय में चार प्रकार के वाद्यों का नाम, उनके बजाने की विधि, गमक, मूर्च्छना आदि तथा सब रागों को निकालने की विधि दी है।

नर्तनाध्याय में अभिनय, सब अंगों के अलग-अलग भाव, भेद, लक्षण, बैठने के एक सौ आठ नवस्थानक भेद, तथा अंगहार आदि पर पूर्ण प्रकाश डाला है।

प्रकीर्णाध्याय में शास्त्र वर्णन, संगीत के मार्गी और देसी प्रकार, दोष और गुण, गायकों के दोष, गुण आदि सब बातों का विवेचन किया गया है :

प्रवधाध्याय में गांधर्व गान, मार्गी गान का लक्षण, खंड, धातु, शृंगारादि नव रस का विचार, गणों के देवता, उनका आकार, अक्षर के वर्ग, एला के भेद, लक्षण, गीत, प्रबंध के लक्षण आदि पर विचार किया है।

तालाध्याय में तालों की उत्पत्ति, नाम, बोल, भेद, लक्षण भिन्न मतों के अनुसार बताए गए हैं।

रागाध्याय में रागोत्पत्ति, परिवार, गीत, लक्षण, भेद और स्वरूप वर्णन है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में संगीत के विविध अंगों पर विस्तृत और सम्पूर्ण विवेचन प्राप्त है।

इसके विस्तार का अनुमान निम्नलिखित एक उदाहरण से लगाया जा सकता है।

तालाध्याय में ताल के दस प्राण बताए गए हैं। प्राण काल, प्राणमार्ग, प्राण क्रिया, प्राण अंग, प्राण ग्रह, प्राण जाति, प्राण कला, प्राण लय, प्राण पति, प्राण प्रस्तार। प्राणों के लक्षणों में इनमें से एक प्राण काल का विवरण दिया है :

‘जासा काल में कमल को एक पत्र बड़ी सिताबी सो कांटा करि कै वेधिये सो काल क्षण कहिए वे आठ क्षण होय तो एक लव होय—आठ लव की एक काण्ठा—आठ काण्ठा की एक निमेष—आठ निमेष की एक कला, दोय कला को एक चतुर्भाग, वाही को त्रुटि कहे है, दोय चतुर्भाग को एक अर्द्धबिन्दु होय वाको अशु कहे है, और वाही को अणुद्रुत कहे हैं, दोय बिन्दु को एक लघु, दोय लघु को एक गुरु, तीन लघु को एक प्लुत और हसतन को एक पल होय है—साठ पल की एक घड़ी, साठ घड़ी को एक दिन, तीस दिन को एक महीना, बारह महीना को एक वरस, पुराण की रीत सों—तीयालीस लाप बीस हजार ४३२०००० वरस की एक जुग चौकड़ी होय है, हजार जुग चौकड़ी की ब्रह्म को एक दिन होय है, तासों कल्प कहे हैं अर तीस ब्रह्म दिन को एक ब्रह्म मास होत है और बारह ब्रह्म मास को एक ब्रह्म वर्ष होय सौ-सौ ब्रह्म वर्ष ब्रह्मा जी की आवरदा है वाको ब्रह्म कल्प कहे हैं ।

इति काल लक्षण संपूर्ण इति प्रथम प्राण संपूर्णः’

इसी प्रकार मार्ग प्राण में चार मार्ग, ध्रुव, चित्र, वार्त्तिक और दक्षिण बताकर उनका विस्तृत उल्लेख किया है ।

ग्रन्थ की संपूर्णता के लिए एक और उदाहरण देना अनुचित न होगा । नृत्याध्याय में नृत्य के पाँच अंग, नृत्यकारों के छः प्रकार, नृत्य करने का ढंग आदि बताकर नर्तकी के द्वारा बोल बोलने का ढंग भी बताया है —

‘मृदंग के बोल किस प्रकार नर्तकी बोले—

जहां दाहिने हाथ में अलपल्लव^१ हस्ति रचि कुहणी बराबर राखिए दूसरे हाथ में हंस पक्ष^२ रचि नीचे को लटकावै अर दाहिणे चरण सों पृथ्वी को ताडन करै पीछे दाहिणे पांव को अंगुठा ढीलो करि धरती पै रगड़ उठावै असें क्रिया करत मुख सों किरंट शब्द कहै । हाथ चरन ए दोऊ आपस में ताडन करि हाथ को पाव को स्वस्तिक रचि^३ नृत्य करत नग दां किणवर नग दां यह उच्चार करै । जहां दाहिणीं पांसू नवाय दोऊ हाथ को षटका मुख रचि एक हाथ ऊपर को एक हाथ नीचे कीजिए तब तगड कहै जहां एक हाथ ऊंचो करि दूसरो हाथ नीचो करै दोऊ में पताक रचिये तब ता धिमि तत धिमि किट नम कहै आदि ।’

नृत्य में गीतों के अनुसार किस प्रकार भाव प्रदर्शन किया जाना चाहिए तथा किस भाव के प्रदर्शन के लिए किस प्रकार का गीत गाना चाहिए, इसका भी उल्लेख है ।

इस ग्रन्थ का महत्त्व इसलिए और भी अधिक बढ़ गया है कि इसमें केवल शास्त्रीय दृष्टि से ही शिक्षा नहीं दी गई है, बरन् क्रियात्मक रूप से भी शिक्षा का ज्ञान कराया गया है । उपर्युक्त नृत्य सम्बन्धी उदाहरण से यह स्पष्ट होता है । एक उदाहरण स्वर प्रकरण से लिया जाता है—

‘केवल चार स्वरों की तान—

१. नृत्य में हाथ की एक विशेष मुद्रा ।
२. नृत्य में हाथ की एक विशेष मुद्रा ।
३. हाथ की विशेष मुद्रा ।

स रि ग म, रि स ग म, स ग रि म, ग स रि म, रि ग स म,
 ग रि स म, स रि ग म, रि स म ग, ग ग रि ग, म स रि ग,
 रि स म ग, म रि स ग, ग स ग रि, म स म रि, स म ग रि,
 म स ग रि, ग म स रि, म ग स रि, रि ग म स, ग रि म स,
 रि म ग स, म रि ग स, ग म रि स, म ग रि स,

इति च्यार स्वरन को प्रस्तार संपूरण'

इस ग्रन्थ का आधार अधिकतर उस समय के प्रचलित सभी मत हैं। अधिकांश रूप में शाङ्गदेव ही आधार हैं, परन्तु स्थान-स्थान पर अलग-अलग आचार्यों के अनुसार शास्त्र का विवेचन किया है।

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी में प्राप्त 'संगीत-सार' की प्रति में स्वरों तथा रागों को चित्र द्वारा खींच कर बताया गया है।

इस प्रकार प्रतापसिंह द्वारा संकलित यह ग्रन्थ शृंगार युगीन संगीत शास्त्र पर लिखा गया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ब्रज भाषा गद्य तथा पद्य दोनों में मिला कर लिखा गया है। काव्यकारों को अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जो सुविधा हुई, वहाँ वही माध्यम अपना लिया है।

'राधा-गोविंद-संगीत-सार' के अतिरिक्त प्रतापसिंह जी द्वारा लिखी गई अन्य सभी पुस्तकें लगभग एक ही धारा में प्रवाहित हैं। सभी का सम्बन्ध कृष्ण-राधिका की विभिन्न लीलाओं, प्रेम या किसी विशेष क्रीड़ा से है। उदाहरण के लिए, फाग रंग में होली का वर्णन, मुरली विहार में मुरली का सौन्दर्य प्रभाव आदि, रमख भूमक वत्तीसी में कृष्ण के प्रति प्रेम भाव के वर्णन तथा सौन्दर्य वर्णन है।

'प्रीति' लता का एक उदाहरण है—

भूमकि भूमकि भूमरिन जहां, भूमकि भूमि भूमि भूमि ।

भूमहलती भूमकत भूम, भूम भूमहल भूमि ।

रेषता संग्रह में फारसी भाषा का बाहुल्य है

'रेखता (भैरवी, भूपाली या पस्तो)

दरद का भी दरद जरा दिल में तो धरो

वे दरद होना नाहिं नजर मिहर की करो ।' रेखता संग्रह—

ब्रजनिधि ग्रन्थावली ।

श्री ब्रजनिधि मुक्तावली में संगीत के आधार पर काव्य रचनाएँ की गई हैं।

राग सारंग चर्चरी (ताल जत) — मुखहिं अंबुज सुनी तान अमृत सखी ।

सप्त सुर सों सुधर राग सारंग के, रंग में रीझि के मान राधे द्रवी ।

अली पंक्त्यावली गुंज कुंजन हिली, जहां चली प्रिया सोते चली ले
 कवी ।

निरखि ब्रजनिधि पिया रूप लखि छकि जिया, मोद सों मिलि तिया

रसहिं हंसि के टवी ।

ब्रजनिधिपद संग्रह में कुल दो सौ पैतालीस पद हैं। चालीस पद अन्य लेखकों के हैं।

इसमें राग-रागिनी बद्ध गीत हैं ।

इस प्रकार इनके ग्रन्थ काव्य और संगीत दोनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं ।

हरिवल्लभ

सर्वांग निरूपक ग्रन्थकारों में हरिवल्लभ उच्च कोटि के संगीतज्ञ कवि हुए हैं । इनके जन्म तथा मृत्यु काल के संबंध में निश्चित रूप से कोई प्रमाण प्राप्त नहीं । रचनाओं के आधार पर इनका जीवन-काल तथा कविता-काल निर्धारित किया जा सकता है । श्रीमद्भगवद्गीता पर 'भाषा-टीका', तथा 'संगीत-दर्पण', दो रचनाएँ इस संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त कराती हैं ।

आर्य भाषा पुस्तकालय में प्राप्त गीता की टीका का रचना-काल सं० १७७१ है ।

'सत्रह सेर इकोत्तरा माघवमास तिथि ग्यास ।

गीता की भाषा करी हरिवल्लभ सुष रास ।'

उक्त उद्धरण में 'इकोत्तरा, का अर्थ 'एक+उत्तर' सन्धि के कारण सं० १७०१ भी लिया जा सकता है । ग्रियर्सन के इतिहास के अनुवादक श्री-किशोरी लाल गुप्त ने अपने सर्वेक्षण में गीता का समय सं० १७०१ माना है ।^१ मिश्रबंधुओं ने हरिवल्लभ का उल्लेख किया है,^२ परंतु उनके पास जो गीता के भाषानुवाद की प्रति थी, उसमें संभवतः समय सूचक दोहा खंडित था, तभी उन्होंने लिखा है कि उन्होंने 'कहीं सन् और संवत् का पता नहीं दिया ।' इनके पास जो टीका थी, उसका लिपिकाल सं० १८७५ का था, अतः उससे कुछ पूर्व इनका समय मान लिया है । संभवतः उपर्युक्त टीका के आधार पर ही डा० रामकुमार वर्मा ने इनका आविर्भाव काल सं० १७०० माना है ।^३ इस आधार पर गीता की टीका के समय इनकी अवस्था यदि पंद्रह वर्ष भी मानी जाए तो इनका जन्म-काल सं० १६८५ निश्चित होता है ।

हरिवल्लभ के दूसरे ग्रंथ 'संगीत-दर्पण' की प्राचीनतम प्रति श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरोली में प्राप्त है, जिसका लिपि-काल सं० १७५६ है । इसके आधार पर 'संगीत-दर्पण' का रचना-काल सं० १७५० के आस पास माना जा सकता है ।

प्रथम रचना सं० १७०१ में तथा अंतिम रचना सं० १७५० में रचित मानने पर इनका कविता काल सं० १७०० से सं० १७५० तक तथा जीवन-काल सं० १६८५ से सं० १७६० के आस पास तक माना जा सकता है ।

१. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक, श्री किशोरी लाल गुप्त, प्रथम संस्करण, १९५७, पृ० ३२५ ।

२. मिश्रबंधु-विनोद, प्रकाशक, हिंदी ग्रन्थ प्रसारक मंडली, खंडवा व प्रयाग, प्रथम बार, सं० १९७०, पृ० ६३४ ।

३. वही ।

४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, चतुर्थ संस्करण, पृ० ५९७ ।

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी में हरिवल्लभ कृत भगवद्गीता की टीका की एक प्रति है, जिसमें मूल श्लोक के साथ हरिवल्लभ रचित दोहे हैं। यह पाठ अधिकांशतः एक अन्य कवि 'आनंदराम' की टीका से मिलता है। डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि 'संभवतः आनंदराम ने इनकी टीका संपूर्ण रूप से अपना ली हो।' वास्तव में सत्य इसके विपरीत है। स्वयं हरिवल्लभ ने इसी टीका में स्वीकार किया है कि 'इस गीता की टीका का कुछ गद्य भाग कवि आनंद ने रूपांतरित किया है।

‘है या गीता ग्रंथ के, सबै अनुष्टुप छंद।

कछुक गद्य जिन सवन के दोहा रचे अनंद।’

इस अंश से इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि कवि 'अनंद' हरिवल्लभ के मित्र तथा समकालीन थे।

हरिवल्लभ ब्राह्मण थे तथा राधा-वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। 'हरिवल्लभ' का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं है। यह नाम इन्होंने इस संप्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त ग्रहण किया था। यह इन्होंने गीता की भाषा-टीका में स्वयं कहा है।

‘लपी सूर द्विज हूं जु हौं हरिवल्लभ भो नाम।

भो गन कुल भगवान को वसौं सु मथुरा ठाम।’

हितहरिवंश के संप्रदाय में इनका दीक्षा लेना अंतर्संक्षिप्त से प्रमाणित हो जाता है।

‘इह सेवा मन आनि बुद्धि हरि चरनन रषी।

हित-हरिवंश प्रणाम कहै हरिवल्लभ जु लपी।’

हरिवल्लभ संत भी थे और संगीतज्ञ भी। इनके ग्रंथ 'संगीत-दर्पण' की लोक प्रियता से यह सिद्ध होता है कि यह संपूर्ण राजस्थान, पंजाब तथा काश्मीर आदि में भ्रमण करते रहते थे। लगभग सभी स्थानों पर इन्हें अत्यन्त आदर प्राप्त हुआ था। 'संगीत-दर्पण' ग्रंथ की प्रतिलिपियाँ प्रयाग तथा वाराणसी आदि उत्तर प्रदेश के नगरों में तो प्राप्त होती ही हैं, जयपुर, उदयपुर, कांकरोली तथा बीकानेर आदि नगरों में भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती हैं। कहीं कहीं कला प्रेमी राजाओं ने इस ग्रंथ के रागाध्याय की चित्र-रागमालाएँ अंकित करवाई थीं। काश्मीर के सौन्दर्य का प्रभाव, इनकी काश्मीर-यात्रा को प्रमाणित करता है।

जालन्धर (जालन्धर) में एक संगीतज्ञों का मेला होता है, जिसे 'हरिवल्लभ का मेला' कहते हैं। ऐसी संभावना होती है कि यह मेला इन्हीं हरिवल्लभ के नाम पर होता है। जिस

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा।

२. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. श्री मद्भगवद्गीता-टीका, हरिवल्लभ, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. गीता की भाषा-टीका, हरिवल्लभ, आर्य पुस्तकालय, वाराणसी।

५. खजांची चित्रशाला, म्यूजियम, बीकानेर।

६. 'मनु श्रम सोहति सी जन मन मोहति सी, रस रीति जाने काश्मीर नागरिन की।' संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

‘हरिवल्लभ’ की स्मृति में प्रत्येक वर्ष यह मेला होता है, वह भी संत तथा प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। ऐसा कहा जाता है कि ‘हरिवल्लभ’ ने जालन्धर (जालन्धर) में आकर स्वामी तुलजा गीर से संगीत सीखा, जिन्होंने इनको संन्यास^१ दिलाया। इसके पश्चात् ‘हरिवल्लभ’ ‘स्वामी हरिवल्लभ’ के नाम से प्रसिद्ध हो गए। स्वामी तुलजा गीर के निधन पर सं० १९३० में स्वामी हरिवल्लभ ने प्रथम बार जलन्धर के ‘देवी तलाव’ पर गाया। उसी समय कुछ संतो तथा साधुओं की छोटी सी गोष्ठी हुई। तभी से हर वर्ष जलन्धर में दिसंबर में संगीतज्ञों का मेला होता है। वहाँ हरिवल्लभ ‘बाबा’ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जालन्धर के ‘बाबा हरिवल्लभ’ को ‘संगीत-दर्पण’ के रचयिता मानने में सबसे बड़ी कठिनाई समय की होती है। यदि सं० १९३० तक हरिवल्लभ का जीवित रहना माना जाए, तो उनकी अवस्था दो सौ पैतालीस तक पहुँचती है, जो नितांत असम्भव है।

यह प्रश्न कहा जा सकता है कि ‘संगीत-दर्पण’ का रचयिता हरिवल्लभ इतनी ख्याति प्राप्त कर चुका था कि जलन्धर के इस व्यक्ति के संगीत-कौशल पर मुग्ध हो किसी ने उसे ‘हरिवल्लभ’ का नाम दे दिया हो।

रचनाएँ

हरिवल्लभ रचित जितनी भी रचनाएँ प्राप्त हैं, लगभग सभी संगीत पर आधारित हैं। इन्होंने ‘संगीत-प्रबंध-सार’, ‘संगीत-भाषा’, ‘राग माला’ ‘राधा-नाम माधुरी’ और ‘संगीत-दर्पण’ के अतिरिक्त ‘गीता पर टीका’ लिखी है।

‘संगीत-प्रबंध-सार’ प्रयाग संग्रहालय (म्यूजियम प्रयाग) में संग्रहीत है। इसका विषय संगीत है। इसमें स्वराध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, प्रबंधाध्याय और नृत्याध्याय नामक पाँच अध्याय हैं, जिनमें ताल, सरगम, तथा स्वरसमुदाय दिए हैं और स्पष्ट तथा सुंदर लिपि में लगभग संगीत-दर्पण के समान शास्त्रीय विवेचन किया है।

इनका एक ग्रंथ ‘संगीत-भाषा’ भी प्राप्त है, जो इसी विषय को लेकर चला है। यह भी प्रयाग में संग्रहीत है।

‘राग माला’ सरस्वती मंदिर, उदयपुर में संग्रहीत है। इसमें भैरव, कौशिक, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ इन छः रागों के स्वरूप का वर्णन किया गया है। ब्रज भाषा में लिखा है। इसका लिपिकाल सं० १८१६ है।^१ पत्र संख्या वारह है। इसी की एक प्रति जोधपुर पुरातत्त्व मंदिर में भी है। परंतु अन्तिम अंश ‘गान कौतूहल’ में रागों के मिश्रण का वर्णन बिल्कुल ‘संगीत-दर्पण’ ही के समान है।

१. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, मोतीलाल मेनारिया ।^१ (दुर्भाग्यवश यह प्रति देखी नहीं जा सकी, क्योंकि उस समय कोई मुकदमा चलने के कारण सरस्वती भंडार, उदयपुर की सभी हस्त-लिखित प्रतियाँ न्यायालय के अधीन थीं।)

‘राधा-नाम माधुरी’ का उल्लेख आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी के शोध-विभाग-सूची में आता है ।^१

संगीत-दर्पण

हरिवल्लभ की सुन्दरता और इनके संगीत संबंधी ज्ञान तथा कवित्व का पूर्ण परिचय देने वाली रचना ‘संगीत-दर्पण’ है । यह संगीत-शास्त्र का एक विशद ग्रंथ है । इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्त हैं । प्राचीनतम प्रति सोमेश्वर गुज्जर द्वारा संवत् १७५६ में लिपिबद्ध की गई है ।^२ इसका रचना काल भी सं० १७५० के आसपास होना चाहिए । यह संभव है कि अल्पायु में ही संगीत-शिक्षा प्राप्त करके उसमें दक्ष हो गए । तभी रागमाला आदि रचनाएँ कीं । इसके पश्चात् ज्यों ज्यों ज्ञान और अनुभव बढ़ा, इन्होंने इस वृहद ग्रंथ की रचना कर डाली ।

यह ग्रंथ संगीत के विभिन्न अंगों स्वराध्याय, वाद्याध्याय और तालाध्याय आदि के अनुसार अध्यायों में विभाजित है । इसकी रचना शैली में मौलिकता है ।

यह ग्रंथ किसी विशेष आश्रयदाता की आज्ञानुसार रचा गया है, ऐसा इस ग्रंथ से प्रतीत नहीं होता है । ग्रंथ की रचना प्रारंभ करते समय परंपरा निर्वाह के हेतु किसी राजा की स्तुति नहीं की है । यह संभव है कि प्रारंभिक अंश लुप्त हो गया हो । परंपरा का पालन करते हुए ग्रंथ का आरंभ मंगलाचरण से ही हुआ है । संगीत के प्रवर्तक शिव को मानते हुए कवि शिव की स्तुति से प्रारंभ करता है—

‘छाजति है छवि टीके हुते लषि जुगिनि जूह तहाँ जय जंपति ।

भारी दियें दुति यों हरिवल्लभ जानि रषे तें अजों रति कंपति ।

प्रकट्यो अनुरागु मनो हिय को जु अलिंगन कीनी जु यों मिलि दंपति ।

लाल विसाल लसैं अति ही सिवभाल को नैन करौं सुष संपति ।’^३

“संगीत दर्पण” लक्षण-लक्ष्य ग्रंथ की कोटि में रखा जा सकता है । इसका महत्त्व जितना संगीत के क्षेत्र में है, उतना ही काव्य के क्षेत्र में है । लक्षण प्रस्तुत करने के पश्चात् उदाहरण स्वरूप जो कवित्त रखे हैं, वे काव्यात्मकता से पूर्ण हैं ।

स्वराध्याय में केवल शास्त्रीय विवेचन है, जैसे श्रुतियों के बाईस भेद बताए हैं ।

‘रूप मात्रक श्रवन को तूं श्रुति करि के जानि

ता श्रुति के पुनि होत हैं भेद बीस द्वै मानि

तीव्रा और कुमुद्वती मंदा बहुर्यौ देषि

१. खोज रिपोर्ट । हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों का त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, सन् १९२६-२८ ई०, संपादक, स्व० रा० ब० डा० होरा लाल, काशी, सं० २०१० वि० ।

२. श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरोली ।

३. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, म्यूजियम अलवर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

चौथी छंदोवर्ति बहुरि पंज सुरहि में लेखि ।^१ आदि ।

रागाध्याय में भिन्न आचार्यों के मतानुसार राग विभाजन, रागों का समय, स्वरूप वर्णन दिया है । इस अध्याय में रागों के लक्षण विभिन्न मतों के अनुसार दिये हैं ।

कल्लिनाथ के मतानुसार बीस राग प्रमुख बताए हैं और हनुमान मत के अनुसार छः प्रमुख राग बताए हैं ।

रागों के लक्षण बनाकर स्वरूप वर्णन किया है । इसके पश्चात् कहीं कहीं स्वरालाप भी दी है ।

टोडी रागिनी का लक्षण—

‘न्यास अंश ग्रह पंज सुर अंग पद पूरन जोति
द्वै पहरनि पर रागिनी टोडी नित ही होत ।’

उदाहरण—

‘कज्जल अंग तुषार हुतै अति कुंद की हारु गरे छवि छाजै ।
केसरि और कपूर की घोरि किन्ने तन में सुप सोभा साजै ।
वीन बजाइ रिभाई लिए मृग कानन केलि कुतूहल साजै ।
चित्र दुकूल घरे हरि बल्लभ जेसिए टोडीयो राग विराजै ।
‘रि ग रि स स रि प म रि रि स नि स रि ग प प म
नि नि ध म रि स ग रि स रि स नि ध नि ग रि स
स रि:’

प्रकीर्णाध्याय में गाने का ढंग गायकों के गुण, दोष आदि का वर्णन है ।

प्रबंधाध्याय में गीत के लक्षण, प्रबंध के प्रकार, जाति, आदि का वर्णन है ।

वाद्याध्याय में चार प्रकार के वाजों का वर्णन है ।

तालाध्याय में तालों का विस्तार से, मात्राओं को बताते हुए वर्णन किया गया है ।

नृत्याध्याय में शास्त्रीय और देसी नृत्यों के प्रकार और क्रियात्मक ढंग मुख तथा आँख आदि के संचालन का ढंग बताया है । इस प्रकार के नृत्य, रस, अभिनय, भाव और हावों का लक्षण सहित विवेचन है—

‘दस विवि कहै नृत्य कहं सब कोइ । नाट्य नृत्य अरु तांडव होइ ।

नृत्य लास्य अरु विषम विकट पुनि । लघु अरु परिनि गुंडलनूं गुनि ।’
दृष्टियों के प्रकार बताते हुए ‘लज्जा दृष्टि’ का लक्षण है—

‘ऊरध पलक जु नीचें लागें । मन में लज्जा अति ही जानें ।

लज्जा द्रष्टि कहत है याहि । सब कवि कोंविद चित में चाहि’

‘राधा-गोविन्द-संगीत-सार’ के समान ही ब्रज भाषा में लिखा गया संगीत-शास्त्र का एक सुन्दर ग्रंथ है, जो संगीत तथा काव्य दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है ।

इसकी प्रतियाँ उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, अलवर, प्रयाग, वाराणसी आदि स्थानों के अतिरिक्त एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी के प्राच्य विभाग की हस्त-

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, म्यूजियम अलवर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

संगीत-काव्यकार-जीवनी तथा कृतियाँ

१०६

लिखित पुस्तकों में भी है ।^१

राधाकृष्ण

‘मिश्रबंधु-विनोद’ द्वितीय भाग में ‘राधा-कृष्ण’ कवि का उल्लेख आया है, जिनका कवित-काल सं० १७५४ दिया गया है । कवि राधा-कृष्ण सदैव ‘कृष्ण कवि’ के नाम से रचना करते रहे । अतः सभी इतिहासों में वर्णित प्रसिद्ध ‘कृष्ण कवि’, यही राधाकृष्ण हैं । यह संदेह हो सकता है कि कृष्ण कवि और राधाकृष्ण दो भिन्न कवि हैं, परन्तु कुछ प्रमाणों से इस संदेह का निवारण हो जाता है ।

कृष्ण कवि जयपुर के राजा जयसिंह के मंत्री आपामल्ल के आश्रय में रहे और वहीं उन्होंने विहारी-सतसई की व्याख्या-वृद्ध टीका की ।^२ राधा-कृष्ण ने भी अपने राग-रत्नाकर में कहा है—

‘द्विज वासी जय नगर को गौड़ जाति अभिराम’

अतः दोनों ही कवि जयपुर के राज्याश्रय में कुछ समय के लिए रह चुके हैं ।

विहारी सतसई की टीका में कवि ने लिखा है—

‘माथुर विप्र ककोर कुल । लह्यो कृष्ण कवि नाम ।’

‘लह्यो’ शब्द का अर्थ ग्रहण करना है, अतः यहाँ यह अर्थ स्पष्ट है कि कविता के लिए, कवि ने ‘कृष्ण कवि’ नाम ग्रहण कर लिया है । वास्तविक नाम राधा-कृष्ण हो सकता है ।

‘राग-रत्नाकर’ के ग्रन्थ के प्रारंभ में कवि कहता है—

‘दिन रैन भक्ति ब्रजराज की भीमसिंह मन मानिये

इहि हेतु कह्यो कवि कृष्ण सों रस संगीत खानिये ।’^३

और अंत में अपना परिचय देते समय स्पष्ट कर देता है कि वही व्यक्ति राधा-कृष्ण है—

‘द्विज वासी जय नगर की गौड़ जाति अभिराम

वरन्यो राधा कृष्ण कवि यह ग्रंथ छवि धाम ।

इति श्री राधा कृष्ण विरचितायां राग-रत्नाकर समाप्त ।’^४

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि एक ही कवि ने दोनों नामों का प्रयोग किया है । सम्पूर्ण ‘राग-रत्नाकर’ में बीच में कहीं ‘राधा-कृष्ण’ या ‘कृष्ण कवि’ का प्रयोग नहीं होता ।

कृष्ण कवि के जीवन के सम्बन्ध में अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है, फिर भी उनकी रचनाओं के आधार पर उनके रचनाकाल तथा जीवन-काल का अनुमान किया जा सकता है । काल-निश्चय करने के हेतु ‘धर्म-समाधि’, ‘विदुर प्रजागर’, ‘विहारी-टीका’ तथा ‘राग-

१. श्री मोतीलाल गुप्त, श्री महाराज कुमार कालिज, जयपुर के द्वारा लिखित लेख, ‘ब्रिटेन के पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रंथ’, हिंदी अनुशीलन वर्ष १४, अंक २ ।

२. हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास (रीतिकाल), डा० नगेंद्र द्वारा संपादित, पृ० ५३० ।

३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

४. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

रत्नाकर' को आधार बनाया गया है। यहां यह देख लेना अप्रासंगिक न होगा कि इन पुस्तकों का रचयिता एक ही व्यक्ति है। 'विदुर-प्रजागर' तथा 'विहारी-टीका' एक ही कवि की रचनाएँ हैं, यह स्पष्ट है।

विहारी की टीका के प्रारंभ में कवि कहता है—

‘मैं अति ही ढीठो करी कवि कुल सरल सुभाय ।

भूल चूक कछु होइ सों लीज्यो समुक्ति बनाय ।’

और 'विदुर प्रजागर' के अन्त में भी यही शब्द है—

‘मैं अति ही ढीठी करी, कवि कुल सरल सुभाय ।

भूल चूक कछु होइ हों लीजो समझ बनाय ।

इसके अतिरिक्त 'विहारी-टीका' और 'विदुर-प्रजागर' दोनों ग्रंथ कुछ ही वर्षों के भीतर, राजा जयसिंह के मन्त्री आपामल्ल की आज्ञा से लिखे गए हैं। विहारी की टीका के लिए—

‘आपामल्ल कवि कृष्ण परि ठर्यो कृपा के ठार ।

भांति भांति विपदा हरी दीनों दरब अपार ।

एक दिना कवि सों नृपत कही, कही क्यों जात ।

दोहा दोहा प्रति करो कवित्त बुद्धि अपार ।’

और 'विदुर-प्रजागर' की भी—

‘राजा आपामल्ल की आज्ञा अति हित जान’

‘भाषा में वषान’ किया गया है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि 'राग-रत्नाकर' का रचयिता, विहारी-टीका रचने वाला कवि ही है।

डा० विजयेन्द्र स्नातक ने 'कृष्ण-कवि' की 'विहारी-टीका' तथा 'विदुर-प्रजागर' नामक ग्रन्थों के आधार पर उनका रचनाकाल सं० १७६२ ('विदुर-प्रजागर' का रचना-काल) माना है तथा जन्म संवत् की कल्पना संवत् १७७० के आस पास की है,^१ परन्तु कृष्ण कवि की एक रचना 'धर्म-समाधि' प्राप्त होती है, जिसका रचना-काल सं० १७७५ है, अतः इसके अनुसार इनका जन्म-संवत् १७६० माना जाएगा।

‘सत्रह सै पचहत्तर समयो कीलक नाम ।

सावन सुदि परमा तिथि सुरगुरु पहिली जांम ।

ताही दिन यह ग्रंथ को कीनो करन बखान

कवित सवैया दोहरा करन लगै उच्चार ।’^२

इस ग्रंथ के रचना-काल के अनुसार, प्रियसंन का कथन उचित प्रतीत होता है। प्रियसंन ने कृष्ण कवि को संवत् १७७६ में उपस्थित बताया है।^३ रचना-काल-निर्धारण पूर्व यह देखना आवश्यक है कि धर्म समाधि का रचयिता, 'विदुर-प्रजागर' का रचयिता भी है।

१. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास—डा० नगेन्द्र द्वारा संपादित, पृ० ५३०।

२. धर्म-समाधि, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, प्रियसंन, अनुवादक, किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ १६८।

ऐसी शंका अवश्य होती है कि 'धर्म-समाधि' के रचयिता कोई अन्य कृष्ण कवि हों, तथा 'विदुर-प्रजागर' तथा 'विहारी-टीका' के रचयिता यही कृष्ण कवि हों। इस शंका के दो आधार हैं।

एक तो 'धर्म-समाधि' में विहारी-टीका तथा 'विदुर-प्रजागर' की अपेक्षा व्याख्यात्मक प्रतिभा की कमी दिखलाई पड़ती है। 'विहारी-टीका' में विहारी के दोहों के समान ही इनके कवित्तों में सौन्दर्य दिखाई देता है, एक उदाहरण उक्त कथन को प्रमाणित कर देगा।

‘नष रुचि चूरन डारि के ठगु लगाय निज साथ ।

रह्यो राधि हठि ले गयो हथा हथी मनु हाथ ।

टीका । इह हाथ की सोभा देपि नायकु को मनुं याके हाथ नाही रह्यो ।

सु नाइक अपने मन की गति सपी सों कहतु है । नायका हूं सो कहै ।

कवित्त—

बुंद लसे मेंहदी के सुरंग डही अरुनाइ के रंग रचे कैं ।

रंप वसी कर मंत्र दिपाय कैं साथ लगाइ लियो अपने कैं ।

चारु नपै तुती चूरन डारि अधीन कियो बहु भांति भुरै कैं ।

राधे हू पै न रह्यो मन हाथ हाथा हाथी हाथु गयो सुमिलैं के ।^१

इसी प्रकार 'विदुर-प्रजागर' में कथा-प्रधान होने के कारण यद्यपि काव्यात्मकता इतनी अधिक नहीं आ पाई है। परन्तु विविध छंदों का प्रयोग करके कवि ने अपनी क्षमता का परिचय दिया है। तोटक, सोरठा, तोमर, भुजंगप्रयात आदि छंदों का निरन्तर परिवर्तन करते हुए कथा कही गई है।^२

उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों की तुलना में 'धर्म-समाधि' काव्यात्मक दृष्टि से कुछ नीची कोटि का ग्रंथ दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ—

एक समै कअरी यहै जनमें जपने आनि ।

धर्म दुदिष्टिल की कथा कहियो वसंपानि ।

कौन भांति दरसन दयौ धर्म राय ने आनि ।

राउ दुदिष्टिल को तवै सुनौ चहियतु ठान ।^३

यद्यपि इन ग्रन्थों की परीक्षा करने के उपरांत उपर्युक्त शंका की संभावना होती है, तथापि गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह शंका निर्मूल सिद्ध हो सकती है। 'धर्म-समाधि', कृष्ण कवि की प्रथम रचना है। पूर्वोक्त कथन के अनुसार इसका रचना काल सं० १७७५ निश्चित होता है, तथा 'विदुर-प्रजागर' और 'विहारी-टीका' क्रमशः सं० १७९२ तथा सं०

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

२. वही ।

३. वही ।

४. सत्रह सै अउ बानवे संसत कातिक मास ।

सुफल पाद पाये गुरउ कीन्हौ ग्रन्थ प्रकास । —विदुर प्रजागर, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

१७६३ है।^१ इसके अतिरिक्त कृष्ण कवि ने प्रतिभावान् बालक होने के नाते अपनी अल्पायु में ही यह प्रयास किया है, जो निश्चय ही कलात्मक नहीं हो सकता था, फिर भी एक दो कवित्तों में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय इस ग्रंथ में भी दे ही दिया है।

‘कवित्त—

कंचरन के दलकै अति पम्ह चुनी मन पंगु जोति विराजै ।

भाट व भारत वेद पढ़ै दु जगंघ्रय गावत दुंदुभी वाजै ।

भूमत पीर पगार वधे गज दिग्गज से उपमा पर छाजै ।

कृष्ण कहै कवि भिमवली हनमंत सो राजन है दरवाजै ।^२

इस प्रकार ‘धर्म-समाधि’ को कवि का प्रारंभिक प्रयास कहा जा सकता है।

दूसरी शंका कवि के निवास-स्थान सम्बन्धी विभिन्न कथनों से उत्पन्न होती है। ‘बिहारी-टीका’ के रचयिता ‘कृष्ण’ कवि जयपुर के राजा जयसिंह के मंत्री राजा आपामल्ल का आश्रित था;^३ अतः जयपुर का निवासी था। ‘राग-रत्नाकर’ में कृष्ण कवि ने अपना निवास-स्थान उतियारा ठिकाना (जयपुर) में बताया है।^४ ‘धर्म-समाधि’ में कवि ने ‘भांडौर’ में निवास बताया है।

वेदे भेद व्योहार । कवि वासी भांडौर के ।

रतनगंज सौ ठाउं । निकट चतुर्भुज वैतमै ।

संनावद सब वरन कुल रावत करै वपान ।

सेवक सबई दुजन के कविता कृष्ण वपान ।

वरनत धर्म समाधि को तन मन सब धरि ध्यान ।

यहु प्रताप गुर को भयो कृष्ण सुकवि को ग्यान ।^५

इस भ्रम का निवारण भी इस प्रकार किया जा सकता है कि कवि विभिन्न आश्रय-दाताओं के पास रहा, परन्तु लगभग स्थान सभी राजस्थान में थे। ‘भांडौर’ नगर भी जयपुर से बहुत अधिक दूर नहीं है।

यह सिद्ध हो जाने पर कि ‘धर्म-समाधि’, ‘विदुर-प्रजागर’, ‘बिहारी-टीका’ तथा

१. “सत्रह सैं द्वे आगरै असी वरस रविवार ।

कातिक वदि चौथि भए कविता सकल रस सार ।

—‘बिहारी-टीका’, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

२. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

३. “लीला जुगल किसोर की, रस कौ होइ निकेत ।

राजा आया मल्ल कौं ता कविता सौं हेत।” बिहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

४. ‘द्विज वासी जय नगर कौ गौड़ जाति अभिराम ।’ राग-रत्नाकर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

५. धर्म-समाधि, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

‘राग-रत्नाकर’ का रचयिता एक ही व्यक्ति राधाकृष्ण अथवा कृष्ण कवि है, हमें इनके जीवन तथा रचना-काल का निर्धारण करना होगा।

कृष्ण कवि की अंतिम रचना ‘राग-रत्नाकर’ का समय सं० १८५३ है।

संवत् गुण सरवसु मही। अथहेन मास अतूप।

मुदि पाँचै रविवार जुत भयी ग्रंथ सुप रूप।^१

इस प्रकार प्रथम और अंतिम ग्रंथ को देखने से इनका रचना काल सं० १७७५ से सं० १८५३ तक माना जा सकता है। यदि सं० १७७५ से पंद्रह वर्ष पूर्व भी इनका जन्म माना जाए और सं० १८५३ के बाद दो वर्ष भी जीवन और माना जाए तो इनका जीवन काल सं० १७६० से सं० १८५५ तक अर्थात् पंचानवे वर्ष का होगा, जो असंभव नहीं तो दुर्लभ तो लगता ही है। फिर तिरानवे वर्ष की अवस्था में मस्तिष्क और हृदय दोनों का ‘राग-रत्नाकर’ की रचना करने योग्य रहना असंभव सा जान पड़ता है।

‘राग-रत्नाकर’ के आधार पर इनका कविता-काल सं० १८५३ तक होना चाहिए, परंतु यह भी संदिग्ध सा जान पड़ता है। ऐसा लगता है कि इनके ‘राग-रत्नाकर’ की प्रशंसा सुनकर जयपुर में उनियारा ठिकाने के राव भीमसिंह ने इनको बुलाया हो और ‘राग-रत्नाकर’ सुनाने को कहा हो—उनके राज्य में जो ‘राग-रत्नाकर’ लिपि बद्ध हुआ, उसकी रचना सं० १८५३ है। इसके अध्याय ‘रागाध्याय’ की एक प्रति सं० १८४६ की लिपिवद्ध की हुई प्राप्त होती है।^२ इसका नाम ‘राग-समूह’ है। सं० १८४६ में लिपि-बद्ध करने का अर्थ है, इसकी रचना लगभग सं० १८०० से १८३० के बीच हुई। इसके अतिरिक्त जयपुर में लिखी गई ‘राग-रत्नाकर’ के अन्त में जो समय सूचक दोहा है वह अलवर व प्रयाग आदि में प्राप्त प्रतियों में नहीं है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि सं० १८५३ केवल जयपुर के राव भीमसिंह के लिए लिखी गई प्रति का समय है। ‘राग-समूह’ इन्होंने श्री भोजपाल के लिए लिखी है।

कलि में कविताई सकल भिग रज गुन गाइ।

इंद्रजीत पाछै करी भोजपाल चित चाह।

ऐसो को कवि जो तुमै रिभवै प्रवीन

तुम्हरी आग्या पाइकै करिहीं ग्रंथ नवीन।^३

अन्त में कवि कहता है—

महादानि अरि जुद्ध गुरि जीतयो कैं अहेट

१. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. आर्य भाषा पुस्तकालय, याज्ञिक संग्रह, वाराणसी।

“इति श्री यदुवंशावतंस श्री भोजपालस्य विरचिते राग समूहे षट राग वर्णन समाप्तीयं सप्तमोऽध्यायः। ७। सुभमस्तु सं० १८४६ लिखितं सेवादास पुस्तकं पठनार्थं समाप्तं।”

३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

भोजपाल जदुवीर कौं करी क्रीसनकवि भेद ।^१

यह कहा जा सकता था कि केवल इतना भाग सं० १८०० के आस-पास लिखा हो और शेष 'रत्नाकर' सं० १८५३ में पूर्ण किया हो, परन्तु इसी 'राग-समूह' की प्रति के अंत में लिखा है—

इति श्री यदुवंशावतंस श्री भोजपालस्य विरचिते

राग समूहे पटराग वर्णन समाप्तोयं सप्तमोऽध्याय ।

इसका अर्थ है कि समस्त 'रत्नाकर' इसी समय पूर्ण हो चुका था, केवल सप्तम अध्याय, भोजपाल ने लिखाया ।

पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने 'ब्रजनिधि ग्रंथावली' की भूमिका में प्रतापसिंह का उल्लेख करते हुए बताया है कि—

‘आप ही के समय में ‘कवि राधाकृष्ण’ ने ‘राग-रत्नाकर’ बनाया, जो बहुत सुन्दर छोटा सा संगीत का रीति-ग्रंथ है । “प्रतापसिंह का राज्य काल सं० १८३५ से प्रारंभ होता है । इस दृष्टि से ‘रत्नाकर’ की रचना सं० १८३६ के बाद ही होनी चाहिए । यह संभव है कि ग्रंथ की रचना सं० १८३० में ही हुई हो; अत्यधिक प्रचार के कारण प्रतापसिंह ने अपने राज्य में कवि को बुला कर सुना हो ।

इस प्रकार राधाकृष्ण अथवा कृष्ण कवि का कविताकाल सं० १७७५ से सं० १८३० तक और जीवन-काल लगभग सं० १७६० से सं० १८३५ तक माना जा सकता है । इन्होंने दीर्घायु प्राप्त की थी, इतना निश्चित है ।

प्राप्त सामग्री के आधार पर इनके जीवन के विषय में बहुत कम कहा जा सकता है । श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर के अनुसार कृष्ण कवि प्रसिद्ध कवि विहारी के पुत्र थे ।^२ ग्रियर्सन के अनुसार ‘यह विहारी के शिष्य थे और राजा जयसिंह की नौकरी में थे ।’^३ पुत्र थे अथवा शिष्य, यह विवादास्पद विषय है । इस विषय में अभी तक कहीं स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ, परन्तु इतना निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि इनका सम्बन्ध विहारी से अवश्य था । यदि विहारी के पुत्र भी हो तो कोई संदेह नहीं । विहारी-सतसई की टीका के प्रारंभ में इन्होंने सभी कवियों में ऊँचा ‘विहारीदास’ को दिखाकर अपने को ‘कवि-कुल’ का बताया है ।

‘मैं हति ही दीठ्यो करी कवि कुल मगल सुभाष

भूल एक कछु होइ सो लीज्यो समुि बगाय ।’

इतना निश्चित है कि यह विहारी के काव्य-कौशल तथा काव्य से अत्यन्त प्रभावित थे ।

‘ब्रज भाषा बानी कविन बहुविधि बुद्धि विलस ।

सबका भूषण सतसै करी विहारीदाम ।

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

२. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (रीतिकाल), डा० नगेंद्र, पृ० ५३० ।

३. हिन्दी साहित्य का प्रामेय इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० १६८ ।

४. विहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

जो कोउ रस गीति को समझ्यो चाहै सार ।

पढ़ै बिहारी मनसैं, कविता को शृंगार ।^१

बिहारी के समान काव्य-प्रतिभा कृष्ण कवि में पाए जाने के कारण ऐसा जान पड़ता है कि यह भी कवि-कुल के थे तथा असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न थे, तभी अल्पायु में ही ग्रंथ-रचना प्रारंभ कर दी। यह भी संभव है कि इनकी बुद्धि और चातुर्य से ही प्रभावित होकर आपामल्ल ने इनमें बिहारी-सतसई की काव्य-टीका करने का अनुरोध किया हो। आत्म-विश्वास का अभाव होने के कारण बड़े संकोच से ग्रंथ-रचना की। बड़े दैन्य के साथ कवि ग्रंथारंभ करता है—

‘पहले हू मेरे यहै हिय में हुती विचार ।

करो नायकों भेद कों ग्रंथ बुद्धि अनुसार ।

जे कीनो पूरव कविन सरस ग्रंथ सुप दाइ ।

तिनहि छाड़ि मेरे कवित को पढ़ि है मन लाइ ।

जानि यह अने हिये कियो न ग्रंथ प्रकास ।

नृप को आयस पाइ के हिय में भयो हुलास ।^२

इस प्रकार यह जाना जा सकता है कि आपामल्ल, जो जयपुर के नृपति जयसिंह के मन्त्री थे, उनके आश्रय में इन्होंने कविता करना प्रारंभ किया था। संभव है जीवन के प्रारंभिक काल में यह कुछ कठिनाइयों से घिरे हों, उनको आपामल्ल ने दूर किया हो और घन आदि में भी इनकी सहायता की हो। कवि एक स्थान पर कहता है—

‘आपामल्ल कवि कृष्ण परि ढर्यो कृपा के डार ।

भांति भांति विपदा हरी दीनो दरब अपार ।^३

इसके पश्चात् यह राजा भोजराज और जयपुर के उन्निवारा ठिकाने के राव भीमसिंह के दरबार में भी रहे।^४

इनकी रचनाएँ ‘वर्म-समाधि’ ‘विदुर-प्रजागर’, ‘बिहारी-सतसई की टीका’ और ‘राग-रत्नाकर’ ग्रंथवा वही ग्रंथ ‘राग-कुतूहल’ और ‘राग-समूह’ के नामसे प्राप्त हैं। एक ग्रंथ ‘वारहमासी’ भी आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी में संग्रहीत है। डा० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन ने वलिभद्र सनाढ्य मिमर कृत ‘नखशिख’ के एक अज्ञात टीकाकार का उल्लेख किया है, जो उन्निवारा के राजा थे।^५ ‘सरोजकार की प्रति से यह नाम खो गया

१. वही ।

२. बिहारी-सतसई, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

३. ‘बिहारी-सतसई की टीका’ आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

४. राग-रत्नाकर—राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

५. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, किशोरीलाल गुप्त द्वारा अनुवादित,

पृ० १५२ ।

है।^१ संभव है, यह टीका कृष्ण कवि की हो, क्योंकि कृष्ण कवि उनियारा ठिकाने में सं० १८४२ के आस पास थे, जो समय इस टीका का दिया गया है।^२

विदुर-प्रजागर

‘विदुर-प्रजागर’ महाभारत के उद्योग-पर्व को आधार बनाकर नौ अध्यायों में लिखा गया ग्रन्थ है। केशव के समान सम्पूर्ण काव्य में छन्दों की विविधता मिलती है। उदाहरणार्थ—

छंद तोटक—

पुन ता नृप के सुत तीन भये । मुन आप कृपा कर आप दये ।

वृतराष्ट्र पंडवली भनिये । विदुरो हर भक्त नमो गिनिए।^३

इसके पश्चात् सोरठा, तोमर और फिर भुजंगप्रयात छंद परिवर्तित होते चले गए हैं। यह ग्रंथ राजा आपामल्ल के आश्रय में उन्हीं की आज्ञा से लिखा गया है। प्रारंभिक रचना होने के नाते इसमें काव्यात्मकता बहुत कम है। विषय धार्मिक होने के नाते कवि को काव्य-कौशल दिखाने का अधिक अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ है। विविध छन्दों के प्रयोग से इनकी प्रतिभा का परिचय तो मिलता ही है। यह पुस्तक सं० १७६२ में लिखी गई।^४

विहारी-टीका

इस रचना के पश्चात् ही इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपामल्ल ने इनसे विहारी-सतसई की टीका लिखने का आग्रह किया। इनकी विनम्रता से पता चलता है कि यह उस समय छोटे ही थे, तभी इनमें तब तक आत्म-विश्वास नहीं था और संकोच के साथ काव्य-रचना की।

इनके हृदय में स्वयं टीका लिखने का विचार था, परन्तु इस संकोच से कि अन्य कवियों के सामने मेरे काव्य को कौन पढ़ेगा, लिखने का साहस नहीं किया। किन्तु आपामल्ल के आग्रह ने इनको टीका लिखने की प्रेरणा दी।^५

१. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, किशोरीलाल गुप्त द्वारा अनुवादित पृ० २७६।

२. वही।

३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. विदुर-प्रजागर, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

५. ‘एक दिना कवि सों नृपत कही, कही क्यों जात

दोहा दोहा प्रति करो कवित बुद्धि अवदात ।

पहले हू मेरे यहै हिय में हुतो विचार

करो नायका भेद कों ग्रंथ बुद्धि अनुसार ।

जे कोनो पूरव कविन सरस ग्रंथ सुषदाइ

तिनहि छाँडि मेरे कवित को पढिहँ मन लाय ।

जानि यह अपने हिये कियो न ग्रन्थ प्रकास ।

नृप को आयस पाइ के हिय में भयो हुलास ।

करे सात से दोहरा सुकवि विहारीदास ।

सब कोऊ तिन को पढे गुनँ सुने सविलास ।’ विहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

यह टीका कृष्ण कवि की काव्यात्मकता बताने के लिए भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने ब्रज भाषा के गद्य में दोहों के सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए, स्वयं एक कवित्त टीका स्वरूप के लिए बनाया है, जिसमें विहारी के दोहों का भाव भी ज्यों का त्यों बना रहा है और स्वयं इनकी मौलिकता भी प्रदर्शित हो सकी है।

उदाहरण स्वरूप—

‘मिरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ

जा तन की भाई परे, स्याम हरित दुति होई।

टीका—यह मंगलाचरण है तहां श्री राधा जू की स्तुति ग्रंथकर्ता कवि करतु है। तहां राधा औरहु है यातें जा तन की भाई परे स्याम हरित दुति होत है। या पद तै वृष भान सुता की प्रतीत भई।

कवित्त—

जाकी प्रभा अवलोकित ही तिहूं लोक की सुंदरता गहिवारी।

कृष्ण कहे सरसीरुहै नैन को नाम महामुदमंगलकारी।

जातन की भलकें भलकें हरित दुति स्याम की होत निहारी।

श्री वृषभानु कुमारि कृपा के सु राधा हरो भव बाधा हमारी।

स्वकीया नायिका।^१

अर्थ-स्वरूप दिए हुए कवित्तों में चित्रोपमता, शब्द-लालित्य, ध्वन्यात्मकता, आलंकारिकता आदि सभी गुणों की भलक मिलती है। विहारी के दोहे—

‘रह्यो मोद मिलनो रह्यो, यों कहि गही मरोर।

उत दै अली उराहनों इत चितई में वोर।’

का अर्थ कृष्ण कवि बताते हैं—

‘ता दिन की वह श्वाल गली में मिली हित के ले गई चित चोरिके।

एक ही ठौर करी इक ठोरी, मनो विधि रूप की रासि बटोरि कें।

छाड़्यो मया करियो मिलिबोड परोसनि सों कह्यो भोंह मरोरि के।

मों सजनी सों उराहनों दे परि मो तन हेरि गई मुहु मोरि के।

उपयुक्त कवित्त में मूल से भी अधिक सौन्दर्य आ गया है।

राग-रत्नाकर

‘राग-रत्नाकर’,^२ ‘राग कुतूहल’,^३ ‘रागचंद्रिका’^४ और ‘राग-संगूह’^५ सब एक ही

१. विहारी-टीका, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

२. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

५. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

रचना के विविध नाम हैं। इस ग्रंथ में संगीत के सभी अंगों पर शास्त्रीय विवेचना हुई है। रागाध्याय में कवि ने रागों के उदाहरण स्वरूप जो कवित्त प्रस्तुत किए हैं, उनसे इस ग्रंथ और ग्रन्थ कर्ता की काव्यात्मकता का परिचय प्राप्त होता है।

संपूर्ण 'राग-रत्नाकर' अभी तक कहीं भी प्राप्त नहीं है। जहाँ भी इसकी प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, हर स्थान पर केवल 'रागाध्याय' है। पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर की जो प्रति है, उसके प्रारंभ के पृष्ठ फटे हैं, परन्तु प्रारंभिक अंश आर्य भाषा पुस्तकालय में प्राप्त है। सरस्वती की स्तुति से इन्होंने ग्रंथ का प्रारंभ किया है, उसके पश्चात् संक्षेप में चालीस दोहों में नाद स्वर, गायन-दोष आदि के विषय में बताया है।

'राग निरूपण', 'राग-समूह' तथा 'राग कुतूहल' एक ही ग्रंथ के विविध नाम हैं। इनमें रागों का लक्षण तथा स्वरूप आदि बताकर रागों का मिश्रण कर 'गान-कुतूहल' का वर्णन किया है। यही 'राग-रत्नाकर' ग्रंथ की भी समाप्ति है।

संभव है कि इतना ही ग्रंथ इन्होंने प्रारंभ में बनाया हो। इसमें रागों को महत्त्व दिया गया है, इसलिए ग्रंथ का नाम 'राग-रत्नाकर' रखा। इस दृष्टि से इसको विशिष्टांग निरूपक ग्रंथों में रखा जा सकता था, परन्तु वाराणसी में प्राप्त एक प्रति में इसी अध्याय की समाप्ति पर लिखा है—'इति....सप्तमोऽध्यायः।' इसका अर्थ है कि कहीं अन्य अध्याय भी लिखे गए होंगे। एक प्रति 'राग समूह' के नाम से आर्य भाषा पुस्तकालय में है, जिसमें सात सौ पाँच श्लोक हैं, जिनमें अन्य अध्यायों का कुछ अंश है।

'राग-रत्नाकर' का प्रकाशन हो चुका है। इसे खेमराज श्री कृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस में छापा था। प्रकाशन काल सं० १९४९ है, परन्तु इसमें कवि अथवा आश्रयदाता किसी के विषय में कुछ नहीं दिया गया है।

सम्पूर्ण ग्रंथ की प्रति अप्राप्त होने पर भी केवल रागाध्याय ही के अवलोकन से इनके संगीत-ज्ञान तथा कवित्व का परिचय मिलता है। शास्त्रीय दृष्टि से रागों का लक्षण कहीं कहीं अशुद्ध है। इसका कारण यही हो सकता है कि उस समय राग का प्रचलित रूप आज से भिन्न हो अथवा स्वयं कवि को संगीत का ज्ञान न हो। जैसे भूपाली के स्वर—

'पिरज ग्रहे सरि ग म प ध नि संपूरन सुरगीत' लिखे हैं, जबकि भूपाली ओडव जाति की रागिनी है और स्वर हैं—'स रे ग प ध स'। कहीं कहीं लक्षण में जिन स्वरों का निषेध है वही उदाहरण में प्रयुक्त हैं।

उदाहरण स्वरूप लिखे गए कवित्त रीतिकालीन काव्य के समान, अलंकारों से पूर्ण हैं। भूपाली उदाहरण—

'चंदन हु ते मुख चारु कलेवर कंचन सों कर सोभित लाली।

केशरि के रंग ही चोर वनो कुच छूटि रही लट नागिन काली।

भावन आवन क्यों न भयो यह प्रीति प्रतीति बनावत आली।

साहस सों मन धीर धरे सब अंग अनंग भरी भूपाली।'^१

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी के याज्ञिक संग्रह में एक पुस्तक 'सार-संग्रह' है,

१ राग-रत्नाकर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

जिसमें केशवदास, माधव, सुजान, ताज, पदमाकर, मडन, सिव कवि, वृंद, घनानंद आदि कवियों के पदों के साथ ही राधा-कृष्ण के भी पद हैं, इन पदों में 'राधा कृष्ण' की छाप है—

‘पाइहैं सकल मिद्धि नय निद्धि वे ही

प्रबल प्रताप बडमाल कुलचंद है ।

बुद्धि करि पूरो गुण जान बल मुरो बडो

वपत बिलंद मदा आनंद को वृंद है ।

माणिक महीपसुन राजा हरि वक्म पाल

तापर कृपाल है, वही ब्रजचंद है ।

राधा कसन कहे रहे कमला अचल धाम

घाइ तो जसोदा घाऊ पूवी रामानंद है ।

इससे 'हरिवक्श पाल' के आश्रय में भी रहने का पता लगता है । फुटकर पदों की रचना भी इन्होंने की है, परंतु इनके पदों का संग्रह प्राप्त नहीं है ।

गोविंद-विलास

कृष्ण कवि कृत एक रचना 'गोविंद-विलास' का उल्लेख मिलता है ।^१ यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि 'गोविंद-विलास' तथा 'राग-रत्नाकर' का रचयिता एक ही व्यक्ति है । 'गोविंद विलास' ग्रामेर नरेश श्री हरनाथ सिंह के पुत्र श्री गोविंद सिंह के लिए लिखा गया ग्रंथ है । इस ग्रंथ में नायिका-भेद का वर्णन किया गया है । कवित्तों की भाषा तथा शब्द चयन की दृष्टि से 'राग-रत्नाकर' के बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है । उदाहरण स्वरूप, गोविंद विलास का एक कवित्त है—

‘वैन सुरंग कुरंग नरंग अनंग उमंग न अंग प्रकासी ।

कृष्ण कहै अति मुअ छग मुचटा गरजै पट लागे अकासी ।

वार के भार लवे कटि माइन भूत कून ताई चकासी ।

कोमलता सी सुपासी रसी मुनि दीप सिपा मो है जोति विकासी ।’^२

तथा राग-रत्नाकर का एक कवित्त है—

‘जोवन के मद जोर छनौ अति वैस किसोर सबै मन भावै ।

अंग अनंग तरंग भरयो परधीन महा तहनीन रिभावै ।

अंबर लाल धरें छवि जान रसाल कि मजरि कोनि मुगवै ।

भूप सरूप अनूप बन्यो यह राग सिरी सिरदा का हावै ।’^३

कविता में साम्य होने पर भी दोनों कवियों के समय में बहुत अंतर है, अतः एक व्यक्ति की ये रचनाएँ हों, ऐसा असंभव जान पड़ता है । 'गोविंद-विलास' का रचना-काल

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, पष्ठ भाग, डा० नगेन्द्र द्वारा संपादित, पृ० ४२६ ।

२. वही ।

३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

सं० १८६३ माना गया है^१, इस समय तक कृष्ण कवि का जीवित रहना असंभव जान पड़ता है।

श्री पूर्ण मिश्र

मिश्रबंघु-विनोद, तृतीय भाग (संख्या १५४६) में एक कवि 'पूरण मिश्र' का उल्लेख आया है, जिनकी रचना 'रागनिरूपण' और 'नादोदधि' (नादार्णव) बताई गई है। 'पूरण मिश्र' नामक एक अन्य व्यक्ति का भी उल्लेख है, जिनका ग्रन्थ 'राज निरूपण' बताया गया है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इनके जीवन के विषय में अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है। इनके ग्रन्थ 'संगीत-नादोदधि' के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यह राजा 'वीरशाह' के दरबार में संगीतज्ञ थे। उन्हीं से इन्होंने संगीत का ज्ञान प्राप्त किया। वीरशाह के दरबारी कवि 'दयाल' से इनका बहुत प्रेम था। कवि और मिश्र होने के नाते कवि दयाल ने इनसे यह ग्रन्थ लिखने के लिए कहा। धन की प्राप्ति के लिए भी यह उनके कृतज्ञ हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि कहता है—

‘प्रेम कियो कवि दयाल सों वीर साह अवतार
तासों पायो भेद हम नाद भेद बीस्तार।’

अन्त में भी यही कहकर समाप्त किया है—

‘आदर कर महाराज श्री दीयो हमें यह भेद।
वीर साह अवतार नृप नाद ताल ओ भेद।
कवि दयाल सों प्रेम बहु कीनो हित सों काज।
विद्या दे लक्ष्मी जुगत जस लीनों महाराज।’

‘वीर शाह’ राजा के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। ‘दयाल’ नाम से ग्रियर्सन के इतिहास में उल्लेख आता है, जो बेंती जिला रायबरेली के थे तथा भौन कवि के पुत्र थे। भौन कवि रायबरेली के भाट थे तथा इन्होंने ‘शृंगार-रत्नाकर’ नामक ग्रन्थ की रचना की थी।^२ ग्रियर्सन ने भौन कवि का जन्म काल १८२४ ई० (सं० १८८१) माना है, परन्तु किशोरी लाल गुप्त ने उसको इसलिए अशुद्ध माना है कि इनके ग्रन्थ ‘शृंगार रत्नाकर’ की प्राचीनतम प्रति सं० १८६१ की लिखी मिलती है। इस आधार पर सं० १८८१ को जन्म काल न मान कर रचनाकाल माना जा सकता है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि इनके पुत्र दयाल १८८३ ई० (सं० १९३९) में जीवित थे।

इतना तो निश्चित है कि कोई कवि दयाल, जो चारण थे—पूर्ण मिश्र के मित्र थे। ‘वीर शाह’ भी रायबरेली के पास ही किसी स्थान के राजा होंगे, जिनके दरबार में पूर्ण मिश्र कुछ समय तक रहे।

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, डा० नगेन्द्र द्वारा संपादित, पृ० ४२६।
२. ‘हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास’—ग्रियर्सन, अनुवादक श्री किशोरीलाल गुप्त, पृ० २६२।

राम नगर (वाराणसी) के 'सरस्वती मंदिर' में एक पुस्तक 'पंचांग निरूपण' प्राप्त है, जिसमें श्री सुपदेव मिश्र कृत 'छंद-विचार', श्री पूर्ण मिश्र 'कवि रागी' कृत दो पुस्तकें और नंददास कृत दो पुस्तकें 'नामावली' तथा 'अनेकार्थ मंजरी' लिपिवद्ध हैं। पूर्ण मिश्र की 'संगीत-निरूपण' तथा 'संगीत नादोदधि' क्रमशः द्वितीय और तृतीय पुस्तकें हैं। इस पुस्तक का लिपि-काल सं० १८५६ है।

उक्त सामग्री के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि पूर्ण मिश्र वीरशाह के राज्य-काल में रहे। वीरशाह के दरबार में चारण दयाल कवि थे, जिनकी मित्रता स्वरूप इन्होंने 'संगीत-नादोदधि' की रचना की।

'संगीत-नादोदधि' की प्राचीनतम प्रति 'पंचांग-निरूपण' में प्राप्त होती है, जिसका लिपि-काल सं० १८५६ है।^१ यह भी संभव है कि यह रचना इनके समय में ही लिपि-वद्ध की गई हो। इस दृष्टि से इनका रचना-काल सं० १८५० के आसपास होना चाहिए। ग्रियर्सन के अनुसार दयाल कवि सं० १६३६ तक जीवित थे।^२ उपर्युक्त अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यदि पूर्ण मिश्र को दयाल कवि का समकालीन माना जाए तो कम से कम सं० १६१० तक जीवित माना जा सकता है। यदि 'संगीत-नादोदधि' की रचना के समय यह बीस वर्ष के भी हों, तो इनका जन्म-काल सं० १८३६ अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार सं० १८३६ से सं० १६१० तक इनका जीवन-काल निर्धारित किया जा सकता है।

रचनाएँ

पूर्ण मिश्र कृत प्रमुख रचनाएँ 'संगीत-नादोदधि', 'संगीत-निरूपण' तथा 'रूप-रागावली' हैं। 'संगीत-नादोदधि' और 'संगीत-निरूपण' दोनों एक ही सी पुस्तकें हैं। बहुत सा अंश दोनों का समान ही है।

नादोदधि

संगीत-नादोदधि की प्राचीनतम प्रति सं० १८५६ की प्राप्त है,^३ अतः इसका रचना काल सं० १८५० के आस पास होना चाहिए। यह ग्रन्थ संगीत-शास्त्र पर लिखा गया एक विशद ग्रन्थ है। संगीत के सभी अंगों—राग, स्वर, ताल, प्रकीर्ण आदि पर पृथक् पृथक् अध्यायों में प्रकाश डाला गया है, परन्तु यह विभाजन बहुत नियमित नहीं है। उदाहरणार्थ, इसमें नृत्याध्याय नहीं है। तालाध्याय अलग होने पर भी मृदंगाध्याय अलग दिया गया है। कुछ विषयों पर विस्तृत व्याख्या है और कुछ अंग छूट गये हैं। जिन विषयों में कवि का अध्ययन अच्छा है, उनका सूक्ष्म वर्णन है। उदाहरण के लिए, मृदंगाध्याय में, पराड भेदों में 'छक्का' का लक्षण और उदाहरण इस प्रकार दिया है—

१. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

२. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० २६६।

३. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

‘छक्का—

आदि तीन सम कीजिए, बुज्ज दून की तौर
छका ताहि बखानिये, बांधि स्वरीहू की दौर।’

उदाहरण धिनाकृतधा । धिनाकृतधा । धिनाकृतधा ।

तत किटि किटा तधिन क धा । इति छक्कभेद संपूर्ण ।^{१२}

संगीत के पक्ष पर तो विस्तार से विचार किया ही गया है, इसके अतिरिक्त कुछ अन्य दृष्टियों से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। उस समय के कुछ प्रचलित गीत, जो प्रसिद्ध गायकों द्वारा गाए गए थे, इसमें उद्धृत हैं। नायक गोपाल और बैजू बावरा के प्रचलित गीत भी इसमें दिए गए हैं। उदाहरणार्थ, नायक गोपाल का बनाया एक गीत है—

‘स रि गम पध पट स्वर लहो

अस्थाई ध म वाल

संचाई संग लै कहो राग हिंडोल गुपाल ।’^{१३}

‘बैजू’ के अनुसार उनचास तानों का उल्लेख कवि इस प्रकार करता है—

‘तान भेद बैजू कहे

कर्यो गुपाल प्रकास

सप्त स्वरन के भेद तें

सात सतें उनचास ।’

‘संगीत-नादोदधि में जो रागों का शृंगार तथा स्वरूप वर्णन किया है, वह कवित्व से पूर्ण है। इन कवित्तों के द्वारा कवि की काव्यात्मकता तथा अलंकार-प्रियता का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए, भैरव का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

‘लाल रिसाल बनी मनि सीस लसित जोति

कुंडल श्रवन मुप गौर वरन ।

जटा जूट में तरंग करत रहत गंग चंद्रमा

लिलाट सेत बसन धरन ।

सोभित त्रिनैन मूल अभै कर डमरू वजावत

लाप्त उर प्रिया करन ।

कवल अरुत्वर गान करेगी व पूरन प्रकास

दास दोष हरन ।’^{१४}

इनके काव्य में रीतिकालीन चमत्कारी प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। उसी प्रवृत्ति के कारण इन्होंने कुछ ‘स्वर-कल्प’ लिखे हैं। ‘स्वर-कल्प’ सात स्वरों को इस प्रकार रखने का ढंग है, जिसमें स्वर लिपि भी बन जाती है और अर्थ निकालने पर कविता भी बन जाती है।

१. म्यूज़ियम, अलवर ।

२. वही ।

३. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

‘हिंडोल स्वर कल्प ताल फाक्ता

संग साध सरश वाम मध्ये साधे सो पेम मधे

प म र गो प शो । मां म वे शो ग सो स्वे रवे वाम

मध में में वा सो शं से धी में रे गोपिशो ।

पू रो र ग म सोधी शायु शो सु शि धि में रंगे शो ।’^१

यहाँ लिपिकार के अज्ञान के कारण कुछ अक्षर अशुद्ध लिखे गए हैं। ‘श’ के स्थान पर ‘स’ और ‘स’ के स्थान पर ‘श’ आ जाने से अर्थ में क्लिष्टता आ जाती है। उपर्युक्त अंश में हिंडोल राग में प्रयुक्त स्वरों में ‘स, ग, म, ध, सं,’ में ही कवित्त बनाया है। ‘रे’ का अल्प प्रयोग दिखाया है।

‘संगीत-नादोदधि’ की सभी प्राप्त प्रतियों में प्रारंभ एक ही समान हुआ है—

‘जै गंगा गौरी करन मंगल करन सुजान’

परन्तु रामनगर, वाराणसी के सरस्वती भंडार में प्राप्त प्रति में उपरलिखित दो पंक्तियाँ नहीं हैं—

प्रेम कियो कवि द्याल सों वीर साह अवतार

तासों पायो भेद हम नाद भेद बीस्तार ।’

‘संगीत-नादोदधि’ के अतिरिक्त श्री पूर्ण मिश्र कृत ‘संगीत-निरूपण’ ग्रन्थ प्राप्त है^२, जो लगभग ‘नादोदधि’ के समान ही है। इसके प्रारम्भ में कोई परिचय नहीं है। इसका प्रारम्भ भैरव राग के लक्षण से होता है।

‘रोही अवरोही स्वरन्ह अस्थाई निघ ध्याउ ।

संचाई सरि लाइ के भैरव राग बनाउ ।’

यह लक्षण भी अपूर्ण है।

यह ग्रन्थ अपूर्ण सा जान पड़ता है। इसमें ‘नादोदधि’ का ही कुछ अंश और मुख्यतया रागों का लक्षण तथा स्वरूप वर्णन है। इस ग्रन्थ का अन्त ‘भटहारी’ के स्वरूप वर्णन से होता है।

‘अति दीन प्यारी पीन तन पूजत देवी दयानी

फूल फल दल दीनी ।

धूप दीप दान करी कहत विनय धरी पति जय

दे परवीनी ।

जीति रत आवै मौन परम पियारो रौन

दीजे परम वर सेवा प्रवीनी ।

पूरन प्रकास दत्त सुभग सरूप सुभ लपि भटहारी

अधीनी ।’

१. सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

२. वही ।

इसी पुस्तक का नाम 'राग-निरूपण' है।^१

अलवर के म्यूजियम में एक पुस्तक 'रूप-रागावली' पूर्ण मिश्र के नाम से प्राप्त होती है, जिसमें राग वद्ध पद हैं। इस ग्रन्थ में कवि ने उपनाम 'रूप' दिया है। ऐसा विदित होता है कि ग्रन्थ को बिना देखे उसके ऊपर विवरण लिख दिया गया है। वह 'रूप' नाम के अन्य रीतिकालीन कवि का लिखा हुआ है, जिनका उल्लेख 'रीति-काव्य-संग्रह'^२ में आया है। श्री पूर्ण मिश्र ने सदैव 'पुरन' छाप से काव्य-रचना की है।^३

अहमद

कवि 'अहमद' के जीवन के विषय में प्रामाणिक सामग्री बहुत कम है। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार उन्हें संगीत के विशिष्टांग-निरूपक ग्रंथकारों में प्रथम स्थान देना उचित होगा। इनका समय प्रस्तुत प्रबंध में वर्णित ग्रन्थकारों से पूर्व होने के कारण इनको केवल पूर्वकालिक कवियों में लिया जाना चाहिए था, परंतु विषय की समानता तथा काल की संदिग्धता के कारण इन्हें अन्य कवियों में सम्मिलित कर लिया गया है।

मिश्रबंधु-विनोद द्वितीय भाग के अनुसार अहमद का जन्म-काल सं० १६६० और रचना-काल सं० १६९६ है।^४ ग्रियर्सन ने भी अपने इतिहास में इनका जन्म-काल सं० १६६९ माना है, परन्तु श्री किशोरी लाल गुप्त ने सर्वेक्षण में इनका उपस्थिति-काल सं० १६१८ और सं० १६७८ के मध्य माना है। गुप्त जी ने अहमद को 'ताहिर' नाम का ही व्यक्ति बता कर यह समय निर्धारित किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने भी 'ताहिर' और 'अहमद' को एक ही व्यक्ति माना है।^५

अहमद का रचना-काल शाहजहाँ के समय से औरंगजेब के समय तक निर्धारित किया जा सकता है। दाराशिकोह के द्वारा लिखाई गई एक पुस्तक 'दोहा-सार-संग्रह' प्राप्त है, जिसमें 'अहमद' कृत दोहे संकलित हैं। 'दाराशिकोह' का वय-काल सं० १७१५ है, अतः लगभग सं० १७०० के आस-पास इनका रचना-काल माना जा सकता है।

'अहमद' कवि के काल-निर्धारण के पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि 'अहमद' और 'ताहिर' दो व्यक्ति हैं अथवा एक। यद्यपि डा० रामकुमार वर्मा ने अहमद का ही दूसरा नाम 'ताहिर' माना है, परंतु अंतर्साक्ष के आधार पर एक स्थान पर ऐसी शंका होती है कि अहमद के शिष्य 'ताहिर' थे। अपनी रचना 'कोकसार' में ताहिर ने अपने को अहमद का शिष्य बताया है।^६

१. सरस्वती भंडार, राम नगर दुर्ग, वाराणसी।

२. वही।

३. जगदीश गुप्त, रीति-काव्य-संग्रह।

४. प्रथम बार, सं० १९७०, पृ० ४७१।

५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण, पृ० ५९६।

६. *Mughal Rule in India*. S. M. Edwardes and Garrett.

७. कोक-शास्त्र—ताहिर कृत—आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, वाराणसी।

‘रचना रची सु आदि प्रगट करी सो वेद मुप
अहमद गुरहि प्रसाद कहु जोति में हू लपी ।
(इसका अर्थ ‘अहमद’ कवि का नाम समझ कर भी किया जा सकता है ।) ताहिर
जहाँगीर के समकालीन जान पड़ते हैं ।

‘चारि चक्र विधान रचे जैसे समुद्र गंभीर
क्षत्र बरे अविचल सदा राज साहि जहाँगीर ।’
डा० रामकुमार ने भी इनको जहाँगीर का समकालीन माना है ।^१

जहाँगीर का राज्य काल सं० १६६१ से सं० १६८३ के मध्य है ।^२ स्वयं कवि भी
इस रचना का समय सं० १६७८ बताता है ।

‘संवतु सोरहि से गिनो अष्टोत्तरि अधिकाय
वदि आपाढ़ तिथि पंचमी कही कथा समुझाई ।’
इस प्रकार अहमद का समय सं० १६७८ के पूर्व होना चाहिए । अहमद ने अपनी रचना
‘सभा-विनोद’ या ‘रागमाला’ के प्रारंभ में भी अपना परिचय देते हुए कहा है:—

सेर वेग को संगी वेग अकबर साहब धाई तेग
ताके सुत कवि पैदा भयो जनम अकबराबादि ज लयो ।

तिन या पोथी करी रसाला, सब रागन की बांधी माला ।^३

अहमद के अकबर के समय में होने की कल्पना भी निरावार न होगी ।

यदि उपर्युक्त पंक्ति ‘अहमद गुरहि प्रसाद कहु जाति में हू लपी’ में अहमद कवि
का नाम समझा जाए तो अहमद का रचना-काल सं० १५७८ से सं० १७१० तक अवश्य
माना जा सकता है । अपने ग्रंथ ‘वारह-मासा’^४ में इन्होंने शाहजहाँ का वर्णन किया है, अतः
शाहजहाँ के समय में इनका उपस्थिति काल माना जा सकता है । उपर्युक्त निर्धारित काल
इसके अनुसार भी ठीक बैठता है ।

डा० हरदेव वाहरी ने एक कवि अहमद का उल्लेख किया है, जिनका समय सं०
१७५० वि० माना है ।^५ इन्होंने पंजाबी में ‘हीर’ नामक काव्य की रचना की है । विषयों
की प्रकृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, ‘कोकसार,’ ‘रागमाला,’ ‘हीर’ तथा
‘वारहमासा’ एक ही व्यक्ति की रचनाएँ हैं ।

‘रागमाला’ के आरंभ में दिए हुए विवरण के अनुसार यह ख्वाजा खिजरी वंश के

१. कोक शास्त्र-ताहिर कृत-आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, वाराणसी ।

२. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण, पृ० ५६६ ।

३. Mughal Rule in India, Edwardes and Garrett.

४. कोक शास्त्र—आ० भा० पुस्तकालय, वाराणसी ।

५. म्यूजियम, अलवर में पोथी सं० ३ और ४ ।

६. मोतीचंद जी खजांची संग्रह, बीकानेर ।

७. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा संपादित,

पृ० ६१५ ।

थे। इनका गोत्र 'पल' है। 'शेर वेग' के पुत्र 'संगी वेग' इनके पिता थे। 'अकबरावाद' में इनका जन्म हुआ था।^१ अपने नाम से यह मुसलमान जान पड़ते हैं, परन्तु काव्य की भाषा तथा ग्रंथारंभ हिन्दू कवियों के समान ही है। ग्रन्थ गुरु को प्रणाम करके प्रारंभ करते हैं।

प्रारंभः

'श्री गुरुभ्योनमः। दोहरा।

भैरव शिव भुष तै भयो धनी सु ग मि सुर सोय।

सारद प्रात ही गाईये जाति अडवे होय।'^२

इससे अधिक कवि के विषय में इन ग्रंथों के आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

रचनाएँ

रागमाला

कवि 'अहमद' कृत काम शास्त्र पर एक ग्रन्थ 'कोकसार', संगीत पर 'राग माला', हीर राँभा की लोक गाथा पर 'हीर' तथा एक ग्रंथ 'बारहमासा' का उल्लेख मिलता है। इन सब में, प्रस्तुत ग्रंथ से सम्बंधित एक ही रचना है—'रागमाला'।^३ कवि ने 'रागमाला' का नाम 'सभा-विनोद' रखा है।

'सभा विनोद जु नाम या पोथी को जानीयो।

पैदा सुष का घाम जगमोहन बस करन यह।'^४

इस ग्रन्थ में छः राग तथा तीस रागिनियों का शृंगार तथा स्वरूप वर्णन किया गया है। दोहरा तथा चौपाई छंदों में रागोत्पत्ति, राग-परिवार तथा रागों का मिश्रण वर्णित है। उदाहरणार्थ, भैरव का वर्णन करते हुए कवि कहता है :—

'धैवत सुरधर ताकों जानो। सिव मूरति सकेरै वपानी।

कंकन उरग और ससि भाल। सुरसरि जटा गरै मुंड माल।

सेत बसन नैन पुनि तीनि। सिद्धि सरूप महा परवीन।'^५

१. 'जाति वंश कवि को सुनि लेहु।

कोन भूमि उपज्यो केहि ग्रोहु।

ष्वाजा षिजरि जाति बषांनि।

अहमद षेल सु गोति है जानि।

सेर वेग को संगी वेग अकबर साहब धाई तेग।

ताके सुत कवि पैदा भयो जनक अकबरावादि जु लयो।

तिन या पोथी करी रसाला, सब रागन की बांधी माला।'

म्यूजियम, अलवर

२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३. म्यूजियम, अलवर; अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

४. म्यूजियम, अलवर।

५. म्यूजियम, अलवर; अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर

‘सभाविनोद’ केवल रागों के लक्षण, स्वरूप तथा मिश्रण जानने के लिए महत्त्वपूर्ण है। काव्यात्मक दृष्टि से इस ग्रंथ की कोई उपयोगिता नहीं है।

‘कोक-सार’

अहमद की दूसरी रचना ‘कोक-सार’ प्राप्त होती है। यदि यह मान लिया जाए कि ‘ताहिर’ अहमद के शिष्य थे, तो यह ग्रंथ अहमद रचित नहीं माना जाएगा। इसी पुस्तक के आधार पर यह भ्रम होता है कि ताहिर, अहमद के शिष्य थे।

‘रचना रची सु आदि प्रगट करी सो वेद मुप

अहमद गुरहि प्रसाद कछु जाति में हूँ लपी।’

इस पंक्ति में (जैसा कि पहले कहा जा चुका है) ‘अहमद’ कवि का नाम भी समझा जा सकता है। यदि अहमद रचित ग्रंथ माना जाए तो अहमद का समय जहाँगीर का समय निश्चित होता है।^१ कवि ने रचना का समय भी संवत् १६७८ बताया है। इस पर पहले विचार किया जा चुका है।

‘कोकसार’ में कवि ने ‘काम-कौतूहल’, का वर्णन किया है।

‘काम कौतूहल रस कथा चतुर आगरे चाइ।

कविता हर या देस मेंह वरणी कथा बनाई।’

काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से ‘कोकसार’ साधारण कोटि की रचना है।

‘हीर’

अहमद कृत तीसरा ग्रंथ ‘हीर’ है, जिसकी गणना पंजाबी लोक-साहित्य में की गई है।^२ हीर-रोम्भा की लोक-कथा को इसमें वर्ण्य विषय बनाया गया है।

अहमद की अन्य रचनाओं में ‘वारहमासा’, ‘गुणसार’, रनिविनोद भापा’, ‘रस विनोद’ तथा ‘सामुद्रिक’ का उल्लेख मिलता है।^३ ये सभी रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, फिर भी अहमद की कवित्व-शक्ति को प्रमाणित करती हैं। ‘वारहमासा’ में नायिका की ‘वारहों मास’ में होने वाली मुख तथा दुख की अनुभूति का वर्णन है। ‘गुणसार’ ही का दूसरा नाम डा० रामकुमार वर्मा ने ‘गुणसागर’ बताया है।

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

२. ‘चारि चक्र विधना रचै जैसे समुद्र गंभीर।

क्षत्र धरे अविचल सदा राज साहि जहाँगीर।’

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

४. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा संपादित,
पृ० ६१५।

५. शोध विभाग सूची, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

६. मोती चंद खजांची संग्रह, बीकानेर।

इसमें भी 'कोक शास्त्र का निरूपण है।^१ 'रतिविनोद-भाषा' तथा 'रस-विनोद' भी इसी विषय पर आधारित हैं। 'सामुद्रिक' हस्त-रेखा विज्ञान पर लिखा गया ग्रंथ है।^२

इन पुस्तकों के अतिरिक्त 'दोहा-सार-संग्रह' में अहमद कृत ब्रजभाषा के कुछ फुटकर पद संकलित हैं, जो काव्यात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।^३

ये ग्रंथ विषयों की विविधता के कारण 'अहमद' के ज्ञान तथा उनकी क्षमता से परिचित कराते हैं।

यशोदानंद शुक्ल

यशोदानंद शुक्ल मालवीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम विमल शुक्ल था।

'मालवीया द्विज कुल विमल शुक्लज जसोदानंद।'^४

इन्होंने कविता में अपना नाम 'दास' रखा है।

'भाषा कविता मांहि निज नाम धर्यो कवि दास।'^५

यह बंगाल के निवासी थे। बंगाल के सामंत अथवा श्रेष्ठि महताव राय के आश्रय में यह रहे। अपने ग्रंथ 'रागमाला' के प्रारंभ में इन्होंने अपने आश्रयदाता के वंश का परिचय दिया है। राजा माणिक चंद, जिनसे दिल्ली के शाह भी भय मानते थे, आकर बंगाल में बस गए। अत्यन्त धनवान होने पर भी इनके कोई संतान नहीं थी। वृद्धावस्था निकट आने पर इन्होंने अपने भानजे श्री फतेचंद को गोद ले लिया। उन्हीं को पुत्र की भांति मानकर अपनी समस्त सम्पत्ति अर्पित कर दी। फतेचंद के गुणों से प्रभावित होकर दिल्ली के मुहम्मदशाह ने इनको दिल्ली में बुलाकर 'जगत सेठ' की पदवी दी। समस्त बंगाल प्रदेश इन्हें सौंप कर विदा किया। इनके दो पुत्र थे 'आनंदवंद' तथा 'दयावंद'। बड़े

१. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ५९६।

२. वही।

३. याग्निक संग्रह, लखनऊ यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, लखनऊ।

४. रागमाला—यशोदानंद शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

५. वही।

६. 'भए जगत विष्यात जस रति पति रूप रसाल।

नऊस बाल कुल मानसर मानिक चंद मराल।

— — — — —

वसि बंगाला कीच्यो निजि मति के परभाव।

जिनकी आज्ञा देश में माने राजा राव।

सम्पति लतपल सदा सदन संतति भइ न एक।

जरा निकट आई जबै तब यह कियो बिवेक।

भागनेय अति सील जुत फतेचंद सुभ नाम।

तिन्हें गोद लिये सुत कियो सौच्यो निज धन धाम।'

राग माला, यशोदानंदन शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

पुत्र आनंदवंद के पुत्र महताव राय हुए,^१ जिनके लिए कवि ने ग्रंथ रचना की।

‘तर्कित हेत रच्यो सरल भाषा ग्रंथ विचार।

निरपि सकल संगीत मत ले कर सब को सार।’^२

महताव राय को भी दिल्ली शाह ने ‘जगत सेठ’ की पदवी दी थी। इनकी ख्याति आगरा, अजमेर, अजीमाबाद, कावईरा, आसाम, इलाहाबाद, आँडर्य, आजमगढ़, अवध, उज्जैन, अकबरनगर, आवेर, अहमदाबाद, इंद्रप्रस्थ, इमन, अमर नगर, अलका, अमरावती तक फैली हुई थी।^३

यशोदानंद शुक्ल ने अपने ग्रंथ का रचना-काल सं० १८१५ बताया है।

‘बीत अठारह सैं बरष अरु पंद्रह परिमान।

चैत शुक्ल नवमी रच्यो भयो ग्रंथ सुष दान।’^४

इसके आधार पर इनका जन्म-काल संवत् १७६० के लगभग माना जा सकता है। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने एक ‘यशोदानंदन’ कवि का उल्लेख किया है, जिनका जन्म संवत् शिवसिंह सरोज के आधार पर सं० १८२८ बताया है। यदि इन दोनों को एक ही व्यक्ति मान लिया जाए तो जन्म सं० १८२८ अशुद्ध है। संस्कृत तथा अवधी में लिखे गए एक ग्रंथ ‘वरवै नायिका भेद’ के आधार पर शुक्ल जी ने इनको उच्च स्थान का अधिकारी बताया है।^५ संभव है यह वही यशोदानंदन शुक्ल हों, जिन्होंने ‘रागमाला’ लिखी है। ‘रागमाला’ में रागों के स्वरूप-वर्णन के रूप में जो कवित्त प्रस्तुत किए हैं, वह अत्यन्त सुन्दर हैं। उदाहरण के लिए, राग हिंदोल का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

‘भूल प्यारी संग ले। परे भूमि करि दाउ।

प्यारी अंक म भर लिये। यह हिंदोल चित चाव।

रतन खचित खंभ डोरी लाल पाट की है पट्टिका

कनस मणि खचित वनाव सौ।

१. ‘जाके गुन गन सौं बिबस भए मंहमद साह।

जगत सेठ पदवी दई सादर दिल्ली मांह।

सकल बंगाला सोंपि के विदा कियो निज धाम।

जगत सेव जग विदित मै फतेचंद सुभ नाम।

जिनके द्वै सुत दस्व भए जगत विख्यात।

बड़े सु आनंद वंद जू दयावंद लघु भ्रात।

तिनके पुत्र पवित्र तसु भए राय महताव।

जैसे वीर ससुई मै मुदित होत महताव।’

आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

२. आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

३. वही।

४. रागमाला, यशोदानंदन शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

५. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, बारहवाँ संस्करण, पृ० २८१।

भूलत हिडोरे भूम भूम भुकि परें घुमि
 विवस हिदोल मिस रस ही के दाडंसों ।
 हाहा करि लीन्हो ज्योंही अंक भरि प्यारी त्यों ही उठे हैं
 सिरंग लाल प्यारे प्रेम चाउ सौं ।^१

उक्त कवित्त की काव्यात्मकता की तुलना में पं० रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ उद्धरण साधारण सा जान पड़ता है ।

‘अहिरिनि मन के गहिरिनि उतर न देइ ।
 नैना करे मथनिया मन मथि लेइ ।
 तुरकिनि जाति हुरकिनी अति इतराइ ।
 छुवन न देइ इजरवा मुरि मुरि जाइ ।
 पीतम तुम कचलोइया, हम गज बेलि ।
 सारस के अस जोरिया फिराँ अकेलि ।’^२

उक्त अंश में लोक-गीत का सा माधुर्य है । दोनों अंश परस्पर साहित्यिक दृष्टि से दूर होने पर भी एक कवि द्वारा रचित हो सकते हैं ।

रचनाएँ

यशोदानंदन शुक्ल कृत प्राप्त रचनाएँ केवल दो ही हैं । ‘रागमाला’ तथा ‘बरवै नायिका भेद’ । रागमाला में कवि ने स्वर, ग्राम, मूच्छंता आदि का स्थान, स्वरूप तथा लक्षण आदि विस्तार से बताया है । राग तथा रागिनियों के वर्णन के साथ ही सखा तथा सखी का वर्णन भी किया गया है । इस ग्रंथ से कवि के संगीत-ज्ञान का परिचय मिलता है । रागों की तीन जातियाँ, शुद्ध सालंक तथा संकीर्ण बताते समय कवि स्वरों के तीन प्रकार बताने लगता है तथा उदाहरण स्वरूप रागों का नाम बताता है । उदाहरण के लिए ‘सालंक-राग’ की परिभाषा देते समय कवि ‘विकृत-स्वर’ की परिभाषा बता देता है ।

‘सोई जनो विकृत स्वर । और ठौर तैं आय ।

औरन के अस्थान मैं जो डुरि डुरि मिलि जाय ।’^३

उदाहरण देते समय कवि ‘सारंग’ तथा ‘कान्हरा’ दो ही रागों को महाशुद्ध बताता है ।

‘जामै मिले न विकृत स्वर, पूरन आपहि होइ ।

कहिये सारंग कान्हरा महाशुद्ध ए दोइ ।’^४

रागों के स्वरूप तथा शृंगार वर्णन में कवि ने अत्यन्त कलात्मक रूचि तथा साहित्यिक सामर्थ्य का परिचय दिया है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है ।

१. रागमाला, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
२. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २८१ (वारहवाँ संस्करण) ।
३. रागमाला—आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
४. रागमाला—आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

‘वरवै नायिका भेद’ एक छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमें नौ वरवै संस्कृत में तथा तिरपन ठेठ अवधी भाषा में हैं।^१

गंगाराम

गंगाराम का रचना-काल सं० १७४४ है। मिश्र-बंधुओं ने भी इनका कविता-काल सं० १७४५ माना है।^२ ग्रियर्सन ने गंगाराम का जन्म काल सन् १८३७ ई० माना है।^३ दोनों में समय का इतना बड़ा अन्तर है कि ये दो कवि जान पड़ते हैं। श्री किशोरी लाल गुप्त ने गंगाराम का कविता-काल सं० १८४६-१८९४ माना है।^४ अंतर्साक्ष के आधार पर ग्रियर्सन का समय ठीक नहीं बैठता। अपने ग्रंथ ‘सभा-विलास’ में स्वयं कवि ने कहा है—

‘सतरह से संवत सरस । चतु अधिक चालीस ।

कातिग सुदि तिथि सप्तमी । वारस रस रजनीस ।

*

*

*

श्री भगवंत प्रसाद तैं इह सुभ सभा-विलास।^५

गंगाराम कवि द्वारा रचित शाङ्गदेव के संगीत-रत्नाकर की ‘सेतु’ नामक एक ब्रजभाषा-टीका, ‘तंजौर सरस्वती महल पुस्तकालय’ में उपलब्ध है, जिसका समय सन् १७०० ई० अर्थात् सं० १७५६ है।^६ इस दृष्टि से भी यह समय अधिक उपयुक्त है।

इस प्रकार इनका कविता-काल सं० १७४४ से सं० १७५६ तक तथा जीवन-काल अनुमानतः सं० १७२४ से सं० १७७० तक माना जा सकता है।

गंगाराम साँगानेर नगर के राजा रामसिंह के राज्य में थे।

‘साँगानयर सुनगर में राम सिंह नृपराज ।

तहां कवि जन सब चैयन सौ राजन सभा समाज ।

गंगाराम तहां सरस कवि कीन्हौ बुद्धि प्रकास ।

श्री भगवंत प्रसाद तैं इस सुभ सभा विलास।^७

रचनाएँ

गंगाराम रचित ‘सभाभूषण रागमाला’ प्राप्त होती है, जिसमें इन्होंने राग-

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २८१ (१२ वाँ संस्करण)।
२. मिश्रबंधु-विनोद, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, सं० १९७०, पृ० ५६४।
३. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक श्री किशोरी लाल गुप्त, प्रथम संस्करण, १९५७, पृ० २४१।
४. वही।
५. सभाभूषण रागमाला—गंगाराम, म्यूजियम, अलवर।
६. संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, प्रथम संस्करण १९५८, पृ० ५।
७. सभाभूषण रागमाला, गंगाराम, म्यूजियम अलवर।

रागिनियों का स्वरूप वर्णन किया है। इसकी प्रतियाँ अलवर, काँकरोली तथा काशी में उपलब्ध हैं, इससे इनकी लोकप्रियता का परिचय मिलता है।

गंगाराम रचित शार्ङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' की टीका इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि यह ब्रजभाषा की अकेली टीका है। अन्य टीकाएँ संस्कृत में हैं।

संगीत-काव्य के उदाहरण-ग्रन्थकारों में से प्रमुख कवियों के जीवन तथा कृतियों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

कृष्णानंद व्यास देव

श्री कृष्णानंद व्यास देव 'रागसागर' एक बड़े प्रसिद्ध संगीतज्ञ कवि हो चुके हैं। कृष्णानंद के पिता का नाम हीरानंद व्यास देव तथा प्रपिता का नाम अमरानंद व्यास देव था। स्वयं कवि अपने ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' भाग एक के 'गानाध्याय' के प्रारंभ में कहते हैं—

‘अमरानन्दो महात्मा श्रुतिस्मृति निपुणस्तस्यात्मजः श्री हीरानन्दो
तस्यात्मजः श्री कृष्णानंद व्यास देव निपुणो वेद वेदांग विज्ञः।’

यह राजपूताना मेवाड़ राज्य के अन्तर्गत उदयपुर के जोहैनी नामक स्थान में रहते थे और वृन्दावन-गोकुल में संगीत-शास्त्र पढ़ते थे। गोकुल के सुप्रसिद्ध संगीताचार्य दामोदर गोस्वामी, गिरधर गोस्वामी एवं कल्याणराय प्रभृति गोस्वामिगण ने संगीत-विद्या से मुग्ध हो इन्हें 'राग-सागर' उपाधि दी।^१ इनका जन्म-काल सं० १८५१ अथवा सन् १७९४ ई० तथा मृत्युकाल लगभग सं० १९४५ अथवा सन् १८८८ ई० माना जा सकता है। लगभग ९४ वर्ष की आयु में इनका निधन हुआ। यह जीवन-काल श्री नगेन्द्रनाथ वसु के दिए हुए जीवन परिचय के आधार पर निर्धारित किया गया है। इनके ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' भाग एक का संपादन करते हुए श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने कहा है—

‘कोई ३२ वर्ष पहले सन् १८८४ ई० को कलकत्ते में सर राजा राधा कांत देव बहादुर के प्रासाद में हमने तेजस्वी तप्तकांचन वर्णाभि और दीर्घकाय एक ब्राह्मण देखा। उस समय हमने बंग भाषा में 'शब्देन्दु महाकोष' नामक बृहदभिधान प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया था। इस अभियान के प्रकाशन और प्रतत्तत्त्व विषय में शिक्षा लाभ के अभिप्राय से ही राजा राधाकांत के उपयुक्त दौहित्र स्वर्गीय श्री आनन्द कृष्ण वसु महाशय के समीप हम उपस्थित थे। उसी समय पूज्यपाद वसु महाशय से साक्षात् करने को वह ब्राह्मणप्रवर राधाकांत भवन में आए थे। वसु महाशय की कृपा से हमारा उनका परिचय हुआ। परिचय प्रसंग में वसु महाशय ने कहा था—‘यही राग सागर कृष्णानंद व्यास देव हैं। इस समय इनका वयस ९० वर्ष का, किन्तु देखने में ५०-६० से अधिक समझ नहीं

१. राग-कल्पद्रुम, भाग १, पृ० ४१, संगीत नाटक एकेडमी लाइब्रेरी, देहली।

२. वही।

पड़ता। हमारे मातामह ने जैसा शब्द-कल्पद्रुम नामक अभिधान बनाया है, इन्होंने भी वैसे ही राग-कल्पद्रुम नाम पर एक प्रकाण्ड संगीत ग्रंथ का संकलन किया है। पृथ्वीराज रायसे की बात सवने सुनी होगी। इस समय एक मात्र यही कवि चन्द का वह 'रायसा' उपयुक्त रूप से गा सकते हैं। इत्यादि।

जब हमने उन महात्मा को देखा, तब वह बहुमूल्य जरीन् कुरता, चपकन, चोगा और टोपी पहने हुए थे। उनकी यह वेपभूषा देख हम उन्हें कोई श्रेष्ठ ग्रन्थकार या गायक समझ न सके। हमने सोचा, कोई अमीर या राजा-महाराजा होंगे। वसु महाशय से उनका प्रकृत परिचय पा हम विस्मय विमुख हो गए। कवि चन्द का नाम तो सुना था, किन्तु उनका गान कभी कान न पड़ा था। हमने बहुत डरते डरते गुरुस्थानीय वसु महाशय से वही गान सुनने का आग्रह प्रकाश किया और राग सागर ने हंसते हंसते बालक का मन रख दिया। उन्होंने कवि चन्द का गाना सुनाने के लिए पहले अपना परिधृत परिच्छद समस्त खोल-खाल लंगोटा पहना, पीछे वीर-रसात्मक कवि चन्द का एक पद गाया।^१ इसके पश्चात् नगेन्द्रनाथ वसु कहते हैं कि 'सिर्फ उसी दिन इन महापुरुष से हमारी मुलाकात हुई थी। उसके थोड़े दिन बाद सुन पड़ा, राग सागर इह जगत से उठ गए। इस बात को गुजरे कोई २८ वर्ष बीते होंगे।'^२

उपर्युक्त कथन के आधार पर कृष्णानंद जी सन् १८८४ ई० में ६० वर्ष के थे, अर्थात् सन् १७९४ ई० अथवा सं० १८५१ उनका जन्मकाल हुआ। अंतिम पंक्ति के आधार पर २८ वर्ष उनकी मृत्यु को हुए थे तथा ३२ वर्ष पूर्व की यह घटना वर्णित है। इस प्रकार वसु जी से मिलने के चार वर्ष पश्चात् 'रागसागर' की मृत्यु हुई, अतः मृत्यु काल सन् १८८८ ई० अथवा १८८९ ई० हुआ।

मिश्रबन्धु-विनोद के तृतीय भाग में कृष्णानंद व्यास देव का उल्लेख हुआ है, जो उदयपुर महाराणा के संगीतज्ञ थे। ग्रियर्सन ने इनके एक मित्र का उल्लेख किया है,^३ जिनका नाम डा० राजेन्द्रलाल मित्र था, जो इनकी बाल्यावस्था में इनके व्यक्तिगत रूप से परिचित हुए थे। डा० राजेन्द्रलाल ने ग्रियर्सन को राग-कल्पद्रुम के विषय में लिखा था कि—

'ग्रन्थ तीन भागों में था। मुझे स्मरण है कि लेखक ने मुझ से कहा था कि मैं ग्रंथ को सात भागों में पूर्ण करूँगा, जैसा कि रघुनाथ देव का शब्द-कल्पद्रुम सात भागों में है, परंतु मैं नहीं समझता कि उनके पास एतदर्थ पर्याप्त सामग्री थी। वह अपने साथ हस्तलेखों का विशाल गट्टर लिए हुए चला करते थे, लेकिन उनकी परीक्षा का मुझे कभी अवकाश

१. राग-कल्पद्रुम, द्वितीय भाग, संपादक नगेन्द्रनाथ वसु का कथन, पृ० १, लखनऊ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी; संगीत नाटक एकेडमी लाइब्रेरी, देहली।
२. राग-कल्पद्रुम, द्वितीय भाग, संपादक नगेन्द्रनाथ वसु का कथन, पृ० १, लखनऊ विश्व-विद्यालय लाइब्रेरी; संगीत नाटक एकेडमी लाइब्रेरी, देहली।
३. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, पृ० २७१।

नहीं मिला। मैं उस समय उनका महत्त्व जानने के लिए बहुत वच्चा था। ग्रंथकार ब्राह्मण था और उसका बहुत बड़ा दावा था कि वह तीन आक्टेवों (सप्तकों) से गा सकता था, जब कि सामान्यतया मानव स्वर की परिधि केवल ढाई 'आक्टेव' की है। उसका दावा यह भी था कि वह सभी राग रागिनियों को शुद्ध रूप में, बिना एक दूसरे को मिलाए हुए, गा सकता था। लेकिन मैंने कभी भी संगीत का ज्ञान नहीं प्राप्त किया, लड़कपन में इस संबंध में कभी चिंता ही नहीं की, अतः इस व्यक्ति के दावों का कोई प्रमाण मैं नहीं पा सका। वह सदैव गाया करते थे, पर वे पेशेवर गायक नहीं थे अर्थात् वह पारिश्रमिक पर कहीं नहीं गाते थे। वह नगर के धनी लोगों से प्रायः उपहार पाया करते थे, पर कभी भी गाने के बदले में मजदूरी या पारिश्रमिक नहीं लेते थे।^१

रचनाएँ

कृष्णानंद व्यास देव की केवल एक ही रचना 'राग-कल्पद्रुम' प्राप्त होती है, जो अपने बृहदाकार के कारण अनेक रचनाओं के समान है। इस ग्रंथ में देशी तथा विदेशी पैतालीस भाषाओं के तत्कालीन प्रचलित गानों का संग्रह है। कवि ने बीस-वाईस वर्ष तक समस्त भारत का भ्रमण करके इन गीतों का संग्रह किया था।

इनके ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' की सूचना तथा प्रथम अंश 'रंगीन राग मजमूआ' के नाम से सन् १८४२ ई० अर्थात् सं० १८६६ में प्रकाशित हुआ था। सन् १८४६ ई० को उनके ग्रंथ का अंतिम खंड निकला था। 'राग-कल्पद्रुम' प्रथम भाग का प्रकाशन मुशिदाबाद लाल गोले के राजा राव श्री योगींद्र नारायण राय बहादुर के व्यय से बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता के द्वारा सं० १९०१ में हुआ। इसका सम्पादन श्री नगेन्द्रनाथ वसु, प्राच्यविद्या-महार्णव ने किया था। यह ग्रंथ चार खंडों में संपूर्ण हुआ। तृतीय भाग बंगला गानों का संग्रह है। चतुर्थ खंड अप्राप्त है। इनके सात सौ चवालीस पृष्ठ अप्रकाशित रूप में इम्पीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता में हैं।

राग-कल्पद्रुम में स्वयं 'राग-सागर' रचित गान भी हैं, जो 'कृष्णानंद' की छाप से संयुक्त हैं। उदाहरणार्थ—

‘समझ गारी देरे कन्हैया रे मानो मोरी बल मैया
गारी देवे जिह्वा बिगारै ऐसी चतुर ब्रजनारी दैया।
हों तो तिहारी लाज करत हों और करो तेरी चाह गुसैया।
हों यमुना जल भरन जात थी बहियां पकर भक्तभोरी गवैया।
राधा माधव हीरी खेलैं चिरंजीवो यह जोरी कन्हैया।
हा हा करत हों पदियां परत हों मानो विनती दधि के चखैया
कृष्णानंद आनंद करो तुम श्री गोकुल के बसैया।’^२

१. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, पृ० २७१।

२. राग-कल्पद्रुम, कृष्णानंद व्यास देव, भाग २, प० ३३०।

यह ग्रंथ कवि के संगीत-ज्ञान तथा कवित्व शक्ति दोनों ही से परिचित कराता है। तत्कालीन प्रसिद्ध संगीतज्ञ तथा कवियों के नाम तथा कृतियों से परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

नागरीदास

‘नागरीदास’ नाम के कई कवि हिंदी साहित्य-जगत में प्रवेश कर चुके हैं। प्रस्तुत प्रबंध में उल्लिखित कवि नागरीदास का नाम ‘सावंतसिंह’ था। यह कृष्ण गाढ़ा के राजा थे। इनका जन्म संवत् १७५६ में हुआ था। ‘संवत् १८०४ में ये दिल्ली के शाही दरबार में थे। इसी बीच में इनके पिता महाराज राजसिंह का देहान्त हुआ। बादशाह अहमदशाह ने इन्हें दिल्ली में ही कृष्णगढ़ राज्य का उत्तराधिकार दिया, पर जब ये कृष्णगढ़ पहुंचे, तब राज्य पर अपने भाई बहादुरसिंह का अधिकार पाया, जो जोधपुर की सहायता से सिंहासन पर अधिकार कर बैठे थे। यह ब्रज की ओर लौट आए और मरहटों से सहायता लेकर इन्होंने अपने राज्य पर अधिकार किया, पर इस गृह कलह से इन्हें कुछ ऐसी विरक्ति हो गई कि ये सब छोड़ छाड़कर वृन्दावन चले गए।^१

विरक्त होकर स्वयं इन्होंने कहा है—

‘जहां कलह तहं सुख नहीं, कलह सुखन को मूल
सवै कलह इक राज में राज कलह को मूल।’

आत्म-विश्वास का अभाव होने के कारण एक स्थान पर कहते हैं—

‘मैं अपने मन मूढ़ तैं डरत डरत हौं हाय
वृन्दावन की ओर तैं मति कवहुं फिरि जाय।’^२

वृन्दावन में सखी-भाव से कृष्ण की भक्ति करते थे। इनके साथ इनकी उपपत्नी ‘बनी ठनी’ भी रहती थी, जो स्वयं कविता रचती थीं और संभवतः नागरीदास को काव्य-प्रेरणा देती थीं।^३ इनका कविता काल सं० १७८० से सं० १८१६ तक माना जा सकता है।^४

रचनाएँ

इनके सत्तर ग्रंथ^५ ‘नागर-समुच्चय’ नामक पुस्तक में संकलित हैं, जिसका संपादन राधा कृष्ण दास ने किया है तथा ज्ञान सागर प्रेस ने इसको प्रकाशित किया है। ये पुस्तकें वास्तव

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल, बारहवाँ संस्करण, पृ० ३१६।
२. वही।
३. हिंदी साहित्य, डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा संपादित, पृ० ३६३।
४. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, बारहवाँ संस्करण, पृ० ३१६।
५. त्रिगार-सार, गोपी प्रेम प्रकाश, पद प्रसंगमाला, ब्रजवंकुठुला, ब्रज सागर, भोर लीला, प्रातरस मंजरी, बिहार चन्द्रिका, भोजनानंदाष्टक, जुगल रस माधुरी, फूलविलास, गोघन आगमन दोहन, आनन्दलग्नाष्टक, फाग विलास, श्रीधम-विहार, पावस पचीसी, गोपी

में कुछ पदों का संग्रह मात्र हैं। शीर्षक के नाम से एक भिन्न पुस्तक बन गई है। इन सभी संग्रहों में नागरीदास का कवित्व तथा संगीत-प्रियता का परिचय मिलता है। रास आदि के वर्णन में कहीं कहीं अत्यंत सूक्ष्म, चित्रोपम तथा सुन्दर वर्णन हुआ है। 'संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन' नामक अध्याय में इसका वर्णन किया गया है।

मानसिंह

महाराजा मानसिंह जोधपुर नरेश थे। इन्होंने सं० १८६० से सं० १९०० तक राज्य किया। राजा भीमसिंह के मरने पर इनके चचेरे भाई मानसिंह गद्दी पर बैठे। इनको जालंधरनाथ के वरदान से जोधपुर का राज्य मिला। ये बागीराम, गाडूराम, मनोहरदास उत्तमचंद और शंभूदत्त जोशी के आश्रयदाता थे। इनके पुत्र का नाम छत्रसिंह था। यह संगीत के बहुत प्रेमी थे और स्वयं गान विद्या में निपुण थे। इन्होंने बहुत से गीत बनाए। शास्त्रीय संगीत में भी इन्हें रुचि थी, इसीलिए इन्होंने राग वद गीतों की रचना की है।

रचनाएँ

इन्होंने 'रसरज' के नाम से कविता की है। इनकी बनाई हुई कई पुस्तकें प्राप्त हैं। इनके अठारह ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। १. रागां रो जीलो, २. विहारी सतसई टीका, ३. जलंधरनाथ जी रा चरित्र, ४. नाथ चरित्र, ५. श्रीनाथ जी, ६. राग सागर, ७. नाथ प्रशंसा, ८. कृष्ण विलास, ९. महाराज मानसिंह जी की वैशावली, १०. नाथ जी की वाणी, ११. नाथ कीर्तन, १२. नाथ महिमा, १३. नाथ पुराण, १४. नाथ संहिता, १५. रामविलास, १६. संयोग शृंगार का दोहा (देसी भाषा), १७. कवित्त सबैया दोहे, १८. सिद्ध गंग।^१ इसके अतिरिक्त इन्होंने ध्रुपद, धमार, टप्पा, ख्याल सभी प्रकार के फुटकर गीत भी लिखे।

बेन विलास, रासरस लता, नन रूप रस, शीत-सार, इश्कचलन, मजलिस मंडन, अरिल्लाष्टक, सदा की मांझ, वर्षाऋतु की मांझ, कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त, सांझी के कवित्त, रास के कवित्त, चांदनी के कवित्त, दिवारी के कवित्त, गोवर्धनधारन के कवित्त, हीरा के कवित्त, फाग गोकुलाष्टक, हिंडोरा के कवित्त, वर्षा के कवित्त, भक्तिमंतदीपिका, तीर्थानन्द, फागविहार, बालविनोद, वन विनोद, सुजाना-नंद, भक्तिसार, बेहदशा, बेराग्यबल्ली, रसिक रत्नावली, कविवेराग्य बल्लरी, अरिल्ल पचीसी, छूटक विधि, पारायण विधि प्रकाश, शिखनख, छूटक कवित्त, चचरियां, रेषता, मनोरथ मंजरी, रामचरित्रमाला, पद प्रबोधमाला, जुगलभक्ति विनोद, रसानुक्रम के दोहे, शरद मांझ, सांझी फूलविननसंवाद, बसंत वर्णन, रसानुक्रम के कवित्त, फाग खेलन, समेतानुक्रम के कवित्त, निकुंज विलास, गोविंद परचई, वन जन प्रशंसा, छूटक दोहा, उत्सव माला और पद मुक्तावली।

१. मिश्रबंधु विनोद, कवि संह्या नं० ११२५।

२. वही।

राजा होने के नाते इनके ग्रन्थों की प्राप्त प्रतियाँ बहुत सुंदर और स्पष्ट लिपि में लिखी हुई हैं ।^१

इनके गीतों के शब्दों में गंभीरता नहीं है । अधिकतर भाव तथा शैली दोनों की दृष्टि से चलते चंचल प्रवृत्ति के गाने हैं । 'ध्रुवपद' (गंभीर गान) के शब्द भी ठुमरी और ख्याल के समान चंचल हैं ।

'ध्रुवपद राग सारंग चौताला

मंजर फूले तैसें ही फूले फूल । अस्ताई

कलियाँ विकास पतवा दुहरी ले नीकें सोहत भूल ।

पल्लव मृदु तर सोहत डारन में सरसी सापा अंकुरे

नवीने मंजुल तैसी मूल ।

अैसे ब्रछवेली के कुंज में भूले रहे है दोउं भूल ।^२

'इन्होंने बहुत से छंदों में कविता की है और रचना में कृतकार्यता पाई है । इनकी भाषा मनोहर और सुकवियों की सी है ।'^३

गीतों की भाषा केवल ब्रज ही नहीं है वरन् मेवाड़ी, मारवाड़ी आदि भाषा के भी गीत हैं । इस पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है ।

'मानसिंह' नामक एक अन्य शृंगारी कवि का उल्लेख मिलता है, जिनकी दो रचनाएँ 'शृंगार वत्तीसी' और 'शृंगार लतिका' प्राप्त होती हैं,^४ परन्तु यह इन मानसिंह से भिन्न व्यक्ति हैं, क्योंकि यह अयोध्या के राजा थे और 'द्विजदेव' के नाम से रचना करते थे । संगीत-काव्य में इनका स्थान महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

जवान सिंह

जवान सिंह जी किशनगढ़ के महाराजा पृथ्वीसिंह के द्वितीय पुत्र थे ।^५ यह संगीत के अच्छे ज्ञाता तथा कवि थे । कृष्ण के मधुर रूप के प्रेमी थे । किशनगढ़ के राज परिवार में किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि इन्हें 'खुसराम' कवि ने पढ़ाया था ।^६ इनका राज्याभिषेक ३१ मार्च सन् १८२८ को हुआ । अंग्रेजी सरकार की ओर से कप्तान काव राज्याभिषेक का टीका लेकर उदयपुर गए थे । यह शिकार के शौकीन थे, पितृभक्त, लोकप्रिय, अपव्ययी तथा

१. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

२. मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

३. मिश्रबंधु-विनोद, संख्या नं ११२५ ।

४. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—देवीशरन रस्तोगी, पृ० १६३ ।

५. हिंदी साहित्य के इतिहास के अज्ञात आधार-कवि वृन्द के वंशज, (लेख) मुनि कांति सागर जी, सम्मेलन-पत्रिका, पौष-फाल्गुन, १८७९ शक ।

६. वही ।

विलासी थे ।^१

रचनाएँ

जवान सिंह कृत अधिक रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं। इन्होंने फुटकर कवित्त तथा पद-रचना की है। कृष्ण के मधुर रूप पर अन्य कृष्ण भक्तों के समान, विभिन्न समयों पर गाए जाने वाले राग वद्ध गीत का निर्माण किया है। गीतों के संग्रह 'रस-तरंग'^२ तथा 'गीत-संग्रह'^३ के नाम से प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त जयलाल कृत 'जत्वय शहनशाह इश्क' में कुछ अंश की टीका की है।^४ इन्होंने 'ब्रजराज' तथा 'नगधर' दोनों नाम से रचना की है। कृष्ण के जिस नाम तथा स्वरूप में भक्त को अत्यधिक आनंद प्राप्त होता था, उसी नाम को अपना 'उपनाम' बना लेने का उस समय प्रचार था। प्रताप सिंह का 'ब्रजनिधि', 'मानसिंह का 'रत्नराज' सावंतसिंह का 'नागरीदास' इसी प्रकार के नाम हैं। जवान सिंह का 'ब्रजराज' नाम इसी प्रकार का है तथा 'नगधर' नाम अपना कविता का नाम रखा जान पड़ता है। 'ब्रजराज' के नाम से केवल एक दो पद मिलते हैं, अन्य सभी में 'नगधर' अथवा 'नगधरदास' मिलता है। 'रस-तरंग' के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कहे गए पद में 'ब्रजनाथ' नाम है।

'श्री वल्लभ उदार जगदुच्चार करुनानिधान वर गाइयें ।

श्री विट्ठल नाथ अनाथ नाथ ब्रजनाथ अवतार वर गाइयें ।'^५

अन्य सभी पदों में 'नगधर' नाम की छाप है।

'नगधर नेह निवाहक प्यारो मोहि हित सरसावन है ।'^६

+ + +

'नगधर करी मुहागिनी सुर गहरें मति बोल ।

तांन विसारें ग्रह कथा करी विरह की रोल ।'^७

+ + +

'नगधर वसन मुसिकाय नये जब ब्रज जन सब हरष भई है ।'^८

+ + +

१. राजस्थान के घरानों द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाएँ, राजकुमारी शिवपुरी, प्रथम संस्करण, पृ० ५१ ।
२. मुनि काँति सागर संग्रह, उदयपुर ।
३. पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
४. हिंदी साहित्य के इतिहास के अज्ञात आधार-कवि वृन्द के वंशज, (लेख) मुनि काँति सागर जी, सम्मेलन-पत्रिका, पौष फाल्गुन, १८७८ शक ।
५. मुनि काँति सागर संग्रह, उदयपुर ।
६. गीत-संग्रह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
७. वही ।
८. वही ।

‘नगधर प्रभु को जोरी यह सुन्दर हम राधे सी निधि पाई है ।’
सुश्री राजकुमारी शिवपुरी ने एक कवि ‘रूप सिंह’ का वर्णन किया है, जो सन् १९४३ अर्थात् संवत् १९९९ में कृष्णगढ़ के राजा थे । इनका कविता का नाम ‘नगधर’ बताया है । उदाहरण स्वरूप दिए गए पदों से स्पष्ट है कि ‘रूपसिंह जी का ‘नगधर’ नाम ‘रूपसिंह’ के नाम के साथ आता है तथा जवानसिंह जी का केवल नगधर अथवा ‘नग दास’ नाम पदों में प्रयुक्त होता है । रूपसिंह के पदों में नाम इस प्रकार है—

‘रूप सिंह प्रभु नगधर नागर बस कीनें मोहन ।’

+

+

+

‘रूप सिंह प्रभु नगधर नागर मिलि मलार सुर गावत ।’^१

यहाँ 'नगधर नागर' कृष्ण का नाम विशेष है जो कवि ने अपने उपास्य को दिया है।

जवान सिंह जी के गीत-संग्रहों में सुन्दर मधुर शब्दावली तथा रागों में बंधे गीत हैं, जो कृष्ण के विभिन्न संस्कारों पर अथवा उत्सवों पर गाए जाने के योग्य हैं। सामूहिक गीतों का बड़ा सुंदर संकलन है। इनके उदाहरण अन्य अध्यायों में प्रस्तुत किए जा चुके हैं, अतः पुनरुक्ति-दोष के भय से यहां नहीं दिए जा रहे हैं।

उपरिलिखित कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों के द्वारा रचित कृतियाँ यद्यपि शृंगार-युगीन संगीत-काव्य की रूप-रेखा निश्चित करने में सहायक सिद्ध हुई हैं, तथापि काव्योत्कृष्टता की दृष्टि से उनका स्थान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, अतः ऐसे कवियों की जीवनी पर यहाँ प्रकाश नहीं डाला गया है।

१, रस-तरंग, मनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

३. राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाएँ—राजकुमारी शिवपुरी,

पृ० १५० ।

३. वही ।

धैवत

शृंगार युगीन संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन

संगीत-काव्य एक ओर हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि करता है, दूसरी ओर संगीत के सिद्धान्तों का निरूपण करता है। यहां इस काव्य में प्रतिपादित संगीत संबंधी सिद्धांतों पर संक्षेप में दृष्टिपात किया जा रहा है।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य में संगीत-शास्त्र के सिद्धांतों को खोजने के पूर्व, संगीत सम्बन्धी तत्कालीन स्थिति से परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा। यह वह समय था, जब प्राचीन सिद्धांतों पर आधारित गायकी समाप्त प्रायः थी। मुगल राजाओं के आधिपत्य के पश्चात् भारतीय संगीत, विदेशी संगीत से बहुत अधिक प्रभावित हो चुका था। सिद्धांतों को गायक बहुत अंशों में भुला चुके थे। भारतीय संगीत के दो भाग हो चुके थे। उत्तर भारतीय संगीत और कर्नाटक संगीत। कर्नाटक संगीत में प्राचीन सिद्धांत अपने वास्तविक रूप में प्राप्त भी होते थे, परंतु उत्तर भारतीय संगीत में विदेशी (ईरानी, अरबी, फारसी) प्रभाव आ जाने के कारण उसका स्वरूप मूल से बहुत दूर जा चुका था। फिर भी यह स्पष्ट किया जा चुका है कि शास्त्रीय ग्रंथों की रचना में कमी नहीं थी, केवल उनका क्रियात्मक रूप भिन्न हो गया था। ऐसी दशा में इस समय के रचित ग्रंथों में प्राचीन ग्रंथों से भिन्न सिद्धांतों का आ जाना नितान्त स्वाभाविक था। यहां हमें यही देखना है कि इन ग्रंथों में संगीत शास्त्र का स्वरूप कितना परंपरागत था और कितना मिश्रित रूप में प्राप्त होता है।

अधिकांशतः काव्य में वर्णित सिद्धांत संस्कृत ग्रंथों से लिए गये हैं, परन्तु अन्य कुछ ग्रंथों में मौलिकता भी पाई जाती है। इस दृष्टि से इन ग्रंथों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१—परंपरा पर आधारित ग्रन्थ

२—मौलिकता से युक्त ग्रन्थ

परम्परा पर आधारित ग्रंथों के भी दो विभाग हो सकते हैं—

१—शुद्ध परम्परावादी ग्रन्थ, इनमें संस्कृत ग्रन्थों के सिद्धांतों का यथा-रूप अनुवाद मिलता है।

२—मिश्रित परम्परावादी ग्रन्थ, इनमें विविध आचार्यों के मतों का मिश्रित रूप मिलता है, साथ ही लेखकों ने अपने विचारों का भी आरोपण बीच बीच में कर दिया है।

सर्वांग निरूपक ग्रंथों में परम्परा पर आधारित सिद्धांतों का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट

हो जाता है कि संगीत के स्वरूप में शास्त्रीय दृष्टि से अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था, किन्तु क्रियात्मक रूप में बाह्य परिस्थितियों के कारण पर्याप्त मात्रा में परिवर्तन प्राप्त होता है। अतएव शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण करने वाले कवि अथवा गायक संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन भी करते थे और उन सिद्धांतों से परिचित भी थे। अन्य गायक, सिद्धांतों से अपरिचित होने के कारण रागों के प्रचलित स्वरूप को ही सही मानते थे, अतएव श्रृंगार युग में संगीत का एक भिन्न रूप बन गया। यह बदला हुआ रूप निश्चय ही रचयिताओं के अज्ञान के कारण, मूल से बहुत दूर हट गया था और मौलिकता का अवकाश प्राप्त होने के कारण यही मौलिक ग्रंथों का निर्माण करने में सहायक हुआ। ऐसे ही ग्रंथों को हम मौलिक ग्रंथ कह सकते हैं।

परम्परावादी आधारित ग्रंथ

परंपरावादी आधारित ग्रंथों के कवि अथवा संगीतज्ञ भरत के नाट्य-शास्त्र से लेकर शाङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' तक से प्रभावित जान पड़ते हैं। उस्तत ने अपनी 'राग-माला' को भरत के ग्रंथ का उद्धरण देते हुए प्रारंभ किया है, यद्यपि यह उद्धरण संदिग्ध है, फिर भी इससे भरत मुनि का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है।

‘अथ भरत नाद ग्रंथ की साख ।

नाद ग्राम स्वरापदा विधि गुणावर्ग लया तालया

आलित्यागमकाश्च ताल रचना जोति कला मूर्छना

मुध्यायंग तुरंग राग मरणा देसी चसालंगणा ।

गीति स्यापि समस्त सुष्ट सुष ना स्थाना तरंपातुकं ।’

भरत के सिद्धांतों से अपरिचित होने के कारण बहुत कम कवियों ने उनका आश्रय लिया है, फिर भी अन्य आचार्यों ने अपने ग्रंथों में यत्र-तत्र उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। कहीं कहीं भरत मुनि से भी साम्य दिखाई पड़ता है।

श्री कृष्णानंद व्यास देव 'राग-सागर' ने 'राग कल्पद्रुम' में विभिन्न ग्रन्थों से मान्य सिद्धांतों की स्थापना करके अपनी मान्यताएँ रखी हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१. संगीत-दर्पण^३ का उद्धरण—

‘प्रणम्य शिरसा देवा पितामह महेश्वरी

संगीत शास्त्र सकल सार भागौः त्रयोच्यते ।

भरतादि मतं सर्वमालोड्याति प्रयत्नतः

श्रीमता हरि भट्टेन सज्जनानन्द हेतुना

प्रचुराह्लाद संगीत सारोद्धारोपिधीयते ।’

१. यह अंश संदिग्ध है। भरत के नाट्य-शास्त्र में ऐसा कोई अंश नहीं है। 'संगीत-रत्नाकर' का ही जान पड़ता है।

२. चतुर दामोदर कृत ।

२. श्रीर फिर नारद-संहिता^१ से उद्धृत 'नाद' की परिभाषा दी है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद

अथ नादोत्पत्ति

अथ नादस्य चोत्पत्ति वक्ष्ये शास्त्र विवेकतः
धम्मार्थं काम मोक्षाणमिदमेवेकसाधनम् ।^२

३. हरिवल्लभ का संगीत दर्पण यद्यपि ब्रज भाषा में लिखा है, परन्तु सिद्धान्त वही है ।

'जब निपाद के श्रुतिनि को आनि होत विश्राम
ताको पंडित कहत हैं होत काकली नाम ।
द्वै श्रुति मध्यम की गहै जब गंधार रस आई
अंतर तब ताको कहत पंडित चित के चाई ।'

भरत के अनुसार—

तत्र द्विश्रुति प्रकर्षणान्निपादवात् काकली संज्ञोनिपादः,
न पडजः । द्वाभ्यामन्तरस्वरत्वात् । साधारणं प्रतिपद्यते ।

एवं गान्धारो अर्धन्तर स्वरसंज्ञो न मध्यतः । तयोरन्तरस्वरत्वात् ।^३

यद्यपि ढुंडने पर लगभग सभी ग्रंथों के सिद्धान्त इन पुस्तकों में प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु अधिकतर कवियों ने शाङ्क गदेव के संगीत-रत्नाकर का ही आश्रय लिया है । कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है ।

सर्वप्रथम सात अध्यायों का विभाजन ही 'रत्नाकर' के अनुसार हुआ है । हरिवल्लभ, उस्तत, राधाकृष्ण, महाराणा प्रतापसिंह जी देव ने क्रमशः स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाधाध्याय, नृत्याध्याय में ग्रंथों को विभाजित किया है ।

नाद का भेद बताते हुए हरिवल्लभ 'संगीत-दर्पण' में कहते हैं—

'ब्रह्मरंध्र में प्राण को प्रेरितु पावक आई ।
पावक प्रेरे तब जु वह उरध पंथ को आई । २९।
अति सूक्ष्म धुन करतु सो निकट नाद के होइ ।
बहुस्यो धुनि सूक्ष्म करै हिऐं आई कै सोइ । ३०।
करे पुष्टि धुन कंठ में सीसहि मध्विम भाइ ।
कुत्रिम धुनि पुनि वदन में तब ही प्रकटत पाइ । ३१।'

'संगीत रत्नाकर' में भी लगभग यही शब्द हैं, केवल भाषा का अंतर है ।

१. नारदसंहिता—ऋषिवर नारद कृत, भरत का संगीत-सिद्धान्त, आचार्य कै. चं. देव ब्रह्मरूपति ।

२. भरत नाट्यशास्त्र बम्बई संस्करण, अध्याय २८ पृ० ४३७ भरत का संगीत-सिद्धान्त—
आचार्य कैलास चन्द्र देव बृहस्पति, पृ० ७ पर उद्धृत ।

ब्रह्मग्रंथि स्थितः सो थ ब्रमाद्रध्वपथेचरन्
 नाभिहृतकण्ठमूर्धस्येष्वाविभविष्यति ध्वनिम् ।
 नादो तिसूक्ष्मः सूक्ष्मश्च पुष्टो पुष्टश्च कृत्रिमः
 इति पंचामिधा घत्ते पंचस्थानस्थितः क्रमात् ।^१

इसी प्रकार 'राग-रत्नाकर' में कवि राधाकृष्ण ने मन्द्र, मध्य और तार तीन प्रकार की नादों का स्थान क्रमशः हृदय, कंठ और मस्तिष्क से बताया है ।

'मन्द्र हृदय तै जानिये, मध्य कंठ ते होय ।
 उपजै तार कपाल तै भेद कहे कवि लोय ।'

★ ★ ★

व्यवहारे त्वसौ त्रेधा हृदि मन्द्रो मिधीयते
 कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः ।^२

इसी प्रकार से अन्य सिद्धांतों में श्रुतिभेद, राग वर्णन, ताल वर्णन आदि 'संगीत-रत्नाकर' से अक्षरशः मिलते हैं ।

संगीत-ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ आधार इन संगीत रचनाओं के ऐसे हैं, जो केवल सुने हुए रूप में सुरक्षित रखे गए जान पड़ते हैं । इनकी प्रामाणिकता अलग से संगीत-विषयक खोज का कार्य है । यहीं पर उनका निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा । नाथ और सिद्ध साहित्य में संगीत प्रचलित था । गोरखनाथ स्वयं संगीत के अच्छे ज्ञाता थे, ऐसा इन्हीं संगीत-काव्यों से पता चलता है । अनेक स्थलों पर राग और रागिनियों के विषय में कवि 'गोरख' का नाम लेता है अथवा उन्हें 'गोरख' रचित बतलाता है । एक स्थान पर 'श्री' राग का विचार करते समय सत्रह मिश्रित रागिनियों का वर्णन करके कवि अंत में कहता है :—

'ए रागणी गोरपनाथ कृत है'^३

इसके पश्चात्,

'केदार सुष इमिन तीनु मिले तो हमीर कहिए ।

ए रागनी गोरपनाथ बनावी छे ।'^४

मौलिक ग्रंथों में दो विशेषताएँ प्राप्त होती हैं । प्रथमतः प्राचीन सिद्धांतों में ही नवीनता का प्रतिपादन है । और दूसरे, अन्य रागों और रागिनियों के स्वरूप और लक्षणों में नवीनता का समावेश कर दिया गया है ।

१. "Sangit Ratnakar", Sharangdeva, edited by Pandit S. Subramanya Sastri, Vol. I, Adhyaya III, p. 62.

२. "Sangit Ratnakar", Sharangdeva, edited by Pandit S. Subramanya Sastri, Vol. I, Adhyaya III, p. ...

३. राग सागर—अज्ञात कवि, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

४. वही ।

उदाहरण के लिए, उस्तत कवि ने मन्द्र, मध्य और तार नादों का प्रसिद्ध स्थान, कण्ठ और मस्तिष्क न मानकर नाभि, हृदय और कण्ठ से प्रसृत क्रमशः घोर, मन्द्र और तार ध्वनियाँ बताई हैं।^१

अधिकतर संगीत के सात स्वरों (पङ्कज, रिषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) का मूल विभिन्न पशु पक्षियों में, क्रमशः केकी, चातक, छांग, कौंच, कोकिल, दादुर और गज में माना गया है,^२ परन्तु उस्तत ने इन स्वरों का मूल रागों में माना है। पङ्कज का स्थान भैरव में, रिषभ का माल-कोष में, गांधार का श्री में, पंचम का कोकिल में, धैवत का दीपक में, निषाद का मेघ में और मध्यम का सभी रागों में बताया है।^३

उस्तत के इस मौलिक कथन की व्याख्या आवश्यक है। यों तो पक्षियों से स्वरों का सम्बन्ध जोड़ना भी कवियों ने परम्परा से ही सीखा है, परन्तु यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो इसका कारण यही जान पड़ता है कि प्रकृति में रहने के कारण जैसे मनुष्य ने प्रत्येक वस्तु का मूल प्रकृति में ही खोजा, ऐसे ही स्वरों का मूल भी पशु पक्षियों में बताया।

श्री एस० एन० रतनजंकर ने पक्षियों के स्वरों से संगीत के स्वरों का साम्य दिखाने का कारण यह बताया है कि प्रारम्भ में संगीत का प्रत्येक स्वर निदिष्ट स्थान पर माना जाता था। कहीं भी पङ्कज और रिषभ का प्रयोग नहीं होना चाहिए। इन स्वरों की पारस्परिक दूरी बताने के लिए संगीत शास्त्रियों ने पक्षियों के स्वरों का आश्रय लिया।^४

ऐसा प्रचलन रहा है कि जब भी मनुष्य को अपने भावों को समझाने की आवश्यकता पड़ी है तो इसने जड़ के लिए चेतन से और चेतन के लिए जड़ से समानता रखने वाले उपमानों को ढूँढ़ कर स्पष्टीकरण करने की चेष्टा की है। अतः पहली वीणा पर स्वरों को निर्धारित करने के लिए उसने पक्षियों के स्वरों से साम्य रखते हुए स्वरों का नामकरण कर

१. 'घोर नाभि मन्द्र हरिदै कंठ वसत है तार।'—रागमाला उस्तत, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
२. 'पङ्कज सुरहि केकी कहै रिषभहि चातक आनि।
छांग कहै गंधार को, मध्यम कौंच बषानि।
पंचम सुर कोकिल कहै, धैवत दादुर भाई।
मातो गजु बोले सदा पुनि निषाद या दाइ।'—अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
३. रागमाला—उस्तत, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
४. "The ancient musicologists had a standard key note and definite degrees of pitch in mind when they made this statement. The calls of the peacock, the ox, the goat etc. referred to as representing the successive degrees of pitch of the Indian musical scale would also lend support to this idea." Aspects of Indian Music published by the Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi-8.

दिया, अतः गांभीर्य और मधुरध्वनि के कारण षड्ज, कैंकी के मृदुल परन्तु गंभीर स्वर के मूल में खो गया। और इसी प्रकार प्रत्येक स्वर को अपना समान पक्षि स्वर उद्गम के रूप में प्राप्त हो गया।

तीसरा कारण शृंगार युगीन काल की विशेषता ज्ञात प्रदर्शन का मोह, इन कवियों में भी पाया जाता है। तभी स्वरों का न केवल पक्षियों से सम्बन्ध जोड़ा गया है, वरन् उसका विस्तृत परिचय देने में वंश कुल आदि का वर्णन भी किया गया है।

राधाकृष्ण के 'राग-रत्नाकर' में एक एक स्वर की विस्तृत व्याख्या है।

'षड्ज मोर सुर जानिए जन्म सु जंबू द्वीप।

विप्र जाति अरु देव कुल ब्रह्मा देव समीप।

श्वेत वस्त्र कर फरस लै बैठ्यो बैल श्रुति च्यारि।

तीव्रा बहुवि कुमुदति मंदा सिद्धि निहारि।'

इसी प्रकार रिषभ, ऋषि कुल का, सुरप्लक्ष द्वीप का निवासी है। इसका स्वर चातक है। क्षत्रिय वर्ण का है। अश्व पर आरुढ़ है। दयावती, रंजनी, रक्तिका, इसकी श्रुतियाँ हैं और सूर्य इसका देवता है।

उत्तत ने पक्षियों में उद्गम न मानकर स्वरों का मूल रागों में माना है, इसका कारण विशेषतः उनकी वैज्ञानिक शक्ति प्रतीत होता है। प्रसिद्ध छः रागों में प्रत्येक स्वर की उत्पत्ति दिखाकर मध्यम को सब में बता दिया है। यद्यपि इस दृष्टि से उत्तत ने मूल छः राग बताए, श्री, मालकोष, भैरव, दीपक, मेघ, और वसंत।^१ ये भी सर्वमान्य नहीं हैं। मूल छः रागों के विषय में कवियों में मत वैभिन्न रहा है। कल्याण मिश्र कृत रागमाला में अन्य छः रागों का उल्लेख है।^२ हरिवल्लभ तथा राधाकृष्ण ने भी छः मूल रागों में किंचित मतान्तर दिखाया है।^३ इसी प्रकार और भी स्थल प्राप्त होते हैं जहाँ संगीत के सिद्धान्तों में

१. यहाँ पर कवि ने वसंत के लिए कोकिल का प्रयोग किया है। कोकिल से वसंत का सम्बन्ध होने के कारण और कोकिल का प्रसिद्ध स्वर पंचम होने के कारण, ऐसी भल हो गई जान पड़ती है।

२. भैरव शुद्ध हिंडोल वर मालवकोष अनूप।

श्री राग मेघ मल्हार करि नट नारायण भूप।—कल्याणमिश्र कृत रागमाला।

३. 'एक समै पूछन लगी पारवती सुनि देव

राग रागिनी को कहौ मों सों कुछु वक भैव।

तव सिव लगे कहन कुछु वक मुष मुसकाइ

सुनि श्री राग वसंत पुनि भैरव को जुग नाइ।

पंचम बहुर्यो जानिए मेघ राग रस ग्रैहु।

नट नारायण छऔ पुरुषा कृति सुनि लेहु।'

—हरिवल्लभ कृत संगीत दर्पण।

भैरव प्रथम गिनाय मालकोश हिंडोल

कहि दीपक श्री सुष दाय मेघ राग जानहु बहुरि।

—राधाकृष्णकृत राग रत्नाकर।

परिवर्तन कर दिया गया है ।

मौलिकता अधिकतर राग और रागिनियों के स्वरूप, लक्षण और परिवार में पाई जाती है, जो तत्कालीन रुचि की परिचायक है ।

राग रागिनियों के विभाजन में अधिकतर हनुमन्मत का आधार लिया गया है । रागों के विभाजन के सम्बन्ध में चतुर दामोदर कृत 'संगीत-दर्पण' के अनुसार तीन मत प्रचलित हैं ।^१ सोमेश्वर मत, हनुमन्मत और रागार्णव मत । सोमेश्वर मत के अनुसार छः पुरुष राग माने गए हैं । श्री, वसंत, भैरव, पंचम, मेघ और नटनारायण । इनमें से प्रथम पाँच की उत्पत्ति शिवजी के पाँच मुखों से और छठे राग की उत्पत्ति पार्वती जी के मुख से हुई । श्री राग की शिवजी के सद्योजात मुख से, वसंत की वामदेव मुख से, भैरव की अघोर मुख से, पंचम की तत्पुरुष मुख से, मेघ की ईशान मुख से और नट नारायण की पार्वती जी के मुख से उत्पत्ति मानी गई ।^२ इनमें प्रत्येक की छः रागिनियाँ मानी गई हैं । श्री राग की मालवी, त्रिवेणी, गौड़ी, केदारी, मधुमाधवी, पहाड़ी, वसंत की देशी, देवगिरी, वराटी, तोड़िका, ललिता, हिंदोली, भैरव की भैरवी, गुर्जरी, रेवा, गुणकरी, बंगाली, बहुली, पंचम की विभास, भूपाली, कर्नाटी, बडहंसा, मालवश्री, पटमंजरी, मेघराग की मल्लारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी (कैशिकी), गांधारी, हरिशृंगारा और नटनारायण की कामोदी, कल्याणी, आमेरा नाटिका, सालंगनाटी तथा हर्षारा रागिनियाँ हैं ।

हनुमन्मत के अनुसार छः पुरुष राग भैरव, कौशिक (कैशिक) हिंदोल, दीपक, श्री मेघ है, जिनकी रागिनियाँ सोमेश्वर मत से भिन्न हैं । भैरव की पाँच रागिनियाँ मध्यमादि, भैरवी, बंगाली, वराटिका और सेंबवी, कौशिक की तोड़ी, खंभावती, गौड़ी, गुणकरी और ककुमा, हिंदोल की वेलावली, रामकरी, देशाख्या, पटमंजरी और ललिता, दीपक की केदारी, कानडा, देशी, कामोदी और नाटिका, श्री राग की वसंती, मालती (मालवी) मालश्री, घनाश्री और असावेरी, मेघ राग की महूलारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी और टक्क पाँच-पाँच रागिनियाँ हैं ।

रागाण्वि मत के अनुसार भैरव, पंचम, नाट, मल्हार, गौड-मालव और देशाख्य छः पुरुष राग हैं । इनकी रागिनियों की निश्चित संख्या नहीं है । किसी की चार रागिनियाँ तथा किसी की पाँच हैं । भैरव की पाँच रागिनियाँ बंगाली, गुणकरी, मध्यमादी, वसंता और घनाश्री, पंचम की पाँच रागिनियाँ, ललिता, गुर्जरी, देशी, वराटी और रामकृति, नाट

१. संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, पृ० १८५ ।

२. इस सम्बन्ध में भी कहीं कहीं कवि के अभ्यास और अध्ययन के परिणाम स्वरूप मौलिकता है । जैसे श्री पं पद्मनन्दन मुनि ने अपनी रागमाला में हनुमत् मत के अनुसार राग विभाजन करने पर भी उत्पत्ति शरीर के ही विभिन्न भागों से बताई है—

‘भैरव उत्पन्न वक्तव्यं कंठे मालव कोसकं ।

हीये हीडोलत्पन्न दीपकं चक्षुमेव च

नाभ्यंत श्री राग गुह्ये मेघ समाश्रितः ।’

की पाँच रागिनियाँ नट नारायण, पूर्वगांधारसालग, केदार और कर्णाट, मल्हार की चार रागिनियाँ, मेघ महलारिका, मालवकौशिका, पटमंजरी, असावेरी, गौड़मालव की पाँच रागिनियाँ, हिंदोल, त्रवणा, आंधारी, गौड़ी और पडहंसिका, देशाख्य राग की पाँच रागिनियाँ भूपाली, कुडायी, कामोदी, नाटिका और वेलावली हैं।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य में अधिकतर हनुमत् मत के अनुसार विभाजन हुआ है,^१ परन्तु थोड़ा बहुत अन्तर फिर भी मिल ही जाता है।^२ ग्रन्थों में बाद के लिखे गए ग्रन्थों के अनुसार भिन्नता भी मिलती है। पुंडरीक विठ्ठल कृत 'नर्तन-निर्णय' में छः पुरुष राग, तीस स्त्री रागिनियाँ और तीस पुत्र राग बताए हैं। इससे प्रभावित कुछ कवियों ने पुत्र और पुत्री वर्णन भी किया है।^३ सागर कवि की रागमाला,^४ हरीचंद की रागमाला,^५ प्रतापसिंह देव का 'राधा गोविन्द संगीत-सार',^६ श्री पद्मनन्दन मुनि की रागमाला^७ आदि कुछ ग्रन्थों में 'नर्तन निर्णय' के प्रभाव के कारण पुत्र वर्णन भी प्राप्त होता है। कहीं कहीं नवीनता का प्रेमी कवि इससे भी आगे बढ़ गया है और छः रागों के आठ पुत्रों और पाँच पुत्रियों का परिवार बताया है। भैरव की पाँच पुत्रियाँ भैरवी, विलावली, बंगाली, अयटनीकी, वुनगी; आठ पुत्र बंगाल, पंचम,, मध्य, हरप, देसाप, ललित, विलावल और माधो बताए हैं।^८

कुछ कवियों ने इससे भी अधिक परिवार का विस्तार किया है और मार्या के अतिरिक्त पुत्र और पुत्रवधू तो बताई ही हैं, रागों की सखियों का भी वर्णन किया है।^९ जैसे पूर्ण मिश्र के नादोदधि में उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त श्री राग की सात सखियों का वर्णन है।

१. राधाकृष्ण का राग रत्नाकर, हरिवल्लभ का संगीत दर्पण, उस्तत की रागमाला, गिरधर मिश्र की रागमाला, हीयदुलास, गंगाराम कृत सभाभूषण।

२. कल्याण मिश्र ने 'रागमाला' में दीपक राग के स्थान पर नट नारायण माना है। रागिनियों के नामों में मौलिकता है। उदाहरणार्थ, भैरव की स्त्री—

'मारू सिधू भैरवी धनासरी बंगाल।

सुद्ध भैरवी नारी सब गावत गुन गोपाल।'

और प्रत्येक राग के पाँच पुत्र बताए हैं।

३. श्री पद्मनन्दन मुनि ने रागों और रागिनियों का विभाजन हनुमत् मत के अनुसार किया है, परन्तु प्रत्येक राग की पाँच रागिनियाँ और आठ-आठ पुत्र बताये हैं।

४. श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

५. वही।

६. श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, श्री मोती चंद जी खजांची, संग्रहालय, बीकानेर।

७. श्री मोती चंद जी खजांची संग्रहालय।

८. वास्तव में पुत्रियाँ स्त्रियों के स्थान पर ही ली गई हैं। यह वर्णन पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर में प्राप्त रागसागर (पु० सं० ८४७) में है। लेखक अज्ञात है।

९. संगीत नादोदधि—पूर्ण मिश्र, म्यूजियम, अलवर।

मालसिरी सपि हैं प्रथमा, अथ दूजिय जैतगिरी वपानी ।
 धन्यसिरि सवि लीजिये जानिये चौथि पथीतसिरी सुभ गनी ।
 फूलसिरी पंचई सुनि लीजै वीरसिरी छठई सपि मानो ।
 रूपसिरी सतई सब जानत मोहि मुनी समता मन मानौ ।

इससे भी आगे बढ़ कर श्री मन्मात्वीय वेनी राम ने अपनी राग माला में स्त्री, पुत्र और पुत्री दोनों बताए हैं। हिंदोल की पाँच कन्या, सात पुत्र हैं।^१ यह विभाजन कुछ सीमा तक स्वर-साम्य के आधार पर हुआ है, अतः वर्गीकरण रागों के लक्षणों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

संगीत शास्त्र के ग्रन्थ लिखते समय भी कवियों के समस्त रागों के स्वर सम्बन्धी लक्षणों की अपेक्षा उनका शृंगार और स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जाता था। इसका प्रमाण संगीत-काव्य में अधिकतर 'राग मालाओं' का लिखा जाना है।^२ दूसरी और तत्कालीन-शृंगारिक कलाप्रिय और विलासी रुचि के कारण रागों के नवीन, काव्यात्मक तथा चित्रोपम वर्णन किए गए। यह शृंगार वर्णन दामोदर पंडित के 'राग-दर्पण' से प्रभावित होकर लिखा हुआ जान पड़ता है।^३ अधिकतर इन रागों का रूप भी पारम्परिक ही है। भैरव सदैव शिव रूप में अर्थात् भस्म रमाए, जटाधारी, गंगा धारण करने वाले योगी के रूप में दिखाई देते हैं।^४ भैरवी अधिकतर भैरव (शिव) की पूजा में रत, पार्वती के रूप में वर्णित है।^५

१. प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग (यह प्रति खंडित है, फिर भी वही महत्वपूर्ण है।)

२. रागमालाओं में केवल शृंगार और स्वरूप का वर्णन होता है।

३. संगीत-दर्पण—दामोदर पंडित, प्रकाशक संगीत-कार्यालय, हाथरस।

४. सीस जटानि में गंग तरंग त्रलोचन चंद लिलाटहि ऊपर
 लाल विसाल फनी सिर की मनि जोति लसै कछु कुंडलि दूपर ।
 हर रूप किये कर सूल लिये हरिवल्लभ रीझि बजै डमरूथर ।
 भूषन नागनि के जनमें धरि भैरव राग विराजत भू पर ।
 संगीत दर्पण—हरिवल्लभ ।

भैरव रूप जटा जूट सिर नील तन भस्म वास तिलक रेख ।

मुद्रा श्रृंग त्रिसूल धर भैरव राग सुदेश ।

रागमाला—कल्याण मिश्र ।

पीत जटा जूट सिरि गंग उमंगत माल विसाल मयंक विराजै ।

लोचन तीन लसै दुष लोचन आनन कानन कुंडल राजै ।

अंग विभूति धरै अहि भूषन शूल लिए करडैख बाजै ।

रूप अनूप सदा शिव मूरति भैरव राग महाछवि छाजै ।

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण ।

५. गिरि कैलास भै विलास हास बनि बैठी फटिक चौकी पर गिरिजा सी जानी है ।

चंदमुखी चपला तैं चारु देह बुति दिपै कौल कुस मनि सिव अरचा उठानी है ।

मालव कौशिक कोमलांगी कलाओं में भी निपुण है और वीरता भी उसका गुण है।^१ राग हिंडोल काम-केलि में प्रवीण है। रमणियों के साथ झूला झूलता हुआ राग रंग करता है और कला प्रिय है।^२ दीपक राग भी अत्यन्त कामी, केलि-कलाओं में प्रवीण और सुसज्जित है।^३ श्री राग लाल वस्त्रों से शोभित, किशोरावस्था का एक राजकुमार है। बहुत अधिक

इं दीवर दलहू ते दीरघ हें देष दूग करि धरि तालवाल मृदु सुसक्यानी है ।
जिय करि प्रीति हरिवल्लभ यौ सुष जीति ऐसी रस रीति करि भैरवी बषानी है ।

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ ।

प्रात समय प्यारी उठि उठी स्वेत सारी भारी फेंली सुषचंद की उजारी जाति जागनी ।

गोरे भुजमूल सिव पूजि कै चढ़ाय फूल दोउ कर ताल बजावे प्रेम पागनी ।
आंगी उर लाल कंज लोचन विसाल बाल फटिक सिंहासन पै बैठी बड़भागनी ।
गायतु कैलास के विलास में हुलास भरी भैरवी बषानी यह भैरव की रागनी ।
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण ।

सरवर तट भय देव कौ मंडए फिटक अनूप ।
कुवलय संयुत कामिनी पूजा करत सरूप ।
पुनि वर्णन ता सुनौ गीत ताल कंसील ।
गौरी नाद लिहि लीन मन नाद भैरवां बाल ।

१. कंचन तें कमनीय कलेवर काम कलानि मैं कोविद मानौ ।
मातौ महारस वीरहि मैं नित राते रुचै वसनौ जग जानौ ।
बैरनि मारि कपाल की माल धरी बहु वीरनि हें सन मानौ ।
यौ हरि वल्लभ रूप सु मालव कौशिक राग बखानी ।
संगीत दर्पण, हरिवल्लभ ।

२. झूलत झूला झुलावति है रमनी कमनी सुष रूप लह्यो है ।
काम कुतूहल केलि करे अति कंचन कै रंग चौरु गह्यो है ।
लौनी लसे दुति देह की यो लषि गोत कपोत को लाजि रह्यो है ।
वीना लए कर मैं रस रीत सो वल्लभ रागु हिंडोल कह्यो है ।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ ।

३. केलि कला में प्रवीन महा अंग अंग अनंग प्रशंसि कियो है ।
भामिनि मौन अंधेरे गई रति कौ अति आनंद मानि लियो है ।
भूषन के मनि की उजियारी तहां प्रगट्यो रवि मानौ उयौ है ।
देखि तबें तिय कौ हरि वल्लभ दीपक कौ सकुचानौ हियौ है ।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ ।

सुन्दर है और काम-कला में निपुण है।^१ मेघ राग नील वर्ण का पीत वस्त्र धारण किए मन्द मन्द मुस्कराता रहता है। अत्यन्त छविवान, युवा और वर्षा का देने वाला है।^३ इसी प्रकार सभी रागिनियों का स्वरूप निश्चित है। राग और रागिनी होने के नाते 'राग' अर्थात् प्रेम का अंश और काम का तत्व प्रत्येक में मिलता है। सभी इतने सुन्दर हैं कि दर्शकों के हृदय में राग उत्पन्न कर सकें। शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों से युक्त केवल कुछ राग अपवाद स्वरूप हैं।

जैसे देशाष वीर रस से पूर्ण है,^३ केदारा योगी है, समाधि लगाए बैठा रहता है।^१ आसावरी का भी शृंगार योगिनी के समान है। सर्प शरीर में लपेटे, मलयागिरि में वास करने वाली है।^४ भूपाली प्रिय के वियोग में सखियों के मध्य बैठी है, शान्त रस में डूबी है (यद्यपि भूपाली को शांत-रस से युक्त कहना उचित नहीं, वह विप्रलम्भ शृंगार से भीगी हुई

१. 'वैस किसोर मनोहर मूरति मंनहू तं जनु को मन मोहं ।
केलि कला मे प्रवीण नवीन रसाल की मंजरि श्रौन मे सोहं ।
संवे सदा षड्जादिक सातौ अनंग जगं जित ही तित जोहं ।
लाल धरै पट भूपति सौ हरिवल्लभ राग सिरी सम को हं ।'
संगीत-दर्पण- हरिवल्लभ ।
२. 'नील सरोज लौ देह दिये कटि पै पट पीत विराजत है ।
अति उज्ज्वल चंद उज्यारिहूँ तें उधरैन महा छवि छाजत है ।
तन जोवन जोति लसै हरि वल्लभ मंद हंसं मुष साजतु है ।
जलु जाचतु चातक जाचक लौं है मेघ सु राग यौ गाजत है ।'
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ ।
३. अंग कपूर हितै कमनीय सरोजनि हूँ तें विराजे विलोचन ।
हरषे तन रोम छवयो रस वीर म धीर बड़ो कछु नेकु कोचन ।
वीरघ सोह लहै भुज दंड प्रचंड महा चित को अति रोचन ।
यो हरिवल्लभ राग देसाष सु मूरति मल्लिह की दुष मोचन ।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ ।
४. सोस जटा विच गंग पलक्कत भाल भलक्कत चंद उजारी ।
शुद्ध भयो तधि कुंदन रंग भुजंग लसै अति कारो ।
आसन जोग समाधि लगी दृग मूदि कै ध्यान धरे मन मारो ।
तापस रूप अनूप बन्यो सब के मन भावत राग केदारी ।
राग रत्नाकर, राधाकृष्ण ।
५. मलयागिरि के बन में वनिता हरिवल्लभ आनंद भार भरी ।
हार सुढार गरै गज मोतिन मोर पषोवन सारी करी ।
चंदन के द्रुम तें गहि नागनि लै कर में गजरा पुष री ।
रिजु बेह की दीपति ही सौं असावरी दीपति स्याम घटा की हरी ।
संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ ।

है)³ नट, वीर रस में छका घोड़े पर चढ़ा श्रोतित की धारों में रंगा है।³

इन राग-रागिनियों का स्वरूप वर्णन अधिकांशतः उनकी विशिष्ट वेश भूषा और उनमें निहित रस को लेकर ही हुआ है, परन्तु अपवाद स्वरूप ऐसा भी वर्णन मिलता है, जहाँ कवि के मस्तिष्क में केवल रस रह गया है और उस रस से सम्बन्धित काव्य-रचना की गई है। रागिनी का नाम मात्र वहाँ रह गया है। उदाहरण के लिए—

‘राग ललिता—

प्रीतम चालीया हे सखी ललिता करै विलाप।

हिरदा ऊपर हीडतो मो विरहण को हार।’⁴

रागों के लक्षण बताने में भी कवियों ने अधिकतर परम्परा का ही आश्रय लिया है, जो अन्तर स्वर निर्देश में मिलता है, उसके दो कारण हैं। एक तो रागों का प्रचलित रूप विदेशी प्रभाव (अरबी फारसी और ईरानी) के कारण भिन्न हो गया था, जिससे प्राचीन सिद्धान्तों से गायक दूर हो गए थे। दूसरा कारण संगीत काव्यकारों की अनभिज्ञता थी। इसके अतिरिक्त लिपिकारों की भूल के कारण लक्षण अस्पष्ट हो गए। शुद्ध और विकृत स्वरों का निर्देश न होना लिपिकारों के अज्ञान के परिणाम स्वरूप है। उदाहरण के लिए भैरव का स्वरों में लक्षण—

‘धनि सनि रिसध नि स ध प म ध म

नि स म ग रे स। सरि म प म ध रि प

म ग रि रि स तस्य रागन्य।’⁵

उपर्युक्त उदाहरण में शुद्ध और विकृत स्वरों का प्रयोग स्पष्ट नहीं है। फिर भी सर्वांग निरूपक ग्रंथ संगीत-शास्त्र के लक्षणों के लिए भी बहुत उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं। इनका सूक्ष्म अध्ययन करने पर तत्कालीन रागों का स्वरूप भी स्पष्ट हो सकता है। सर्वांग निरूपक ग्रंथकारों ने प्रत्येक राग और रागिनी के लक्षण और स्वरूप बताने के पश्चात् उसका स्वरालाप भी दिया है। यह स्वरालाप संक्षिप्त है। इन स्वरों से राग विशेष में प्रयुक्त स्वरों का परिचय मिलता है।

हिंडोल राग में षड्ज ग्रह है। स्वर सग म ध नि का प्रयोग होता है। ग्रीडव जाति की राग है।⁶

१. भूपाली विरहण परी कसरि वोरे चोर।

भयो विरह के ज्वाल सों पियरी सकल सरीर।

—हियहुलास रागमाला।

२. ‘सोने तँ लोने बने अंग तुरंग चढ्यो रन रंग में डोलें।

लाल गुलाल सो लोहू लग्यो तन वीर महा रस माँह कलोलें।’

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ।

३. राग माला—सागर कवि—श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

४. संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

श्री राग सम्पूर्ण जाति की बताई गई है। इसमें स रि ग म प ध नी स सप्त स्वरों का प्रयोग होता है। पड़ज ग्रह है। शिशिर ऋतु में दिवस के समय गाया जाता है।^१

राग देसी का हरिवल्लभ ने जो लक्षण बताया है, वह महत्त्वपूर्ण है और आज के प्रचलित रूप से भिन्न है। उन्होंने बताया है कि तीन रिपभ, देसी में लगने चाहिए।

‘तीन रूपभ राजै, रिपभ विकृत होतु है आइ।

जांम जुगल पर्यो कहे देसी राग बनाई।’

स्वरों में इसकी पहिचान है—

‘स ग व प ग रि स। स ग व प ध म व म स ग।’^२

स्वरों में रिपभ का केवल एक बार प्रयोग है। विकृत अर्थात् कोमल रिपभ का प्रयोग होता है। परन्तु परिभाषा के अनुसार ‘तीन रिपभ राजे’ का अर्थ संदिग्ध है। सम्भव है रिपभ का तीन विभिन्न श्रुतियों पर गायन प्रचलित हो।

केदार के लक्षणानुसार, निषाद स्वर ही न्यास, ग्रह और अंश माना गया है। ओडव जाति का राग है, रे और घ स्वर वजित हैं।

इसकी स्वरों में पहिचान है—

‘ग म प म प प ग म ग रि स नि स नि रि स

ग म प सं सं नि घ प ग प ग म।’

यह लक्षण आज के केदारा के लक्षण से भिन्न है। अतएव तत्कालीन रागों के प्रचलित स्वरूप से परिचित होने के लिए उन ग्रंथों का अध्ययन उपयोगी होगा।

संगीत काव्य का शास्त्रीय अध्ययन करते समय हमें संगीत के तत्कालीन परिवर्तित स्वरूप पर एक दिन विहंगम दृष्टि डालनी आवश्यक होगी। विदेशी आक्रमणों के कारण भारतीय संगीत प्राचीन सिद्धान्तों से दूर हट चुका था।

भारतीय संगीत का सैद्धान्तिक स्वरूप अपने मूल रूप में तेरहवीं शताब्दी तक चला आया। दसवीं शताब्दी में गजनी और शैरी बादशाहों के आक्रमण के समय यह अपने चरमोत्कर्ष पर था। गजनी और गौरी बादशाहों के समय भी तेरहवीं शताब्दी तक संगीत उसी रूप में दक्षिणी भारत में सुरक्षित था।^३ सं० १३६६ में मलिक काफूर ने दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त करके दक्षिण से संगीतज्ञों को बरबस उत्तर में लाना चाहा। तभी भारतीय संगीतज्ञ अपने योग-स्वरूप संगीत को विदेशियों के हाथ छिनते देख कर सतर्क हो गए और मूल सिद्धान्तों को छिपाने की चेष्टा करते रहे। उत्तर में तुगलक राज्य में अमीर खुसरो ने ईरानी और भारतीय संगीत को मिश्रित करना चाहा। इसी समय से उत्तर-भारतीय संगीत का स्वरूप भिन्न हो गया और उसमें ईरानी प्रभाव से नवीनताएँ भी आ गई।

१. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ—पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. Evolution of Indian Music. Sumati Mutatkar. Aspects of Indian Music. Government of India Publication. Ministry of Information and Broadcasting, Delhi—8.

अभी तक जो गीत संस्कृत, ब्रज अथवा अवधी भाषा में गाए जाते थे, उनको ज्यों का त्यों गाने में विदेशियों की कठिनाई होती थी, अतः भाषा में विदेशी शब्दों का समावेश हुआ। ईरानी संगीत के अन्दाज़ पर भारतीय रागों में तराना, कौल, नकशौगुल आदि बनाए गए।^१

नवीन रागों का जैसे गारा, सरपरदा, जीलक़ का आविष्कार किया।^२ इसके पश्चात् उत्तर भारतीय संगीत विदेशियों के राज्य में ही पनपा, अतः कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन निरंतर होते रहे। ऐसा कहा जाता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में मानसिंह ने ध्रुपद का आविष्कार किया, परन्तु वास्तव में ध्रुवपद का अभी तक मंदिरों में गाया जाने वाला संयमित और शास्त्रीय स्वरूप था जिसका एक और भेद हो गया और दरबारी ध्रुपद का नवीन रूप सम्मुख आया।^३ दरबारी ध्रुपद के शब्दों में तथा गायन शैली में चंचलता आ गई। यह सोलहवीं शताब्दी की देने थी।

तोड़ी में कानड़ा, तोड़ी और मल्हार में कुछ विशेष स्वरों के लगा देने से नवीन रागों का निर्माण हो गया। इसी प्रकार दरबारी कानड़ा, मियाँ की टोड़ी, मियाँ की मल्हार तथा मियाँ की सारंग आदि नवीन रागों का समावेश हो गया। रागों को मिश्रित करके गाने में माधुर्य का आ जाना स्वाभाविक था। इस मधुर रूप से प्रसन्न होकर आश्रयदाताओं ने गायक को अमरत्व प्रदान करने के लिए, रागों के नामों में विशेषता जोड़ कर नवीन राग बना दिया और इस प्रकार गायक को अमरत्व प्राप्त हो गया। राग कान्हरा जिसे कर्नाटकी कहते थे, अकबर को इतना प्रिय था कि उसका नाम उसने दरबारी रख दिया। मियाँ शब्द तानसैन के लिए प्रयुक्त हुआ है और ये राग तानसैन के नाम से प्रसिद्ध हैं।^४

ईरानी, अरबी और फारसी प्रभावों के कारण संगीत का स्वरूप परिवर्तित हो ही चुका था, परिणाम यह हुआ कि शृंगार युगीन संगीत के शास्त्रीय और क्रियात्मक रूप में अन्तर आ गया।^५

पांडित्य प्रदर्शन के लिये कुछ संगीताचार्य संगीत शास्त्र पर रचनाएँ अवश्य करते थे, (जैसा कि पहले सर्वांग निरूपक ग्रन्थों में दिखाया जा चुका है) परन्तु शास्त्रीय नियमों से बहुत से गायक तो परिचित ही नहीं थे और जो परिचित भी थे, वे इन नियमों की दुरुहता को समझ कर (गायक और श्रोता दोनों की दृष्टि से) उनका पालन करना व्यर्थ

१. मारिफुनग़मात—नवाब जली—अनुवादक, वि० ना० भट्ट ।

२. वही ।

३. Aspects of Indian Music. Government of India Publication. Ministry of Information and Broadcasting, Delhi—8, p 34

४. मारिफुनग़मात—नवाब अली, अनुवादक—वि० ना० भट्ट ।

५. "With the introduction, assimilation, and adjustment of these new artistic elements a gulf was created between the theory and practice of music." Aspects of Indian Music. The Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi—8, p. 35.

समझते थे, अतएव गुरु-शिष्य परम्परा में जो संगीत शिक्षा दी जाती थी, उनमें इन नियमों को जानने वाले नगण्य थे। उदाहरण के लिए, यद्यपि संगीत काव्यों में 'प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान' वायु का स्थान शरीर के भिन्न स्थानों में बताया गया है, परन्तु उनकी निर्दिष्ट स्थानों पर किस प्रकार साधना की जाय, इससे संगीतज्ञ अपरिचित थे।^१

इसी प्रकार यद्यपि हर स्थान पर तीन ग्राम (षड्ज, मध्यम और गान्धार) और वाईस श्रुतियों^२ आदि की लिखित रूप में विस्तृत व्याख्या प्राप्त है, फिर भी क्रियात्मक रूप में केवल षड्ज ग्राम का प्रचार था और वाईस श्रुतियों में से केवल सप्त स्वर षड्जा, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद प्रचलित थे।

‘सातो स्वर जे होत है श्रुति वे तिन के नाम।

षड्ज ऋषभ, गांधार अरु मध्यम अति अभिराम।

पंचम धैवत और पुन कहत निषादहि लोइ।

तिनकी संज्ञा दूसरी सरि ग म ध नी होइ।^३

तात्पर्य यह कि संगीत शास्त्र का लिखित और क्रियात्मक रूप एक दूसरे से भिन्न हो गया था। दूसरे शब्दों में लिखित रूप में शास्त्र प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार जीवित था, परन्तु क्रियात्मक रूप में संगीतज्ञों ने उन नियमों को हटा दिया था, जिन्हें वे दुरुह समझते

१. “प्राण, अपान रू व्यान पुनि कहै उदान समान।

नाग कूर्म अरु ककिल पुनि देव दत्त पविमान।

बहुरि धनंजय ये दसो इनमें मुष्ये प्राण।

मुख नासा नाभी हिए रहैं कहैं सज्ञान।

कटि जंघा अरु उदर में गुगुदि अरु अंडनि माह।

वायु अपान रहै सदा ठौर ठौर वह नाहि।

नैन कान अरु गुल्फ पुनि यह व्यानहि को ठांड।

सब सरीर में रहति है जाहि समानो नांड।

कर चरनन की संधि में कहत उदान बनाइ।

नागादिक पांचो कहै सप्त धातु सम भाई।”

संगीत दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

२. “रूप मात्रक श्रवण को तू श्रुति करि के जानि।

ता श्रुत कै पुनि होतु है भेद बीस द्वं आनि।

तीन्ना औ कुमुद्वती मंदा बहुर्यो देखि।

चौथी छदोवति बहुरि षड्ज सुरहि में लेखि।

दयावती अरु रंजनी रतिका बहुर्यो जानि।

ये तीन्यो श्रुति कहत हैं रिषभ सुराह में मानि।

रौद्रा अरु क्रोधा बहुरि येऊ दोऊ आइ।

होतु जु है गंधार में कोविद कहत बनाई।”

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

१. इसी प्रकार वाईसों श्रुतियों का निर्देश है।

थे। सुविधानुसार गायन प्रणाली में भी परिवर्तन कर लिया था। मनोरंजन के लिए रागों के स्वरूप में भी अन्तर आ गया था। रंजक तत्त्व की वृद्धि करने के लिए रागों का परस्पर मिश्रण करके भी गाया जाता था, जिनसे एक ओर तो नवीन रागों की सृष्टि हुई और दूसरी ओर स्वरों को शुद्ध बनाए रखने का प्रयास समाप्त हो गया। लगभग सभी राग-मालाओं में इस प्रकार के मिश्रित रागों की सूची सी दी है।

इस प्रकार इस युग में संकर रागों का प्रादुर्भाव हुआ। अभी तक रागों का विभाजन तीन प्रकार से किया जाता था। शुद्ध, छायालग और संकीर्ण।^१ शुद्ध राग वे हैं, जिनमें नियमानुसार स्वरों का शुद्ध स्वरूप बताया जाए।

‘सास्त्र रीति सौ मनु हरै राग सुद्ध सो होइ।’^२

छायालग वे राग हैं, जिनमें किसी राग की छाया पड़ती प्रतीत हो।

‘जुगल सुद्ध छाया मिले छायालग तू जोइ।’^३

संकीर्ण उन रागों को कहा है, जिनमें शुद्ध और छायालग दोनों ही रूप मिलें।

‘सुद्ध र छायालग मिले संकीरन है होत

सोत सुन्त ही करत है जन मन सदा उदोत।’^४

इस विभाजन के अनुसार यद्यपि छायालग और संकीर्ण रागों में भी मिश्रण है, परन्तु यह मिश्रण भी विशेष नियमों में बद्ध था, अतः गायकों का क्षेत्र सीमित था। अब चमत्कारिक रुचि के कारण लगभग सभी रागों का परस्पर मिश्रण करके गाया जाने लगा, जो श्रोताओं के हृदय में कोतूहल की सृष्टि करने में सहायक होता था, अतः ‘गान-कुतूहल’ के नाम से प्रसिद्ध है।

‘गान-कुतूहल’ की परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि जहाँ सभी रागों के रूप आकर मिल जाएँ, वहाँ स्वर-भेद से जो अनेक स्वरूप बन जाते हैं, वही ‘गान-कुतूहल’ है।

जहाँ सारंग और गौरी के सभी अंग मिल जाएँ, वहाँ गौड़ सारंग हो जाएगा।

‘मिले सारंग में गौरी के सब अंग।

दोऊ इक आलाप तै होत गौड़ सारंग।’^५

घनाश्री और पूरवी, जब शुद्ध नट में आकर मिलें तो भीम पलासी हो जाती है।

‘घनासरी अरु पूरवी मिले सुद्ध नट आनि

१. ‘अब संतग के मतहि ले रागहि त्रिविधि बषानि

सुद्ध और छायालग पुनि संकीरन मानि।’

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. वही।

३. वही।

४. वही।

५. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण—पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी।

इक सुर करि गाइये भीम पलासी जाँनि ।^१

इसी प्रकार किन्हीं दो अथवा तीन रागों को मिला कर नवीन रागों की सृष्टि हुई। इतना ही नहीं, कला का प्रेमी गायक इसमें भी भेद-प्रभेद बनाता चला गया। दो रागों का, तीन रागों का, चार रागों का मिश्रण होता चला गया। इस प्रकार विभिन्न रागिनियों को मिलाकर गाने में गायन कला की दक्षता और रागों के पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा थी। इसके परिणाम स्वरूप गौरी, मारु और जैतश्री को मिलकर वनाश्री गाई गई,^२ देशी, टोडी और ललित को मिलाकर देशकार बनाई गई,^३ आसावरी, पूरवी, भैरव और देव गंधार, चार रागों का संमिश्रण करके 'चोराष्टक' गायी गई।^४ लैकदहन, मधुमाधवी, विलावल, संकराभरन में मिला देने पर नटनारायण बना दी गई।^५

रागों के मिश्रण से ही संगीताचार्यों की सन्तुष्टि नहीं हुई, अतएव कुछ रागों के भेद भी किए, जिनसे संगीत-शास्त्र के रागाध्याय का नवीन रूप सम्मुख आया।

कानडा के पाँच प्रकार के भेद, शुद्ध कानडा, वागेश्वरी कानडा, अडाना, सहाना, मंगलाष्टक अथवा पूरिया किए गए।^६ गौरी के पाँच भेद, पहाड़ी, त्रिवन, पूरवी, बड़हंस, फरोदस्त हुए।^७ कामोद के पाँच भेद कामोद, शुद्ध कामोद, कल्याण कामोद, सामंत कामोद,

१. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर; सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी
२. 'गौरी मारु जैतसिरी यहै धनासिरि धन्य।' संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. 'देशी टोडी ललित मिलि देसकार परिमान।' संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

४. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. वही।

६. 'प्रथम कहत है गाइ कै सुद्ध कानरो एक।

भेद चारि कै गाइये ताको सुनहु विवेक।

बाह कानरो धनासिरी दोऊ मिलि अभिराम।

एकै सुर करि गाइये वागेशुरी सुनाम।

मिले मलारहि कानरो तहां अडानौ होई।

फरोदस्त अरु कानरो कहत सहानो सोई।

जैतसिरी अरु कानरो दोऊ सुर सम भाग

मंगल अष्टक सो कह्यो यहै पूरिया राग'

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर।

७. यद्यपि ये पांचों अलग पाँच रागिनियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, पर काव्यकार ने विभिन्न रागों के मिश्रण के साथ गौरी को गाने पर इन रागों का निर्माण होना बताया है।— संगीत दर्पण, हरिवल्लभ—पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

तिलक कामोद किए गए ।^१ इसी प्रकार अन्य रागों में भी भेद मिलते हैं । कही पर भेद न कहकर रागिनी की सपी कह कर कवि ने विभिन्न रूप बताया है । पूर्ण मिश्र कविरागी ने अपने सगीत-नादोदधि में श्री राग की सखियों का वर्णन किया है । मालश्री, जैतगिरि, घन्यश्री (घनाश्री), पधोतश्री, फूलश्री, वीर श्री, तथा रूप श्री, सात सखियाँ हैं ।

मालसिर सपि है प्रथमा अव दूजिय जैतसिरी बषानौ ।

घन्य सिरी सपि तीजिये जानिए चौथि पधोत सिरी सुभ गनौ ।

फूलसिरी पचई मुनि लीजिए वीर सिरी छठई सखि मानो ।

रूप सिरी सतई सब जानत, मोहि मुनी समता मन मानों ।^२

फ़ारसी संस्कृति के सम्मिश्रण और प्रभाव के कारण भारतीय संगीत में एक ओर तो रागों का नवीन रूप सम्मुख आया दूसरी ओर संगीत शैलियों में परिवर्तन और परिवर्द्धन हुआ ।

गायन-शैली में अभी तक गीत के शब्दों को महत्त्व दिया जाता था, जब शब्दों के विस्तार क्रिया पर बल दिया जाने लगा । इसका कारण यह भी था कि गीतों के शब्द संस्कृत भाषा के होते थे, जिन्हें गायक भली भाँति समझ नहीं सकता था,^३ अतः राग विशेष के स्वरों में एक ही अक्षर अथवा शब्द को भिन्न भिन्न प्रकार से गाकर दिखाने पर अपने कौशल का प्रदर्शन कर सकता था और अपने अज्ञान को बड़ी चतुरता से छिपा लेता था । इसी परिस्थिति-वश गायन-शैलियों में ख्याल का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें एक ही गीत की तीन लयों (विलम्बित, मध्य और द्रुत) में गाया जाता था । ख्याल गायकी में क्रमशः विलम्बित और द्रुत लय में स्वरों के विशिष्ट आरोहण-अवरोहण का प्रवेश हुआ, जिससे स्वर-आलाप, बोल-आलाप, तान, बोल-तान, मुरकी और मींड का महत्त्व गीतों के शब्दों से अधिक बढ़ गया । एक ही पंक्ति को कलात्मक ढंग से स्वरों के काल्पनिक विस्तार के साथ गाया जा सकता था । ख्याल का अर्थ ही है कल्पना, अतः यह शैली इस वातावरण के बड़ी अनुकूल थी ।^४ इसके अतिरिक्त ठुमरी, तराना, टप्पा, चाकर, होली आदि शैलियों का विकास हुआ, जिसमें शास्त्रीय पक्ष से अधिक कलापक्ष प्रबल था ।

ठुमरी में गीत महत्त्व रखता है । अधिकतर शृंगार रस और भावों को लेकर ठुमरी

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. संगीत-नादोदधि, पूर्ण मिश्र, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

३. मारिफुन्नामात, नवाबअली, अनुवादक—वि० ना० भट्ट ।

४. "Khayal literally means imagination and the form had a much more frail structure than the 'dhrupad' its massive and sublime predecessor. The khayal admitted of a great deal of extempore tonal elaboration within a particular composition." Evolution of Indian Music. Sumati Mutatkar. Aspects of Indian Music. The Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Delhi-8.

गाई जाती है।^१ इसीलिए कृष्ण और राधा को लेकर अधिकतर ठुमरियाँ बनाई गईं। इसकी ताल की गति चलती हुई होती है। गायक श्रोता को प्रभावित करने के लिए भावों के अनुरूप मुखाकृति पर भी अभिनयात्मक अनुभाव लाता जाता है। शृंगारिक शब्दावली और गाने के ढंग के कारण मुख्यतया ठुमरी स्त्रियों में प्रचलित हुई। स्वाभाविक रूप से ऐसी रचनाएँ विलासी राजा, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के मुख से सुनना चाहते थे और तभी कालान्तर में यह शैली विशेष प्रकार की स्त्रियों में ही प्रचलित होकर रह गई जो वेश्या, गनिका, पातुर, तथा नर्तकी आदि कहलाती थीं। जो पुरुष ठुमरी गाते थे, वे भी स्त्रैण कहलाते थे।

‘टप्पा’ पंजाबी लोक गीतों में प्रसिद्ध है, जिसका स्वरूप पंजाव के ऊँट हाँकने वालों के गानों के समान होता है। गुलाम नबी ने इसे शास्त्रीयता में बाँध कर ‘टप्पे’ का रूप ही बदल दिया।^२ इसमें छोटी छोटी तानों को अलंकारों के साथ गाया जाता है। एक ही स्वर अथवा निकट के दो एक स्वरों को लेकर विशेष प्रकार से कंठ में कंपन उत्पन्न करके गाया जाता है। इसमें शब्दों से अधिक उनके विस्तार पर बल दिया जाता है। यह अरबी और फारसी गायन शैली से प्रभावित है। अतः इसमें अधिकतर अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग होता है। इसकी गान-शैली में चंचलता ही प्रधानतया पाई जाती है। मानसिंह का बनाया एक ‘टप्पा’ यहाँ उद्धृत है—

‘टप्पा संकरा जलद तिताला—

जोरा जोरी ल्याइस धुम धुमा ले

लंहगावाली नूं। स्थायी

क्या खूब लचके कमर से रसी मैडी कीति चित चोरी मा।’^३

अथवा ‘ईमन टप्पा

पारी तेरे ननु लगदां मेरे दलवान।

नजदास रूप चलना तेरा जोर हो आए

१. ‘मालनिया मीठी मीठी री अनारे मेइ को देती जा। असताई।
तोरे पास हैं पके पके तरबुजवा और अच्छे अच्छे अबवा ताके मोल लेती जा।
वट पारो तेरो मोहना री मोरो गांव लुटे मा।
मोरे पास अच्छे अच्छे साल दुसाले कर भर दीन तोहुं गैल नाहिं छुटे मा।’
धुपद और खयाल—महाराजा मानसिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।
२. “A regional form like the punjab camel driver’s song gave rise to the supple Tappa through the creative imagination of a gifted musician named Ghulam Nabi who later came to be known as Shori Mian.”
Aspect of Indian Music, The Publication Division, Government of India, p. 35.
३. धुपद और खयाल—‘मानसिंह ‘रसराज’, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।

लगी कछु दलवान ।^१

तराना केवल चामत्कारिक गायन शैली है। इसमें ताना, री, आदि मृदंग तबले आदि के बोलों को तोड़ तोड़ कर द्रुत लय में गाया जाता है, जिसमें दुम, दीम आदि शब्दों को जल्दी जल्दी कहने में भी चातुर्य अपेक्षित है। इन्हीं अक्षरों में आलाप और तान ली जाती है। यह विभिन्न रागों में गाया जाता है। प्रत्येक गायक अपने पूर्ण ज्ञान का परिचय देने के लिए 'खयाल' तीनों लयों में गाने के पश्चात् उसी राग में तराना भी गाता है। कभी कभी, छोटे खयाल के शब्दों को ही ठुमरी में गा देता है।^२ तराने के शब्दों का, शृंगार युगीन साहित्य से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु तराने की शब्दावली पर विचार करने के उपरान्त यह पता चलता है कि इसका निर्माता आलंकारिक शैली में विशेष रुचि रखता है, विशेष रूप से छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास का प्रयोग तराने को सुन्दर बनाने में सहायक होता है।

‘राग केदारा—एक ताली ताले

हुई या रे तुम तन दे रे ना।

द द दाना ओ दा ना नी द द अल ली अ ल।

ली नी दी तर थ र र ता नु दी ल्ह खनी।

द द द दी व्रमै द द दी व्रमै ता द द ध प

म म अली या अली म अलंकार ग द फनी मानी ।^३

जो जितना ही तैयार तराना गा सकता है, वह उतना ही ऊँचा गायक समझा जाता है।

उपर्युक्त गायन-शैलियों में किसी न किसी शास्त्रीय नियम का पालन आवश्यक होता है, अतः इनको शास्त्रीय शैलियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। व्यावहारिक संगीत में भजन, कीर्तन, होली, मांड रास-गीत, तथा दादरा प्रधान रूप से रखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त गौण रूप में और भी शैलियाँ प्रचलित थीं।

इन गीतों में शब्दों का महत्त्व बहुत अधिक था। कृष्ण राधा आलम्बन के रूप में अभी काव्य में प्रचलित थे, अतः प्राप्त साहित्य में कृष्ण और राधा को लेकर बनाए गए पद इन शैलियों में प्रचारित थे।

कीर्तन और भजन की शैली भक्ति-कालीन परम्परा के अनुसार ही थी। यदि कहा जाए कि इस काल में शब्दों में शृंगारिकता अधिक आ गई थी, तो यह भी बहुत उचित न होगा, क्योंकि कुछ भक्त कवियों की रचनाओं में भी अश्लीलता की सीमा तक, लौकिक

१. राग-संग्रह, गुटका नं० ६२६२, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. खयाल से ठुमरी में बदलने के लिए केवल ताल का परिवर्तन होता है। खयाल यदि तीन ताल में गाया जा रहा है, तो तीन ताल सोलह मात्रा का होता है और ठुमरी की ताल भी सोलह मात्राओं की होती है, केवल लय में अन्तर होता है।

३. राग-संग्रह-गुटका नं० ६२६२, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

शृंगार मिलता है; भले ही उसे अलौकिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाता रहा हो। यहाँ तक कि सूरदास के काव्य में भी कुछ पद शृंगारिक भावनाओं से पूर्ण हैं। भक्ति युगीन तथा शृंगार-युगीन कीर्तनों और भजनों में केवल इतना ही अन्तर है कि भक्त कवि शान्त रस में मग्न होकर गाते थे तथा संगीतज्ञ कवि शृंगार रस में लीन होकर गायन करता था। शृंगार युगीन काव्य में सर्वत्र शृंगार से युक्त प्रेम और माधुर्य भक्ति को लेकर रचनाएँ मिलती हैं। इसीलिए माधुर्य का जितना सुन्दर स्वरूप यहाँ मिलता है, उतना अन्यत्र मिलना कठिन है।

‘राग सोरठ

तै तो चितवनि में मन मोह्यो

है रंगीली छैल भँवर रिभवार।

तू तो महामदन मनुहारी है छबीली नवजीवन सुकुंवार।

दोहा— ह्वै अधीर चितवन फिरै मृदु बोलनि की आस।

तो देपै विन भावतो आतुर तुव भुष प्यास।

लीनो मानो मान गढ़ हट लागी सुष रास

प्राण प्रिया संग विलसं सुष नट नाचलि पिय पास।

रट लागी नंद लाल कै तू हठ ठान्यो आज

नटा नटी क्यों करत है चलिये नट सुष साज।

नगधर नटहि सुहावनी तुव नट लीनी वान।

हट तजि तुव किन नट भजो यह कहा लीनों मान।^१

यह अवश्य है कि अन्य शृंगार-युगीन रचनाओं की भाँति इस काव्य में भी भक्ति से अधिक लौकिकता प्राप्त होती है। कहीं कहीं साधारण नायक-नायिका का ही वर्णन जान पड़ता है।

‘राग धूरिया मल्हार

रसिया रस रूप लुभायो सुन्दर सरस सुहाये।

भूलत हिंडोरे सघन कुँज में अति आतुर दरसायो।

अलक माल अरुभी बेसर में पीतांबर फहरन मन भायो।

राग मलारहि गावत सुन्दर सरस रसीली तान सुनायो।

नगधर प्रीत अरुभे प्यारी सीं क्यों सुरभे सुरभायो।^२

इनके गाने का ढंग वही होता था, जो भक्त कवियों में प्रसिद्ध था, जिसका आंशिक

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह; उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर तथा शोध-संस्थान, विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर।
२. रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर संग्रहालय, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर तथा शोध-संस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर।

रूप आज भी प्राचीन मंदिरों में देखा जा सकता है।^१ राग विशेष में बाँधने का कारण यही जान पड़ता है कि किसी पद अथवा भजन को जिस समय के लिए बनाया गया, उसी के अनुकूल राग में उसे बाँध दिया गया, उदाहरणार्थ, श्रावण मास में भूला भूलने के लिए बनाए गए गीत को उपयुक्त राग मल्हार में गाया गया। टेक के रूप में एक या दो पंक्तियों को द्रुत गति में गाना और फिर दोहे के रूप में विलम्पित लय में अन्तरा गाते जाना यही कीर्त्ति अथवा भजन गाने का ढंग था। उपर्युक्त उदाहरणों में 'राग सोरठ' का उद्धरण इसी प्रकार का है।

संगीत काव्य में जहाँ शास्त्रीय वर्णन है, वहाँ तत्कालीन परिस्थितियों के कारण कुछ विशेषताएँ आ गई हैं।

चमत्कारी प्रवृत्ति के कारण, संगीत-शास्त्र के वर्णन में भी सूक्ष्मता आ गई है।

सूक्ष्मता राग-रागिनियों के स्त्री-पुत्र-पुत्री वर्णन में आई है।^२ अन्य प्रकार से साहित्यिक रुचियों के आधार पर रागों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है, जैसे राग का 'पट् ऋतु वर्णन'। इसमें छत्रों ऋतुओं में रागों का विभाजन किया है। रागों का 'औषधि वर्णन' किया गया है। यह वास्तव में अलग विषय है। रागों और स्वरों की साधना से रोगों का ठीक हो जाना आयुर्वेद का विषय है। फिर भी कुछ संगीताचार्यों ने अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने के लिए इस विषय को लिया है। यह सूक्ष्मता इन कवियों के संगीत विषयक ज्ञान के पूर्णत्व की परिचायक भी हो सकती है। नृत्य तथा ताल आदि के वर्णन में सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व की ओर निर्देश तथा उसकी व्याख्या करना भी एक विशेषता है।

रागों के नामों को लेकर श्लेष अर्थ में संयुक्त काव्य-रचनाएँ की गईं। रागों में प्रयुक्त स्वरों (स, रे, ग, म, प, व, नी) को लेकर काव्य रचनाएँ की गईं, जिनमें श्लिष्ट अर्थ के कारण चमत्कार उत्पन्न हो गया।

उपर्युक्त विशेषताओं पर कुछ प्रकाश डालना उचित होगा। रागों और रागिनियों का भोर से रात्रि तक का विभाजन तो किया ही गया है,^३ छत्रों ऋतुओं के अनुसार भी रागों

१. नाथद्वारा (राजस्थान), काँकरोली (राजस्थान), मथुरा आदि के मंदिरों में अभी भी पारंपरिक गान प्रचलित है।
२. इसका उल्लेख इसी अध्याय के प्रारम्भ में किया जा चुका है।
३. 'प्रातः समय जो गाइये तिनके सुन तू नाम ।
देशी अरु मध माधवी भूपाली अभिराम ।
बिलावली अरु भैरवी, मल्लारी इहि भाइ
स्याम गुज्जरी और हे बंगालिहि गनाइ ।
मालसिरी र धनासरी मेघ राग गनि अंत
देसकार अरु पंचमी भैरव ललित वसंत ।

को बाँटा गया है। कौन सा राग किस ऋतु के अनुकूल है, इसका निर्देश किया गया है। श्रीराग अपनी रागिनियों समेत शीत ऋतु में, राग वसंत अपनी रागिनियों समेत वसंत ऋतु में, भैरव अपनी रागिनियों के साथ ग्रीष्म ऋतु में, पंचम अपनी युवतियों के साथ शरद ऋतु में, मेघ राग, रागिनियों समेत वर्षा ऋतु में और नट नारायण अपनी स्त्रियों के साथ हेमंत ऋतु में गाया जाता है।^१ कवियों की अपनी रुचि के अनुसार इस विभाजन में मत वैभिन्न्य भी प्राप्त होता है।^२

कुछ कवियों ने रागों का सम्बन्ध औषधियों से दिखाया है। वास्तव में कंठ में माधुर्य लाने के लिए औषधियों का प्रयोग बताया गया है। लगभग सभी कवियों ने इसका प्रयोग बताया है। 'हीय हुलास' की रागमाला के अनुसार कंठ को सुन्दर बनाने के लिए निम्नलिखित औषधि बताई है—

‘संपा हुली मुलहटी ब्राह्मी बीसा आन ।’
हरद्र कुटि अरु वावची सेंधा जीरा जान ।
मंगरा अरु अजमोद है बहुरि सतावर लेय ।
सम कर पीसै छांव के प्रात समे मुष देय ।

कौसिक बहरयौ गुज्जरी सावेरी सुष माइ ।
देवा अरु पटमंजरी बहुरि गुरकरी गाइ ।
रामकली अरु सोरठी बहुरि भैरवी होइ
एक पहर ऊपर इन्हें गान करौ चित्त जोइ ।’
संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

१. ‘श्री रागिहि रागहि सहित सीत रितुहि सुष दाइ ।
राग वसंतहि जुवति संग रितु वसंत में गाइ ।
भैरव अपने संग सों ग्रीष्म पावे मोद ।
पंचम निज जुवतनि सहित सरदाहि करे विनोद ।
मेघ राग रागिनी लिए वर्षाहि शोभा देत
नट नारायण साथ मिलि हेमंतहि सुष लेत ।
—संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. ‘भैरों सारद कार्तिकी सिसर हिण्डोल वसंत ।
दीपक ग्रीष्म हेम श्री, मेघ सो पावस अन्त ।’
—हीय हुलास, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
३. इस पंक्ति का बनारस, आर्य भाषा पुस्तकालय, में प्राप्त ‘हीय हुलास’ में पाठान्तर मिलता है ।

‘सिंगावली जी मुलहटी विरहिनि यासों आनि
हई कूठ अंवर सों सेंधा जीरा जानि ।’

एक हथेली भर सदा साधे दिन चालीस ।

हिरदै उपजे बहुत कर विथा बुध जगदीश ।^१

इन कवियों ने अपने पांडित्य-प्रदर्शन के हेतु अथवा विषय की पूर्ण जानकारी बताने के हेतु सूक्ष्म तत्त्वों का भी वर्णन किया है। उदाहरणार्थ, 'धूयामाठा' एक विशेष प्रकार का गीत है। कवि के शब्दों में—

‘धूयामाठा गीत में जानो परम प्रधान ।

तिनकी जुगति बपान हौं, सुनिए सरस सुजान ।

ज्यों दिन बिन सूरज लगे, बिन ससि रँगी अंध ।

धूयामाठा जानिए, गीत संगीत प्रबन्ध ।^२

धूयामाठा गीत छः प्रकार का होता है। धूया, प्रमजे, कला, कमल, सुन्दर और वल्लभ। इनमें से प्रत्येक का विस्तृत परिचय दिया गया है। कला वर्णन में अंग कला, लिपन कला, पवन कला, गनत कला, धनुष कला, तरन कला, युद्धकला, वैद्य कला, छंदकला, अर्धकला, छंदक राग कला, नाच कला, कपट कला, अदिष्टकला, वाजित्र कला आदि उनसठ कलाओं का सूक्ष्म परिचय दिया है।^३

मार्गी और देशी संगीत के समान ताल के भी दो भेद हैं, मार्गी और देशी। अणु, द्रुत आदि सात अंगों को मिला कर ध्रुव मार्ग से पंडितों ने जो सात तालों का वर्णन किया है, उन्हें देशी ताल कहते हैं। इन तालों को जिन गीतों के साथ वजाना होता है—ऐसी देवताओं की स्तुति-रूप गीत चौदह प्रकार के हैं।^४

देशी ताल के गीत—

१—मंद्रक, २—अपरांतक, ३—उलोप, ४—प्रकर्ण, ५—वेणुक, ६—रुह,
७—इंदुकौत्तर ।

मार्ग ताल के गीत

१—छंदिका, २—आसादिता, ३—वद्ध मानक, ४—प्रकर्ण, ५—ऋचा, ६—गाथा,
७—साम ।

इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन है।

नृत्य का वर्णन करते समय कवि ने शास्त्रीय ढंग से मुद्राओं का तथा ताल का वर्णन करना ही पर्याप्त नहीं समझा, वरन् भाव प्रदर्शन के लिए साहित्यिक गीतों का प्रश्रय लिया जाता था, उनका भी निर्देश करके क्रियात्मक ज्ञान को, लिखित रूप में स्पष्ट और पूर्ण बना दिया है।

१. हीय हुलास ग्रंथ तथा रागमाला, श्री मोती चन्द जी खजांची-संग्रह, बीकानेर ।

२. उस्तत कृत रागमाला, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

३. उस्तत कृत रागमाला, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।

४. राधा-गोविन्द संगीत-सार, तालाध्याय, प्रतापसिंह जी महाराज ; श्री खजांची पुस्तक-संग्रह, बीकानेर ।

पति के रुठने पर नर्तकी को नचाने के लिए नृत्य के साथ किन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए—

‘जहाँ नृत्य करने वाली स्त्री रुठे पति के मनाइये की नकल करि प्रसन्न करिबे को जू बावके वचन कहें, नाना प्रकार के अरथन सों संयुक्त गीत कहे, सो उक्त प्रत्युक्त श्लोक प्राप्तो—वसंत समयः सम मान भिन्नो शेषं परिव्रज्य भज स्वमयि प्रसादं उतुंग पीवर पयोधर, भूरि भारा माराधितोपिनहि रक्षतु मीहृयेमं ।’

‘ऐसे मतलब के श्लोक दोहा कवित्त आदि पढ़िये या श्लोक को अर्थ मानवती स्त्री को नायक मनावत है ।’^१

चमत्कार प्रियता के कारण रागों का स्वरूप वर्णन करते समय जहाँ ग्रन्थ स्थानों पर रागों का स्वरूप और शृंगार वर्णन हुआ है, वहाँ कृष्णानंद देव व्यास ‘राग सागर’ ने राग-रागिनियों के नामों में श्लेषार्थ लेकर कविता की है ।

‘प्रथम भए खनी वस प्यारे विम्ब उदे आए

राम किरिया खात ।

विवस भए देखियत गात अदेशकार कौन तीय

ललित वचन बोलत हो तुतरात ।

बेला बेरं बीत गई आली आस पज गई देव

गरीब नेवाज काकोभी संगम खटपट गई रात ।

देशाख सुघरतीय सुआ वस्त्र पहर खड़ी

सुघराई जानि परात ।

हम आसवारी सारी रैन तुम देव गन्धारी गावत

गुजरी सुन बीती परभात ।

तोड़ी हम सौं प्रीत जौनपुर वसत है नवल तीय

देशीख उने जाय लाचार हो बहादुरी डरात

जंगल जंगल दूँडत हारी भिभवट जिन

करो मेरे प्यारे आसा जोवत विहात ।

सारंग नयनी पास जावो मधुमाधवी बड़ हंसनी

सामन्त प्यारे वृन्दावन मथ इहाँ लक दहात ।

घन घन श्री मूलतान मंत्र पढ़ डास्यो अभी मैं

पल छन निरखत तुमकों पुरिया बड़ भाग गात

जैत श्री बाकी पूरव पूरे पुण्यफल जाकों पूरवा लखात ।

मारवा ने दई है काम की श्री महाराज गौरी गौरी

ढंक रात ।

-
१. राधा-गोविन्द संगीत-सार, तालाध्याय, प्रतापसिंह जी महाराज, श्री खजांची पुस्तक-संग्रह, बीकानेर !

एमन होत कल्याण को चाहत भूपाल बड़े

हमीर पूरी रात ।

कौमोदियत करछाया पग डगमगात
ऐडात जनात बहुनायक ही जु कान्हार बागेकेसरी
कण्ठमाल कौस्तुभ भरिव सहाना बोल सुहात ।
वाके दरवार में गए बहार करन हिंडारे ।
पांच में बसत हो भंवर नाम कहात ।
विहागत भई भैरी खंभा पकर ठाढी रहत
पर जो दुख बीती मारुं कासे कहूं वात ।
सो रटन लागी सास मेरी जय-जय बतियां
करार कर गए सोहनी मोहनी कर घात ।
मोहे अहोरी जान गोकुल ग्वालिया एराकी चाल

चलत छलक छांद कहीं जात ।

कपोल कहां पीक लागी जानि है जु जानी दीपक
चन्द्र प्रकाश भए नीलाम्बर ओड आए कलिंगए

अवध दे रात

हे घन श्याम मौलार नट वर है वाही के गोड़े पग घरात
वाके श्री विहारी लहर लोभ पहाड पै
कंगन गड़ात खड़ी ता नाय काकी बात
बैजु बावरी रावरी हिनु हितारी राग सागर गावत
तीन तिलक शिर मांझ देखात ।^१

उपयुक्त गीत में राम क्रिया, देशकार, ललित तथा वेलावली आदि रागों का नाम भी ले लिया गया है, साथ ही श्लेष तथा मुद्रालंकार के सहारे अर्थ में चमत्कार उत्पन्न कर दिया गया है ।

स्वर-कल्प

इसके अतिरिक्त संगीत शास्त्र के कलात्मक वर्णन का सुन्दरतम उदाहरण 'स्वर-कल्प' में मिलता है । 'स्वर-कल्प' को एक विशेष प्रकार का छन्द कहना चाहिए, जिसमें गति की नहीं, वरन् विषय की सुन्दरता है । इसमें कवि राग विशेष के स्वरों का वर्णन इस प्रकार करता है, जिसमें गीत और उसकी स्वर लिपि एक ही पद में श्लेषार्थ से प्राप्त हो । संगीत के सप्त स्वरों की सहायता से ही पद का निर्माण करना विशेष कौशल और चमत्कार

१. राग-कल्पद्रुम, कृष्णानन्द व्यासदेव 'रागसागर' भाग १, पृ० ७०१

लखनऊ विश्वविद्यालय लाइब्रेरी ।

का परिचायक है। इसमें राग का स्वर-निर्देश करने के पश्चात् ऐसे स्वर-कल्प लिखे गए हैं।

‘अथ हिंडोल-स्वर कल्पं, ताल फाक्ता
संग साथ सरश ब्राम मध्ये साधे सोपे ममधे
पमर गोपशो। मां मधे शोग सो स्वे रवैं वाम मध में में
घासो शं सै धी मैं रोग गम शो।
मे मध मे व सौ सौ सोधी मैं रै गोपिशो। पूरो रगम सो धी शा
धु शो सु शिवि में रंगे शो।’

उपर्युक्त ग्रंथ में राग हिंडोल में प्रयुक्त स्वरों, सरेगम व सं (आरोह में) और सं घ प म ग रे स (अवरोह में) को लेकर गोपी और कृष्ण पर रचना की गई है।

इससे भी अधिक आगे बढ़ कर किसी कवि ने कान्हूरा के सत्रह भेद, कल्याण के चौदह, टोड़ी के उन्नीस, केदारा के ग्यारह, विलावल के बारह, श्री के बारह तथा नाट के बारह भेद कर दिए।^१ इन भेदों का नामकरण दो मिश्रित रागों का नाम देकर ही कर दिया गया, उदाहरणार्थ, दरबारी और कान्हूरा मिला कर गाने पर दरबारी कानरा, वागेश्वरी और कानरा मिलाकर गाने पर वागेश्वरी कानरा, अडाणा और कानरा मिलाने पर अडाणा कानरा का नाम दे दिया गया।

१. संगीत-नादोदधि, पूर्ण मिश्र ‘कविरागी’, म्यूजियम, अलवर।

२. कानरा १७ प्रकाश का

सुद्ध कानरी १, दरबारी कानरी २, मियां का कानरो ३, बाघसरी कानरो ४, सियाना कानरो ५, अडाणा कानरो ६, गोसी कानरो ७, मुदरी कानरो ८, नायकी कानरो ९, धंभाती कानरो १०, कुकुबी कानरो ११, दौलती कानरो १२, आनंद कानरो १३, गारा कानरो १४, वसंती कानरो १५, गंभीरी कानरो १६, पुरिया कानरो १७।

अथ कल्याण का १४ नाम

सुध कल्याण १, इमन कल्याण २, सांम कल्याण ३, कामोद कल्याण ४, हमीर कल्याण ५, दरबारी कल्याण ६, पुरिया कल्याण ७, परदीपकी कल्याण ८, जैत कल्याण ९, जमन कल्याण १०, भोपाली कल्याण ११, साजनी कल्याण १२, हेम कल्याण १३, प्रेम कल्याण १४।

अथ टोड़ी वर्णन

जोनपुरी टोड़ी १, बाघेसरी टोड़ी २, लाचारी टोड़ी ३, मराठी टोड़ी ४, बरारी टोड़ी ५, भैरवी टोड़ी ६, बहादुरी टोड़ी ७, रामदासी टोड़ी ८, मीया टोड़ी ९, देशी टोड़ी १०, सोहनी टोड़ी ११, सजावली टोड़ी १२, भिमासी टोड़ी १३, पंचमी टोड़ी १४, बंगाली टोड़ी १५, आसावरी टोड़ी १६, बहारी टोड़ी १७, डाहेरी टोड़ी १८, जंगाली टोड़ी १९।

अथ नाटक वर्णन

रागों के इन भेदों प्रभेदों से तत्कालिक प्रचलित रागों का परिचय मिलता है। इनमें से कुछ राग अब प्रचलित भी नहीं हैं, इसलिए ऐसे रागों का महत्त्व अधिक हो गया है।

इस प्रकार संगीत-काव्य का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि संगीत का क्रियात्मक रूप शास्त्रीय नियमों से दूर पहुँच कर कलात्मक विकास को प्राप्त कर चुका था, तथापि शास्त्रीय पक्ष पुस्तकों में लिखित रूप में पूर्ण रूप से सुरक्षित रहा। संगीत-काव्य को विकास देने में चित्र कला तथा काव्य कला दोनों ही समान रूप से सहायक हुईं।

हमीर नाटक १, कामोद नाटक २, सांभ नाटक ३, छाया नाटक ४, नारायण नाटक ५, जेत नाटक ६, सुद्ध नाटक ७, केदार नाटक ८, भिभास नाटक ९, मलारी नाटक १०, सावनी नाटक ११, हेम नाटक १२।

केदारा वर्णन

साम केदार १, जेत केदार २, सिंहाना केदार ३, मियां का केदार ४, पंचम केदार ५, जलधर केदार ६, सावनी केदार ७, रामदासी केदार ८, सुद्ध केदार ९, मारू केदार १०, सोहनी केदार ११।

विलावल वर्णन

सुध विलावल १, अलैया विलावल २, काराणा विलावल ३, मियां का विलावल ४, गौड विलावल ५, सुठा विलावल ६, श्री विलावल ७, देवनागरी विलावल ८, कुकुब विलावल ९, सोरठी विलावल १०, सुरदासी विलावल ११, यमनी विलावल १२।

अथ श्री वर्णन

सिरी १, घन्यासीरी २, जेत श्री ३, मालश्री ४, धौलश्री ५, फलश्री ६, पटश्री ७, भीमपलासी श्री ८, लंक प्रस्ताव श्री ९, पुरिया घन्याश्री १०, मियां की श्री ११, गांड श्री १२।

इति श्री राग संपूर्ण

राग सागर, कवि अज्ञात, समय (सं० १८०० तथा १९०० के मध्य का) पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

निषाद

संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन

शृंगारयुगीन साहित्यिक रचनाओं का पर्यवेक्षण करने पर यह जाना जा सकता है कि शास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण करने के लिए आचार्यों तथा कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों को आधार बनाया है। विषय का चयन भी उन्हीं ग्रंथों से किया गया है और काव्य के सिद्धांतों का निर्णय करने के लिए भी आचार्य मम्मट, दण्डी और भामह आदि का अनुसरण किया गया है। इन ग्रंथों में विषय के क्षेत्र में मौलिकता का प्रायः अभाव सा ही है। संगीत-काव्य के विषय में भी ऐसा कथन उपयुक्त है।

संगीत-शास्त्र के ग्रन्थों का निर्माण करते समय कवियों के सम्मुख संस्कृत संगीत ग्रन्थों के आचार्यों के ही आदर्श रहे हैं। संगीत-काव्य के शास्त्रीय पक्ष की आलोचना 'संगीत-काव्य का शास्त्रीय अध्ययन' नामक अध्याय में की जा चुकी है। यहाँ इन रचनाओं के काव्यात्मक सौन्दर्य पर प्रकाश डालना उचित होगा।

शृंगार कालीन राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ इस प्रकार की बन गई थीं, जिन्होंने इस काल के कवियों में आचार्यत्व की ओर रुचि उत्पन्न कर दी थी, यह पहले कहा जा चुका है। अन्य कवियों के समान संगीत-काव्यकारों में भी आचार्यत्व का पद प्राप्त करने की लालसा थी। यह भी कहा जा सकता है कि इसी आचार्यत्व की पदवी के प्रलोभन ने कवियों को संगीत-काव्यकार बना दिया।

आचार्य के लिए मुख्य रूप से दो गुण अवश्य होने चाहिएँ। एक तो विविध विषयों का ज्ञान आवश्यक है और दूसरे किसी भी विषय में नवीन मान्यताओं का निर्धारण करने की क्षमता अवश्य हो।

इस दृष्टि से देखने पर अनेक कवि तो ऐसे प्राप्त होते हैं, जिन्होंने विषयों की विविधता का ज्ञान प्रदर्शन करने के लिए ही रचना की। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध कवि देव ने अन्य सत्रह ग्रन्थों के अतिरिक्त एक 'राग रत्नाकर' का भी निर्माण किया।^१ धनानन्द ने अन्य रीति ग्रन्थों के अतिरिक्त राग-वद्ध गेय पद लिखे। सवाई महाराज प्रतापसिंह ने प्रीति-लता, सनेह संग्राम आदि ग्रंथों के अतिरिक्त 'राधागोविन्द संगीत-सार' की भी रचना की। नागरीदास, महाराज विश्वनाथ सिंह जी, मानसिंह जी और राधाकृष्ण भी इसी प्रकार के कवि थे।

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, डा० नगेन्द्र द्वारा संपादित, पृ० ३३१।

नवीन मान्यताओं की स्थापना सहज नहीं थी, अतः प्राचीन मतों को लेकर लगभग ज्यों का त्यों हिन्दी में लिख दिया गया है। मौलिकता के नाम पर रागों का मिश्रण करके नवीन रागों की सृष्टि करने की चेष्टा की गई है। यही 'गान-कुतूहल' के नाम से प्रसिद्ध है।^१ इसी प्रकार के वर्णन को नवीन मान्यता का निर्धारण समझ कर आचार्यत्व का प्रदर्शन मात्र किया गया है।

संगीत-काव्य का साहित्यिक मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित अंगों पर विचार करना उचित है।

१—रसात्मकता

२—वस्तु वर्णन

३—रूप वर्णन

४—प्रकृति वर्णन

५—कल्पना-तत्त्व

६—भाषा तथा

७—छन्द

रसात्मकता

कवि के हृदय में भाव का अंकुर जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के जल से सिंचित होकर प्रस्फुटित हो जाता है, तभी कवि को आनन्द की अनुभूति होती है। यह आनन्द कवि के उद्गारों को द्रवित कर देता है, वह स्वयं ही इस 'रस' में डूब जाता है और अपनी भावुकता को कविता में ढाल देता है। कवि की यह रसानुभूति काव्य में परिणत होकर, पाठक को भी रस मग्न कर देती है। 'न तो रस के बिना कोई भाव होता है और न भाव के बिना रस। इन भावों से रसों का भावन किया जाता है और रसों के द्वारा भावों का।'^२ बिना दान दिए लक्ष्मी जिस प्रकार शोभित नहीं होती, उसी प्रकार वाणी भी रसों के बिना शोभित नहीं होती।

'लक्ष्मीरिव बिना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा । ८।'^३

मनुष्य के हृदय में मूल रूप से नौ स्थायी भाव रहते हैं। रति, हास, करुण, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य, तथा निर्वेद भावों से क्रमशः शृंगार, हास्य, रोद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त रस की निष्पत्ति होती है। रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है।^४

१. इसका विवेचन संगीत-काव्य के शास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत किया जा चुका है।

२. 'न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसविर्वाजितः।

भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ॥१२॥'

अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ३६।

३. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, तृतीय अध्याय, पृ० ३८।

४. 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' भरत का नाट्य शास्त्र।

विभाव के दो भेद होते हैं, आलम्बन और उद्दीपन। जिस वस्तु अथवा व्यक्ति को देखकर भाव जागृत हों, उसे आलम्बन कहते हैं। भावों को उद्दीप्त करने वाले उपकरण, उद्दीपन कहलाते हैं। भाव के उद्दीप्त हो जाने के फलस्वरूप मनुष्य के मन, शरीर तथा वचनों में कुछ विकार आ जाता है। इन्हीं विकारों को क्रमशः सात्विक, कायिक तथा वाचिक अनुभाव कहते हैं। मन की स्मृति से, वाणी की इच्छा से, बुद्धि की प्रेरणा से एवं शरीर के यत्न से, आलम्बन विभाव के उद्बुद्ध एवं परिष्कृत भावों के आरम्भ को विद्वानों ने अनुभाव कहा है, क्योंकि इसका अनुभव किया जाता है, इसीलिए इसे अनुभाव कहते हैं।^१ इसके अतिरिक्त इन भावों से सम्बन्धित कुछ पल पल में विलीन हो जाने वाले भाव आते हैं, जिनको संचारी अथवा व्यभिचारी के नाम से पुकारा जाता है। शास्त्रों के द्वारा ऐसे संचारी भावों की संख्या, चौतीस रखी गई है। स्तम्भ, स्वेद, पलक, स्वर-भेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु प्रलय, आठ व्यभिचारी तथा निर्वेद ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, घृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्या, दीनता, हर्ष, क्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क तैंतीस संचारी माने गये हैं। कुछ विद्वान् मूर्छा को चौतीसवाँ संचारी मानते हैं। इन सबका अनुभव करते हुए आश्रय के हृदय में रस की अनुभूति होती है। रस अपनी पूर्णवस्था पर विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के उदय होने पर ही पहुँचता है। स्थायी भाव कोई भी हो, रस की अनुभूति होने पर प्रत्येक दशा में समान आनन्द प्राप्त होता है। इस आनन्द को 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा गया है, अतः जब वास्तविक रस की अनुभूति की अवस्था पर कवि पहुँचता है, तब उसके लिए आलम्बन उद्दीपन तथा संचारियों का वैभिन्न्य कोई अर्थ नहीं रखता, केवल 'आनन्द' में वह डूब जाता है। प्रत्येक रस की चरमावस्था समान रूप से कवि को विभोर कर देती है और कवि उसी आह्लाद को अपने काव्य में प्रकट करता है।

शृंगार के रस-राजत्व के पक्ष में आचार्यों ने समय-समय पर प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। यह सर्वमान्य है कि शृंगार के स्थायी भाव रति में जो व्यापकत्व निहित है, वह अन्य आठ रसों में नहीं; अतः शृंगार रस जितना अधिक प्रभावशाली हो सकता है, उतना अन्य रस नहीं। संगीत काव्य में हमें मुख्य रूप से शृंगार रस ही प्राप्त है। अन्य रस भी आवश्यकता-नुसार वर्णित हैं।

संगीत-काव्य में नव रसों के अतिरिक्त एक रस को लिया गया है, जिसे शृंगार रस का एक नवीन रूप भी कहा जा सकता है, वह है काम रस। शृंगार रस का वर्णन, आश्रय (पति-पत्नी, स्वकीया), परकीया तथा गणिका नायिका, राधा, कृष्ण, गोपी, प्रेमिका, सखी

१. "आलम्बन विभावस्य भावैरकद्बुद्ध संस्कृतैः।

मनोवाग्बुद्धि वपुषां स्मृतीच्छा द्वेषयन्तः। ४४।

आरम्भ एवं विदुषामनुभाव इति स्मृतः।

स चानुभूयते चात्र भवत्युत निरुच्यते। ४५।"

अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, तृतीय अध्याय, पृ० ४५।

तथा भक्त के हृदय में रति स्थायी भाव को रखकर किया गया है। संगीत-काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् यह देखा जाता है कि एक नवीन भाव स्थायी बन कर आता है, जिसे हम 'काम' भाव की संज्ञा दे सकते हैं और यह भाव रति भाव से पृथक् स्थान बनाता है। 'रति' भाव से प्रेरित मनुष्य आलम्बन में पूर्ण रूप से 'रत' हो जाना चाहता है। यह 'रत' हो जाने की अभिलाषा मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही रूप में होती है। 'काम' तत्त्व इससे भिन्न है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रमाणित कर दिया है कि काम तत्त्व संसार के जड़ तथा चेतन प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। मनुष्य चेतना प्रधान प्राणी होने के कारण इसकी अनुभूति करता है। 'काम' भाव को स्थायी भाव के रूप में धारण करने वाले व्यक्ति (आश्रय) का लक्ष्य आलम्बन की प्राप्ति नहीं है, वरन् उसके प्रति आकर्षण, आदर तथा प्रेम भाव हैं, जो रति भाव को जाग्रत करने में गौणरूप से सहायक हैं, अतः इसका स्वरूप अधिक व्यापक हो जाता है। यह काम तत्त्व प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विद्यमान रहता है। बालक उत्पन्न होते ही, इस काम तत्त्व के कारण माता के प्रति आकर्षित होता है।^१ अनुकूल परिस्थितियों के न मिलने के कारण कभी-कभी काम भाव दबा रहता है, अतः मनुष्य का व्यक्तित्व विकास को प्राप्त नहीं होता। काम भाव के अनुभाव भी भिन्न होते हैं। स्वेद, कम्पन, श्रृंखला, स्वर-भेद आदि विकार नायक तथा नायिका के परस्पर प्रेम के कारण प्रकट होते हैं, इनके सीमित क्षेत्र में काम रस बँधा नहीं रहता, वरन् इस रस की अनुभूति से आश्रय का हृदय कभी तो प्रकृति प्रेमी हो जाता है, वह प्रकृति में जा कर आनन्द का अनुभव करता है, कुंजों के बीच सुन्दर लताओं में झूला झूलने के लिए आकुल हो जाता है, कभी कला प्रेमी हो जाता है, कभी एकान्त में बैठ कर चित्र बना कर आनन्द का अनुभव करता है, कभी नृत्य तथा संगीत के माध्यम से अपने रस का प्रकटीकरण करता है और कहीं स्फटिक शिला पर, तरु के नीचे प्रकृति के सुखद वातावरण में वीणा बजाने लगता है, मधुर स्वर में गायन करने लगता है अथवा रास नृत्य में मग्न हो जाता है।^२ यह काम रस की निष्पत्ति में सहायक अनुभाव हैं। किसी न किसी रूप में काम भाव का प्रस्फुटन होता है। चौत्तीस संचारियों में से अधिकांश वही इस रस में रहते हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त अनेक संचारियों का समावेश हो जाता है। इस प्रकार 'काम' स्थायी भाव, मुस्कान, हास, विलास, नृत्य, गान, वादन, मदिरा-पान, आदि अनुभावों से युक्त होकर आह्लाद, स्वेद, कम्पन, रोमांच, स्मरण, विषाद आदि संचारियों की क्षणिक अनुभूति करते हुए काम रस में परिणत हो जाता है।

काम तत्त्व (सेक्स) की व्यापकता के कारण काम रस की व्यापकता भी बढ़ जाती

१. "The first love object of the boy is his mother, ... for the little girl, too her mother must be her first object."
Dictionary of Psycho-Analysis, Freud, p. 136.
२. "Sublimation is a process that concerns the object-libido and consists in the instincts directing itself towards an aim other than, and remote from, that of sexual gratification, in this process the accent falls upon the deflection from the sexual aim". Dictionary of Psycho-Analysis, Freud, p. 136.

है, अतः प्रिय की अनुपस्थिति में जड़ प्रकृति का सान्निध्य (जिसमें प्रच्छन्न रूप से चेतना व्याप्त है) तथा चेतन प्रकृति पशु-पक्षी का सामीप्य भी सुखद प्रतीत होता है। काम भाव प्राणी को आत्म-प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इस रस की विवेचना करने पर संगीत-काव्यकारों के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचय मिलता है। आत्म-प्रदर्शन का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। शृंगार रस से काम रस प्रधानतया इसी क्षेत्र में भिन्न है कि जहाँ शृंगार रस में डूवा व्यक्ति (नायक अथवा नायिका), स्वयं आनन्दित होकर रह जाता है, तथा किसी न किसी विकार के द्वारा अपने 'रस' को प्रकट करने में समर्थ होता है, वहाँ काम रस की अनुभूति-प्राप्त नायिका किसी न किसी प्रकार प्रदर्शन करके अपने हृदय के भीतर के भाव को प्रकट करती है। शृंगार रस की नायिका प्रकाश रूप में रस की अभिव्यक्ति करती है। काम रस की नायिका प्रच्छन्न रूप में अपने रस का संकेत भर करती है। नेत्रों का तिरछी चितवन के कारण दीर्घाकार बन जाना, कुण्डलों को हिलाकर कपोलों पर ले जाना, केश राशि से अलकों का बिखर कर मुख पर आ जाना, ओठों पर अनजाने स्मित हास का बिखर जाना, अंगों के सौन्दर्य का इतना अधिक ध्यान रखना कि कटि का सूक्ष्मत्व, वक्षःस्थल का उभार आदि स्पष्ट हो जाना, अलंकरण के प्रति सजग रहना, गति में मादकता तथा सौन्दर्य ज्ञान का भाव होना, आदि विकार स्पष्ट रूप से आत्म-प्रदर्शन कराते हैं। शृंगार युगीन संगीत-काव्यों में 'काम-रस' का इतना सजीव, तथा स्पष्ट चित्र देखकर पारंपरिक शास्त्रीय व्याख्या से हटकर शृंगार रस के इस नवीन विश्व-व्यापी 'काम' रूप को मान्यता प्रदान करनी पड़ती है।

संगीत-काव्य में सर्वाधिक मात्रा में काम रस प्राप्त होता है :—

'राग सारंग नट

वैसि किसोर मनोहर भूपन कंचन तें अति गात गुराई।

छूटि रही मुप पै अलकें तन जोवन की भलकें अरुनाई।

चंपकें ढिगि बैठि तिया परवीन महा रस वीन वजाई।

अम्बर लाल विसाल बनै छवि सारंग नाट सबै सुखदाई।'

इस सबैया में आश्रय राग सारंग नट है। स्थायी भाव काम है। आलंबन प्रिय है। मनोहर आभूषणों को धारण करना, यौवन की अरुनाई का मुख पर भलक आना, मुख पर अलकों का आ जाना, वीणा का वजाना, तथा शरीर को लाल अम्बर से सजाकर 'छवि सुखदाई' बनाना अनुभाव है। संचारी भाव, स्मृति, ध्यान, औत्सुक्य, तथा हर्ष हैं। 'ध्यान' संचारी भावों के अंतर्गत रखा नहीं गया है। परन्तु काम के वशीभूत होकर नायिका प्रिय के ध्यान में रत हो जाती है, यह ध्यानावस्था जड़ावस्था से भिन्न है, अतः एक संचारी यह भी है। इसके अतिरिक्त स्मृति तथा प्रतीक्षा में बैठी नायिका को पल भर के लिए अतीव आनंद होता है, फिर लुप्त हो जाता है। आकस्मिक आह्लाद होने के कारण 'आह्लाद' भी एक संचारी होना चाहिए। हर्ष, चित्त की प्रसन्नता को कहते हैं। 'चित्त की प्रसन्नता 'आह्लाद'

१. 'हर्षश्चित् प्रसन्नता,' अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, तृतीय अध्याय, पृ० ४२।

से अधिक स्थायी है। हर्ष का प्रकटीकरण व्यक्ति की ज्ञात अवस्था में होता है। आह्लाद अज्ञातावस्था में शरीर में व्याप्त हो जाता है। 'अरुनाई का भलक आना' आह्लाद है, हर्ष नहीं। आह्लाद की अनुभूति मानसिक, परन्तु उस की व्याप्ति शारीरिक है, हर्ष की अनुभूति शारीरिक, परन्तु व्याप्ति मानसिक है। आह्लाद इन्द्रियों के प्रयास से जन्य नहीं है, जब कि हर्ष कुछ मात्रा में प्रयास-जन्य है। काम रस की निष्पत्ति में यह संचारी विशेष रूप से महत्त्व रखता है। इस कथन की पुष्टि के लिए एक और उदाहरण देना उचित होगा।

“हे री मोहन ललित त्रिभंगी

नूपुर वजत गजत मुरली धुनि ललित किसोरी जीरो संगी ।

रास रसिक रस अद्भुत राजत तान तरंगन संगी ।

ब्रजनिधि राधा प्यारी चित पर मननि भरे है उमंगी ।”^१

यहाँ कृष्ण के हृदय में काम भाव जग रहा है। राधिका आलम्बन है। राधा को रिझाने का कृष्ण प्रयास करते हैं। आत्म प्रदर्शन के लिए त्रिभंगी का विचित्र रूप, धारण करते हैं। मन को मोहने वाला लालित्य आ जाता है। नूपुरों की ध्वनि करके, मुरली की ध्वनि सुनाना अनुभाव है। तानों की तरंगें रास में रस भर देती हैं। इसमें संचारी भाव हर्ष, आह्लाद, औत्सुक्य तथा चपलता है।

राधिका भूला भूल रही है। उस सौन्दर्य को देखकर कृष्ण के हृदय में काम रस जागता है। राधिका का कृष्ण की ओर देखना काम रस को उद्दीप्त करता है। कृष्ण भोंटा दे रहे हैं। बहाने से प्रिया के अंग का स्पर्श कर लेते हैं। यह चेष्टा ही आत्म-प्रदर्शन का एक स्वरूप है। यहीं काम रस जग जाता है।

‘आज हिडोरे हैली रंग वरसैं ।

भूलें श्री वृषभानु किसोरी सुन्दरता सरसैं ।

धन्य भाग अनुराग पीय को दृग सुहाग दरसैं ।

भोंटा रे मिस ब्रजनिधि नेही प्रिया-अंग परसैं ।”^२

संगीत-काव्य में काम रस के अतिरिक्त शृंगार रस की विस्तृत योजना की गई है। संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार दोनों ही के उदाहरण भरे पड़े हैं।

आश्रय भैरवी के हृदय में आलम्बन भैरव के प्रति ‘रति’ जागृत होती है। नायिका भैरवी श्वेत साड़ी पहने चन्द्र मुख की उजियाली को फैलाती हुई प्रातःकाल शिव की उपासना करती है। कायिक अनुभाव, प्रेम में पगकर दोनों हाथों से ताली बजाना है, ‘कैलाश के विलास में हुलास पूर्ण’ गीत गाना, वाचिक अनुभाव है। यहाँ हर्ष, चापल्य, औत्सुक्य आदि संचारी भावों का भी समावेश है।

‘प्रात समै प्यारी उठि उठी श्वेत सारी भारी

फैली मुख चन्द की उजारी जोति जागती ।

गोरे भुजमूल सिव पूजि कै चढाय फूल

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० १७५ ।

२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० २५० ।

दोऊ कर ताल वजावै प्रेम पागनी ।
 अंगी उर लाल कंज लोचन विसाल
 वाल फटिक सिंहासन पै बैठी बड़ भागनी ।
 गायतु कैलास के विलास में हुलास भरी
 भैरवी वपानी यह भैरव की रागनी ।^१

कृष्ण के हृदय में राधिका के साथ नृत्य करते हुए 'रति' भाव जागता है । शरद का चन्द्रमा, मंद पवन, किनारे पर फूली हुई फुलवारी, रति भाव को उद्दीप्त करते हैं । मृदंग की गति तथा तानों की तरंगों में रंग बढ जाता है और नर्तकों की गति में भी उमंग बढ जाती है । और तभी छवीली की छवि देखकर कृष्ण के हृदय में रस उत्पन्न हो जाता है ।

‘नचत मनि मण्डल पर स्याम प्रिया सुकुमारी ।
 उदित सरद चंद बहत पवन मंद पुलिन पवित्र जहाँ फूली है विचित्र फुलवारी ।
 वाजत मृदंग गति लेत हैं सुगन्ध दोऊ तान की तरंग रंग वाद्यो है म्हा री ।
 निरखि छवीली की छवि ‘ब्रजनिधि’ प्यारे प्रेम विवस उर घारी ।’^२

वियोग शृंगार का वर्णन करते समय भी कवियों ने पारस्परिक उद्दीप्तों का आश्रय लिया है । पपीहा ‘पिया’ की आवाज सुना कर विरहिणी को और अधिक दुख देता है । घन का गर्जन, चपला की चमक, वर्षा आदि विरह को उद्दीप्त करते हैं ।

‘कैसे कटै दइया परवत सम री रतियां
 घन गरजत अति चपला चमकत वरपत भर जिय पर इह घतियां ।
 सुरत दिखावत पीय पपीहा भारत मदन बदन को कतियां ।

ब्रजनिधि विन छिन नांही जीवन दार्यो ज्यों दरकत है छतियां ।’^३
 नायिका के रति भाव को प्रिय के न रहने पर रात्रि के समय, घन, चपला तथा वर्षा उद्दीप्त करते हैं । पपीहा प्रिय की याद दिलाता है । इस प्रकार उद्दीप्त होकर नायिका की विकलता, ‘छतियां दरकने’ से, पता चलती है । स्मृति, पुलक, प्रलय, चपलता तथा उन्माद संचारी भाव हैं ।

राग घनाश्री वियोग की पीड़ा को दूर करने के लिए शीतल जल के पास जाकर बैठ जाती है । मुख से दुख के कारण कुछ नहीं कहती । ‘मन भावन की सुधि’ आ जाने से ‘विरहानल अंगों में लगी’ ही है, फिर अनंग दुखी कर रहा है । छवि क्षीण हो गई है, ‘कंज-दृगों से जल-धार’ बहने लगती है ।

‘रति मन्दिर के ढिग बाग तहां जल सीतलता सरसाय रहें ।
 तन की पीर मिटावन कौं तिय बैठि कछु दुप नाहि कहैं ।

१. राग-रत्नाकर, राधा-कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २०० ।
३. वही, पृ० १७७ ।

मन भावन की सुधि आय गई विरहानल अंग अनंग दहैं ।

छवि छोन घनासरि दीन भई दरग कंज न ते जल धार वहैं ।^१

आश्रय राग घनाश्री का आलम्बन राग श्री है । 'दुख से कुछ न कहना', 'छवि क्षीण हो जाना', 'आँखों से जल धार बहना', सात्त्विक तथा कायिक अनुभाव है । वैवर्ण्य, अश्रु, स्मृति, जड़ता, अवहित्ता, औत्सुक्य, चपलता, ब्रीड़ा, उन्माद, व्याधि तथा अपस्मार संचारी भाव हैं ।

शृंगार का संयोग तथा विप्रलम्भ इन कवियों का प्रिय रस है, अतः इसके अनुभावों तथा संचारियों में इतनी विविधता है कि ये तैतीस अथवा चाँतीस की संख्या में नहीं बाँधे जा सकते । मनोविज्ञान की दृष्टि से, इन नायक तथा नायिकाओं का अध्ययन करने पर बड़े विचित्र तथा रस के उपयुक्त संचारियों का परिचय प्राप्त होता है । प्रिय के प्रति अतीव प्रेम भावना के कारण, उसकी अनुपस्थिति में उसके विषय में बात करके अथवा सुनकर बड़ा आनन्द तथा सन्तोष प्राप्त होता है । प्रिय की चर्चा सुनते समय मन ही मन नायिका मुसकाती जाती है । इस मुसकान में प्रिय के साथ बिताए क्षणों की मधुर-स्मृति का संकेत है । प्रिय की बात सुनते ही मिलन के दृश्य की कल्पना करके उसे (नायिका को) मुस्कुराहट आ जाती है—कभी उन्हीं क्षणों की याद करके उसे लज्जा आ जाती है । इसे 'स्मृति-मिलन' की संज्ञा दी जा सकती है । मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अनुराग का बड़ा सुन्दर अनुभाव है । इसके लिए संचारियों में कोई स्थान नहीं है, परन्तु यह क्षणिक भाव न केवल संयोगिनी नायिका के, बल्कि वियोगिनी के भी हृदय में उठ सकता है ।

'नव नेह की बात सुनै मुसकात लजात सपी सुप साजत है ।'^२

नवीन प्रेम से भरी नायिका असंत हो जाती है । प्रेम की मादक भावना उसे भाव विभोर बना देती है । प्रिय के समीप न रहकर भी वह आवश्यकता से अधिक उल्लास से पूर्ण रहती है । अकारण ही गाना-नाचना यह उसके अनुभाव हैं । भाव-भरे गीतों में स्वर स्वभावतः मधुर हो जाता है ।

'मधुरै सुर गाय नचै तरुनी सब प्रीतम कै अनुराग भरी ।'^३

व्यक्ति हर्षातिरेक से अपनी सामान्य स्थिति का सीमोल्लंघन करके नाच कर प्रसन्नता को अभिव्यक्त करता है ।

विप्रलम्भ में पूर्वानुराग, मान तथा प्रवास तीनों प्रकार से वियोग दिखाया गया है । विरह की शास्त्रीय दस दशाएँ अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण तो आ ही गई है ; इसके अतिरिक्त भी अनेक दशाएँ देखी जा सकती हैं । उपर्युक्त राग घनाश्री के उदाहरण में प्रवास के कारण वियोग हुआ है तथा अभिलाषा, चिंता, स्मरण, उद्वेग और उन्माद दशाएँ दिखाई गई हैं । कुछ ऐसी भी दशाएँ हैं जो इन दस दशाओं से परे हैं ।

'छैल छवीले की छवि आँखों में बसी हुई है, अतः उनके सम्मुख न रहने पर भी गोपी

१. राग-रत्नाकर, राधा-कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. वही ।

जिधर देखती है उधर ही साँवरे की मूरत दिखाई देती है। भूलाने से भूलती नहीं। घर में छिप कर बैठी है, तो आखें आकर भलकने लगती हैं। मोहन मूर्ति मुड़ मुड़कर मृदुल ढंग से मुस्कुरा देती हैं। जैसे 'चाक पर मन चढ़ गया हो, चकफेरी सी खाता रहता है।'

हेली नेह-रीति कछु अटपटी कैसे कै कहि जाई।

छैल छवीले नन्द नन्दन की छवि रही नैन समाई।

जित देखी तित साँहरो हेली और न कछु सुहाई।

विसरायो विसरै नहीं हेली करिए कौन उपाई।

हों जब दुरि घर में रहों री भलकै अखियन आई।

मोहन मूरति माधुरि हेली मुरि मुरि मृदु मुसकाई।

चाक चढ्यो सो मन रहे हेली चक फेरी सी खाय।

किवलनुमा की सी भई री वाही दिसि ठहराय।^१

इसमें स्मरण, उन्माद का कुछ मिश्रित सा रूप है। इससे अधिक प्रेम की ऐसी अवस्था है, जो इन दस दशाओं की परिभाषा में नहीं आ सकती। मनोविज्ञान में जिसे 'दिवा-स्वप्न' कहते हैं, वही स्थिति कुछ नायिका की है। 'रस-मग्नता' भी एक दशा हो सकती है, जो नायिका को नायक के रस में निरन्तर मग्न रखती है। इस प्रकार के अनेक चित्र इन शृंगारिक चित्रों में प्राप्त होते हैं।

शृंगार रसांतर्गत निदिष्ट पुरुषोचित आठ भाव, भाव, शोभा, विलास, माधुर्य, गांभीर्य, ललित, औदार्य, तेज तथा स्त्रियोचित बारह भाव, भाव, हार, हेला, शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, शौर्य, प्रागल्भ्य, उदारता, स्थिरता, गम्भीरता दोनों ही प्राप्त हो जाते हैं। हाव तथा वचन वक्रता के भेद—आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुताप, संलाप, अपलाप, सन्देश, निर्देश, तत्व देश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश तीन प्रकार की व्याजोक्ति, रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति, सभी के उदाहरण इस काव्य में दृष्टिगत होते हैं। 'लीला हाव' का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, जहाँ कृष्ण राधा का और राधा कृष्ण का वेप धारण कर आते हैं :—

‘भोर ही आज भले वनि आए देखत मेरे नैन सिराए।

चटकीलौ, पट पीत बदलि कै सुन्दरि सुरंग चूनरी लाए।

फढ्यो भाल बेदा जाचक कौ अलकनि पद-भूषन उरभाए।

वलि वलि जाऊं भावती छवि पर ब्रजनिधि सोए भाग जगाए।^२

इसी प्रकार 'विलास हाव' में नायिका भाँति भाँति से नायक को रिभाती है। मालश्री रागिनी अपने प्रिय को रिभाने के लिए कुसुम रचित आभूषण पहनती है तथा काम-भावना के साथ हँसती है।

‘कुसुम रचित भूषण पहर विहरत पिय के संग।

मालसिरी नवयौवना हंसतहि सहित अनंग।^३

१. हरिपद संग्रह, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० २६८।

२. ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० हरिनारायण शर्मा, पृ० २०५।

३. राग माला, यशोदानन्दन शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

शृंगार रस में आलम्बन विभाव का विशेष रूप से महत्त्व है। आलम्बन के अन्तर्गत नायक तथा नायिका का वर्णन होता है। इस वर्णन में संस्कृत तथा हिन्दी कवियों ने विशेष रुचि दिखाई है, अतः नायक तथा नायिकाओं के गुण, अवस्था, रति, तथा देश आदि के आधार पर भेद-प्रभेद होते चले गए। परिणाम यह हुआ कि नायक के तो धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित तथा धीर शान्त भेद करके, प्रत्येक के अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट चार उपभेद करके कवि सन्तुष्ट हो गए, परन्तु नायिका भेद एक अलग विषय बन गया जिनको लेकर कवियों ने अपनी मौलिकता का परिचय देना प्रारम्भ किया, फलस्वरूप नायिकाओं की संख्या बढ़ती ही गई।

यहाँ पर नायक-नायिका भेद का विस्तृत विवेचन करना अभीष्ट नहीं है। केवल इतना दिखा देना पर्याप्त होगा कि, इस काव्य में नायक-नायिका भेद का क्या स्वरूप रहा। राग-रागिनी वर्णन में तथा कृष्ण-राधा को आधार बना कर लिखे गए काव्य में अधिकतर नायक को धीर ललित ही दिखाया गया। धीर ललित नायक शारीरिक रूप से सर्वांगीण सौन्दर्यपूर्ण होता है। अन्य नायकों की अपेक्षा उसमें एक गुण अधिक होता है। वह कलाओं में निपुण होता है। राग स्वाभाविक रूप से ही संगीत कला से पूर्ण होते हैं। कृष्ण भी संगीत तथा नृत्य कला में दक्ष थे। नायिका के प्रति आचरण की दृष्टि से नायक के चार भेद हैं। अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट। अनुकूल नायक को केवल एक पत्नी में रत रहना चाहिए। शठ अनेक स्त्रियों के साथ रहकर भी प्रेमिका को कपटीप्रेम करने वाला तथा धृष्ट धृष्टता के साथ अनेक स्त्रियों के साथ एक साथ विहार करने वाला नायक होता है। दक्षिण नायक एक से अधिक प्रेमिकाओं को समान रूप से प्रेम करता है। संगीत-काव्य का नायक सर्वत्र दक्षिण नायक है। कृष्ण सभी गोपियों को समान भाव से प्रेम करने वाले हैं, अतः दक्षिण नायक हैं। राग-नायक भी एकाधिक रमणियों के साथ आनन्द का उपभोग करते हैं। राग वसंत स्वयं कला प्रेमी है और गायिका और नर्तकी तरुणियों के मध्य शोभित है।

‘सिर मौर पपा उर मोतिन माल रसाल कि मंजरी कानि धरी।

तन सुन्दर रूप अनूप ज्यों पट पीत लसै कर फूल छरी।

मधुरै सुर गाय नचै तरुनी सब प्रीतम कै अनुराग भरी।

रितुराज वसंत विलोकत है नव पल्लव वसु द्रुम कुंज हरी।^१

राग श्री भी कला में अत्यन्त ‘परवीन’ है, अतः ‘तरुनी’ को रिझाता रहता है। मालव कौशिक कोक तथा कला में प्रवीण है और तरुणियों का मन रंजन करता रहता है। यह स्वरूप धीर ललित, दक्षिण नायक का है। प्रत्येक राग नायक की पाँच पाँच भार्या होने के कारण, वह स्वतः दक्षिण नायक हो जाता है।

उदाहरण काव्य में, सखियों के साथ कृष्ण भी आनन्द मनाते हैं, परन्तु कृष्ण के प्रेम में समानता होने के कारण किसी के हृदय में ईर्ष्यादि भाव नहीं है।

‘आज की भूलन पर हौं वारी।

१. राग-रत्नाकर—राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

भूलत चंपक-वरनी राधा भुलवत स्याम विहारी ।

मुरज वजावति सखी विसाखा गावति अलि ललीता री ।

यह सुख निरखि महल की 'व्रजनिधि' अखियां टरत न टारी ।'^१

नायिकाओं में स्वकीया, परकीया तथा गणिका तीनों प्रकार के वर्णन मिलते हैं । राधा, स्वकीया नायिका के रूप में भी मिलती है, परकीया के रूप में भी । जहाँ दाम्पत्य भाव की प्रतिष्ठापना की गई है, वहाँ स्वकीया भाव दिखाया गया है । माधुर्य भाव की भक्ति में राधिका का परकीया रूप प्रसिद्ध ही है । केवल शृंगार ही वर्ण्य विषय होने के कारण स्वकीया के भेद मुग्धा, नवोद्धा, मध्या, प्रौढ़ा, इनके प्रभेद जात-यौवना, अजात यौवना, धीरा, अधीरा, धीराधीरा, इनमें भी ज्येष्ठा-कनिष्ठा, परकीया के ऊद्धा, अतूद्धा तथा अन्य भेद, तीन प्रकार की गणिका, अन्य सुरतिदुखिता, मानवती, गविता, सभी प्राप्त हो जाते हैं । रति की दृष्टि से दस प्रकार की नायिकाएँ, प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी तथा आगतपतिका का वर्णन भी मिल जाता है । उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा का विभाजन भी दृष्टिगत होता है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में संगीत-काव्य में प्राप्त नायिका-भेद की विशेषताएँ दिखा देना पर्याप्त होगा । नायिका-भेद की दृष्टि से आलोचना करना पिष्ट-पेषण मात्र होगा, अतएव संगीत-काव्य की नायिकाओं की विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है ।

सर्व प्रथम तो इस काव्य में प्रयुक्त समस्त नायक तथा नायिकाएँ किसी न किसी कला में निपुण हैं । संगीत, नृत्य तथा चित्र के अतिरिक्त काम कला को भी कलाओं में स्थान दिया गया है । अतः मूल रूप से ने नायिकाएँ कला-पारखी हैं, इसके पश्चात् काव्य-शास्त्र के आधार पर मुग्धा, मध्या आदि के गुणों से समन्वित हैं । इनका एक नवीन रूप, संगीत-काव्य में, पाठकों के समक्ष आया है । नामकरण करते समय इन्हें 'मुग्धा-गायिका' 'मुग्धा-नर्तकी', 'मुग्धा-कामिनी' आदि कहा जा सकता है, अथवा कलाकारिता एक सामान्य गुण होने के कारण 'कलाविद् मध्या', 'कलाविद् प्रौढ़ा' आदि कह कर पुकारा जा सकता है । ये नाम नवीन कल्पना-जन्य अवश्य हैं, परन्तु केवल मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा कह देने से इन संगीत-नायिकाओं का स्वरूप सम्मुख नहीं आता । अतः प्रचलित नामों में कुछ परिवर्द्धन करना अत्यन्त आवश्यक है ।

उदाहरण के लिए:—

‘छाजति है अंग अंग वनी छवि स्याम घटा के छटा की छई ।

केस सुदेस लगै अति ही रंग उज्जल है तन सारी नई ।

पल्लव आसन बैठी तिया वन चन्दन के है सुवास भई ।

हरिवल्लभ वीन लए कर मैं यह दक्षिण गूजरी बँस लई ।’^२

यह दक्षिण गूजरी रागिनी, वासक सज्जा नायिका है, जो अपने प्रिय के लिए सेज

१. व्रजनिधि ग्रन्थावली, पु० ह० ना० शर्मा, पृ० २५० ।

२. संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

सजाकर तथा शृंगार करके बैठी है। रस शास्त्र के लक्षणों के अनुसार वासक सज्जा नायिका प्रिय-मिलन के लिए सेजादि सजा कर बैठी रहती है।

‘सार्जहि सेज सिंगार तिय पिय मिलाप के काज।

वासक सज्जा नाइका ताहि कहत कविराज।’^१

रागिनी नायिका में वासक सज्जा नायिका से अधिक एक विशेषता है कि वह ‘वीना’ लिए प्रतीक्षा कर रही है, अतः इसे ‘कलाविद वासक सज्जा’ नायिका कहा जा सकता है। लगभग सभी रागमालाओं में वर्णित नायिकाओं का स्वरूप ऐसा ही है। उदाहरण-काव्य की आलम्बन स्वरूपा अथवा रस को आश्रय देने वाली नायिका भी यदि संगीतादि ललित कलाओं में निपुण नहीं होती तो काम अथवा केलि कला में पारंगत होती है।

इसके अतिरिक्त नायिका भेद में एक प्रकार का वर्गीकरण और प्राप्त होता है, जिसमें विशेष रागों को उनमें निहित भावों के अनुसार विशेष प्रकार की नायिका से सम्बद्ध किया गया है। उदाहरण के लिए, भैरवी को यदि कवि ने शुक्लाभिसारिका के रूप में देखा तो उसे ‘भैरवी शुक्लाभिसारिका’ का एक नवीन रूप देकर नायिका भेद के प्रभेदों में संख्या बढ़ा दी है।

राग पहाड़ी ‘मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी’ नायिका बनी है।

‘पहाड़ी

प्रिय परदेस चलयो चहत, सुनि भांमनि सुधि भूलि।

गह्यो पांव तव पाहिडा, ग्रीवा डारि दुकूल।

चलत प्रवास प्रिय सुनि कै भई उदास आई तिय पास लै उदास कुछ कहि रही।

भूले पान पान बोलत है आन आन लागै मैं वान हिय गाढ़ी पीर सहि रही।

अन से नयन दोऊ देपत है पिय मुख वैन हू कह्यो न जात दुप आगि दहि रही।

पाहिडा सी प्यारी वह प्यारे रंगाले लाल जूँ कौ चरन सरोज कर कंजन सौं गहि रही।’^२

प्रवत्स्यत्प्रेयसी वह नायिका है, जिसका पति विदेश जा रहा है। मुग्धा होने के कारण दुखी होती है, गाढ़ी पीर को सहन कर रही है, दोनों नेत्रों से देखती रहती है, पर कुछ कह नहीं पाती, केवल कमल के समान हाथों से चरण सरोजों को पकड़ लेती है। पहाड़ी रागिनी के स्वर-विस्तार में कुछ करुणा तथा पीड़ा के स्वर निकलते जान पड़ते हैं। मधुर रागिनी होने के नाते वियोग शृंगार के रूप में इसे कवि ने देखा है। वियोगिनी से भी अधिक इस नायिका की दशा करुण है, जो प्रिय को जाते देखकर दुखी है और अपने अन्तर की व्यथा को शब्दों

१. जगद्विनोद, पद्माकर, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संपादित, पृ० २६।

२. रागमाला, यशोदानन्दन शुक्ल, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

में प्रकट भी नहीं कर सकती, अतः कवि ने 'पहाड़ी प्रवत्स्यत्पतिका' नायिका का वर्णन किया है। कहीं कहीं कवि ने स्वयं ही दोनों रूपों का मिश्रण करके नामकरण कर दिया है। नायिका का लक्षण देकर राग तथा रागिनी का वही स्वरूप दिखाया है।

‘धीराधीरा लक्षण

पिय आए रति...तिय जिय अपनो जान ।

ताको... ...धीराधीरा मान ।

अथ सूरती (सौरठी) धीराधीरा

सुप से बिहारी सारी रैन के पुमारी

आवत थके हैं अब हालके ।

अंजन...महा उर को रंग भाल पीक लीक

मु... रे विनगन माल के ।

प्रेम रस भाते रंग ... अलसाते आजु आए उठि

भोर ही जगाए...बाल के ।

भूमत भूपत भुकि उधरत कली ऐसे ए

खुले है अधखुले नैन लाल के ।^१

यहाँ रागिनी तथा नायिका के स्वरूप में साम्य दिखाकर कवि ने एक नए प्रकार का वर्गीकरण कर दिया है। ऐसा प्रभेद नायकों में भी मिलता है। भैरव अनुकूल नायक है ।^२

संगीत-काव्य के ‘नायक-नायिका भेद’ का तीसरा वर्गीकरण, नायिकाओं का सम्पर्क छन्दों से जोड़कर, किया गया है। नायक तथा नायिका के परस्परत्व तथा कोमलत्व के आधार पर, छन्दों की लय से साम्य दिखाकर नायिका-भेद किया गया है।

भैरव को शार्दूलविक्रीडित छन्द में दिखाकर उसका नाम ‘भैरव शार्दूल विक्रीडित’ दे दिया गया है। रागिनी सौरठी को ‘भुजंगप्रयात’ में लिखकर उसका नाम ‘सौरठी भुजंग-प्रयात’ दे दिया गया है।

‘सदा दाड़िमी बीज से दन्त सोहैं ।

घरे हेम भूषा विभूषा सहिहैं ।

लसे हाथ चूरी, महा गौर काया ।

१. श्री मन्मालवीय वेनीराम कृत रागमाला, प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग। यह ग्रन्थ दुर्भाग्यवश असावधानी के कारण नष्ट हो चुका है। दोमक से खाई हुई प्रति लेखिका को देखने को मिली। यह ग्रन्थ संगीत-नायिका-भेद की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

२. ‘और को रूप पै सुनै अरु कोऊ कतै कऊ ठीक चढ़ाने ।
आप तार सो नेह निवाहत संकर लो गिरिजा जिमि ठानै ।
राषत है हरि लो हिय मो निज नारि के पूरत...समाने ।
वाही के रंग मो रातो रहे तिय ए अनुकूल के लछन जाने ।’

श्री मन्मालवीय वेनीराम द्वारा रचित रागमाला, प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग।

तहां चित्र है वस्त्र सोभा लही है ।

हिये लाल चोली दिये भाल टीका ।

मिली लट मोतिनी सों भा रही है ।^१

सोरठी के इस स्वरूप वर्णन को पढ़कर रागिनी का भुजंगप्रयात छन्द के समान शृंगारमय राजसी रूप कल्पना में आता है । सोरठी शृंगारिक प्रवृत्ति की रागिनी है । 'भुजंगप्रयात' छन्द में गेयत्व बहुत अधिक है, अतः दोनों के गुणों का सम्मेलन कर, 'सोरठी भुजंगप्रयात' के नाम से एक नवीन नायिका का निर्माण हो जाता है ।

इस प्रकार नायक-नायिका भेद की दृष्टि से संगीत-काव्य में पारंपरिक वर्णनों को छोड़कर मौलिक सामग्री बहुत अधिक है । इन मुक्तकों की परीक्षा करने पर शृंगार रस के अनुभाव, संचारी, भाव, हाव तथा हेला आदि के नवीन रूपों का परिचय मिलता है ।

नवरसों में चार रस शृंगार, वीर, रौद्र, तथा वीभत्स स्वाधीन रस हैं और शेष इन्हीं से उत्पन्न होते हैं । शृंगार रस से हास, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है, अतः इन्हीं प्रमुख चार रसों की विवेचना यहाँ की जा रही है । संगीत काव्य में वास्तव में केवल शृंगार रस का ही वर्णन है, अतः शृंगार का विस्तृत वर्णन ऊपर किया जा चुका है, अन्य सभी रस शृंगार के आश्रित होकर आते हैं, फल स्वरूप वीर भी युद्ध में जाकर वीरत्व दिखाने में समर्थ नहीं है । शृंगार से प्रेरित वीर रस है । काम भाव से प्रेरित रौद्र रस प्राप्त होता है । शृंगार की विचित्रता अथवा प्रेमाधिव्य के कारण हास्य मिलता है । करुण वियोग जन्य ही है । नायक अथवा नायिका का असीम सौन्दर्य अद्भुत की सृष्टि कराता है । शृंगार का, अश्लीलता की सीमा पर पहुँचा हुआ वर्णन, वीभत्स रस को जागृत करता है । राग तथा रागिनियों का योगी तथा योगिनी के समान अलंकरण, भयानक को उद्दीप्त कर सकता है तथा वियोग की अत्यधिक पीड़ा निर्वेद की सृष्टि करके शान्त रस को प्रोत्साहित करती है । सारांश यह है कि वर्णन चाहे किसी भी रस का किया गया हो, शृंगार रस, प्रकाश अथवा प्रच्छन्न रूप में अवश्य निहित रहता है ।

वीररस का एक उद्धरण देशाप के मल्ल रूप में प्राप्त होता है । रागिनी देशाप 'पवा ठोक कर शरद मेघ के गर्जन के समान आवाज़ करती है । मल्लयुद्ध के लिए कछनी कसे है । गुमान हृदय में धारण किए है । बाहु विशाल हैं, उसके उंचंड रूप से भूखंड में कम्पन हो जाता है ।' ऐसा प्रचंड वीर रूप धारण करने पर भी 'प्रीतम चितु पैम लपि पगै' इससे यही स्पष्ट है कि प्रियतम के प्रेम के कारण ही यह रूप बनाया है ।

'भाल भेप देशाप विराजै । जाकी दुति हिमकर छवि लाजै ।

पवो ठोकि कर रहि अवाज । मानो शरद मेघ की गाज ।

मल जुघ को कछनी किये । है सन मधु गुमान हि लिए ।

बाहु विसाल ऊचंडु, जाके रूप कपै भुव खंडु ।

ताकी अली माल वपु धारें । आनद उमगि अवागाव भालरें ।

१. राग-विवेक, पुरुषोत्तम, सरस्वती-भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

भाल रूप इक मांडी लगै । प्रीतम चित्तु पैम लपि पगै ।

लगति लगति ऊपर चढ़ि गई । नीचे नागन बनि फिरि लई ।^१

इस अंश में देशाख रागिनी आश्रय है, आलम्बन प्रिय है । 'पवा ठोकना', कायिक अनुभाव, 'आवाज करना' वाचिक तथा 'गुमान का भाव' तथा 'मल्ल-युद्ध की भावना', सात्त्विक अनुभाव है । आवेग, गर्व, अमर्ष तथा उग्रता आदि संचारी भावों का समावेश है ।

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है । रौद्र शृंगार का विरोधी रस है, अतएव रौद्र का अधिक प्रयोग असम्भव है । कभी कभी कवि वीरत्व का वर्णन करते हुए ही उसका आवश्यक अंग समझकर कोप का निर्देश करता है, अतः लाल रंग के नेत्रों का दिखाना, भुजाओं का फड़काना दिखाकर रौद्र की सृष्टि करना चाहता है । यहाँ रौद्र रस का पूर्ण परिपाक नहीं हो पाता ।

वीभत्स रस के दो भेद होते हैं, उद्धेजन तथा क्षोभन । उद्धेजन का प्रदर्शन उछल-कूद द्वारा और क्षोभन का प्रदर्शन रुधिरपातादि द्वारा किया जाता है ।^२ इस व्याख्या के अनुसार वीररस के अन्तर्गत ही वीभत्स का प्रसार होता दिखाई देता है । जहाँ राग नट 'भुकि बाहत है कर बाल भरा भरि सत्रुन के कर सीस भरै', तथा 'लपट्यो अति श्रौनति धारन सौं',^३ वहाँ वीभत्स कहा जा सकता है, परन्तु यहाँ 'शीश को भाङना' तथा 'श्रोणित की धाराएँ वहाना' दोनों युद्धवीर के परिचायक हैं, अतः केवल लक्षण के आधार पर काव्य में वीभत्स का प्रयोग दिखाना उचित नहीं होगा ।

वीभत्स रस का स्थायी भाव घृणा है । घृणा को उत्पन्न करने में गन्दी गली, तथा कूड़े आदि का वर्णन सहायक होता है । मुखाकृति से सम्बन्धित ऐसे भाव या अंग-प्रत्यंग का वर्णन जिनको देख या सुनकर नाक सिकुड़ जाए, जुगुप्सा को जगाती हैं । ऐसे वर्णन संगीत-काव्य में नहीं हैं । कहीं कहीं घोर शृंगार का वासनात्मक चित्र खींच दिया जाता है, उसको सभ्यता के निम्नतम स्तर पर भी न रख सकने के कारण अश्लील तथा घृणित कहा जा सकता है । वीभत्स रस इसी रूप में प्राप्त हो सकता है । ऐसे स्थल भी नगण्य से हैं ।

'सरक्यो सिंगार अंग-भूखन दरकि रहे,

मुख पै अलक छूटि रस सारसानी है ।

तरकी तनी हू और अंगिया दरकि रही,

नीवी बंध डीली नीवी सरस सुहानी है ।^४

अथवा रंगरेज नायक से नायिका अपनी 'चुनरिया' रँगाने के लिए अनुरोध करती है, परन्तु

१. रागमाला, लल्लिभन दास, भारत कला भवन, बनारस यूनिवर्सिटी, बनारस ।

२. 'उद्धेजनः क्षोभन (ण) इच वीभत्सो द्विविधः स्मृतः ।

उद्धेजनः स्याल्लुत्थाद्यः क्षोभनो (णो) रुधिरादिभिः । १६।'

अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ५७ ।

३. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

४. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १५३ ।

मूल्य रुपये के स्थान पर 'अधरन का रस' देने के लिए तत्पर हो जाती है।

'चुनरिया मेंड़को रंगा दे रे छैला रंगरेजा तैं।

पिय कुं मैं कहुं जा, मोरे पास तो रुपइया नाहीं।

मोल चहै तो क्या करूं, मोरे अधरन को रस ले जा तैं।'^१

ऐसे चित्र अशिष्टता से पूर्ण हैं। साहित्यिक सौन्दर्य को नष्ट करने के कारण घृणोत्पादक हैं, अतः वीभत्स रस के अन्तर्गत लिए जा सकते हैं।

हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' है। जिस रूप, अलंकरण तथा दृश्य को देखकर हँसी आए, वहाँ हास्य रस होता है। अधिकतर रूपादि में वैचित्र्य होने पर ही हास उत्पन्न होता है। शृंगार रस में प्रयुक्त हास्य रस शृंगार से उत्पन्न है, अतः कृष्ण तथा राधिका का अलौकिक सौन्दर्य अथवा स्वरूप देखकर हास्य की उत्पत्ति होती है। कहीं कहीं लीला हाव के कारण पुरुष तथा स्त्री के परस्पर वस्त्रादि धारण कर लेने पर हास भाव जागृत हो जाता है। हास्य की सृष्टि शब्दावली में नहीं, वरन् वातावरण के द्वारा होती है। उस दृष्टि से होली प्रसंगों में कहीं कहीं हास्य रस का प्रादुर्भाव होता है। होली में कृष्ण गोपी की आंखों में गुलाल डाल देते हैं, तब सम्मुख आकर मटकते हैं, कमर लटकाते हैं, नैन नचाते हैं, भौंह उचका कर मुस्कराते हुए केसर की भरी पिचकारी लेकर भाग जाते हैं, यह दृश्य ही हास्योत्पादक है।

'अनि हे माहि को आंखिन माहि डारि।

गुलाल डीठ लंगर यह नंद कुंवर ने वरजोरी करकर।

सनमुख होकर मटकत है लटकावत कटि कौ।

नैन नचावत भौंह उचकावत मुसकावत है धावत इत कौ।

कर पिचकारी ले केसरिया भर भर।'^२

इसी प्रकार अद्भुत रस की सृष्टि कृष्ण राधा के असीम सौन्दर्य की कल्पना में है। मनमोहन के अलौकिक सौन्दर्य के कारण उस रूप को देखने वाले के हृदय में आश्चर्य जागता है। उसे सावन के अन्धे के समान हरा ही हरा सूझता है। लोक-लाज, कुलकानि वेद-विधि आदि छोड़ देता है। यही कृष्ण के रूप से आश्चर्यान्वित होने वाली गोपियों के कायिक तथा सात्विक अनुभाव हैं।

'जाकी मनमोहन दृष्टि पर्यौ।

सो तो भयो सावन की आंधी, सूझत रंग हर्यौ।

लोक-लाज कुल कानि वेद विधि छांडत नाहि डर्यौ।

ब्रजनिधि रूप उजागर नागर गुन-सागर वर चर्यौ।'^३

करुण रस, जिसका स्थायी भाव शोक है, वह नगण्य प्राय है। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद है, अतः यह शृंगारिक संगीत-काव्य का विरोधी रस है। यदि संसार से

१. मानसिंह कृत ध्रुपद और धमार, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।

२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पृ० हरिनारायण शर्मा, पृ० १६३।

३. ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पृ० हरिनारायण शर्मा, पृ० २१८।

विरक्ति की भावना होगी तो शृंगार काव्य की सृष्टि नहीं हो सकती। उदाहरण काव्य में भक्ति के भजनों में अवश्य ऐसे कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। उस समय अधिकांशतः भक्ति भी राधा कृष्ण के माधुर्य रूप की प्रचलित थी, अतः ऐसे उद्धरण कम ही प्राप्त होते हैं।

सारांश यह कि संगीत-काव्य में एक ओर जहाँ शृंगार रस का संस्कृत शास्त्र ग्रंथों के अनुसार सर्वांग वर्णन हुआ है, वहीं शृंगार का नवीन रूप बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अन्य रस भी अल्प मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं।

वस्तु वर्णन

वस्तु वर्णन के अन्तर्गत उन वर्णनों को लिया जाता है, जिनमें कवि के कौशल से वस्तु विशेष का सौन्दर्य बढ़ गया है। वर्ण्य वस्तुएँ अधिकतर राजसी वातावरण से सम्बन्धित ही थीं, अतएव हाथी घोड़े आदि का वर्णन और आभूषण-वस्त्रादि का वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। इन वस्तुओं का वर्णन आलम्बन के शृंगार और स्वरूप को सुन्दर बनाने के लिए ही किया गया है। मुख्य रूप से नायिका अथवा किसी रागिनी का ही वर्णन करना कवि प्रारंभ करता है; परन्तु आभूषणादि के प्रति प्रेम होने के कारण प्रमुखता वस्तु वर्णन को दे देता है।

रागिनी खंभावती के वर्णन में कवि उसके वस्त्रों का वर्णन करते हुए कहता है :—

‘भूषण अंग जराव जरे तिन की दुति कुंदन तै सरसावै ।

अंबर लाल हरी अंगिया उर मोतिन माल विसाल सुहावै ।’

अथवा शुद्ध बंगाल का वर्णन करते समय कल्याण मिश्र कहते हैं—

‘पीत वशन तनु गौर छवि कुंडल मुकुट जराव

शुद्ध बंगालो कानरो मिलत होत सुप भाव ।’

इस प्रकार के वर्णनों में जो विशेषता पाई जाती है, वह यह कि कवि ने सदैव रंगों के सम्मिलित प्रभाव को लक्ष्य बनाकर यह देखने का प्रयास किया है कि राग अथवा रागिनी के शरीर के वर्ण पर किस रंग का वस्त्र, किन रंगों के आभूषणों अथवा पुष्पों आदि के साथ कितना सुन्दर लग रहा है। ऐसा वर्णन संगीत-काव्य में विशेष रूप से अलग महत्त्व रखता है। इससे कवियों का वर्ण-परिज्ञान, चित्रोपमता आदि का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही कवि यह बताना चाहता है कि संगीत में राग विशेष में प्रयुक्त अलग अलग स्वर महत्त्व नहीं रखते, वरन् स्वरों का सामुदायिक गान तथा स्वरों का परस्पर वादित्व, समवादित्व और विवादित्व महत्त्व रखता है। राग का प्रभाव सम्पूर्ण रूप से वर्णन पर पड़ता है। उसी की कल्पना करके कवि जब रागों का स्वरूप अंकित करने लगता है, तो राग का नख-

१. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

शिख वर्णन न करके एक सामूहिक प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। मेघ मल्हार का शरीर नीले कमल के समान है, परन्तु शरीर में कांति है। उस पर पीले वस्त्र कटि में शोभित हैं। अत्यन्त उज्ज्वल चन्द्रिका से भी अधिक छवि उत्पन्न हो रही है। यौवन की ज्योति शरीर में है ही, फिर मुस्कान मुख पर शोभित है।

‘नील सरोज लो देह दिपै कटि में पट पीत विराजतु है।

अति उज्जल चंद उज्यारिहुं तैं उपरे ना महाछवि छाजतु है।

तन जोवन जोति लसे हरिबल्लभ चंद हंसे मुप साजतु है।

जल जाचतु चातक जावक लौ हय मेघ सुराग यो गाजत है।”

वस्तु वर्णन में उपमान के रूप में लाने के लिए कवियों की रुचि अधिकतर प्रकृति के अंग, भिन्न भिन्न रंगों के पुष्प, पल्लव, द्रुम तथा विभिन्न रंगों के मोतियों की ओर रही है। इसका एक कारण यह है कि राजसी वैभव में पले तथा अम्यस्त संगीतकार किसी भी रूप को कांति से अलग नहीं देख पाते थे, अतः चमकते हुए भिन्न भिन्न वर्णों के मोती उनकी कल्पना में सदैव उपस्थित रहते थे।

पुष्पों में नील सरोज, लाल सरोज, कुमुदनी, चंपक, रसाल की मंजरी, कुंद, केसर, वृक्षों में चंदन, बहुमूल्य पत्थरों में स्वर्ण, प्रवाल, कुन्दन, मुक्ता आदि प्रिय रहे हैं। हरे रंग के लिए पल्लव का आश्रय लिया है। इन्हीं के आधार पर वर्णों के सहारे रागों का मन को हरने वाला रंजक रूप कवियों ने उपस्थित किया है। इसके अतिरिक्त आभूषणों के लिए नागों को भी लिया गया है। जहाँ भी राग और रागिनी का शांत रस का स्वरूप है, वहीं नाग को धारण किया गया बताया है। इससे नगर और वन के आभूषणों का अंतर स्पष्ट होता है। शृंगार का अर्थ जहाँ अलंकरण है, उसका विभाजन निम्न दृष्टियों से किया जा सकता है।

एक—सौन्दर्य वृद्धि में सहायक प्रयुक्त सामग्री। इसके दो रूप प्राप्त होते हैं—

(क) राजसी (ख) नैसर्गिक

दो—रस की दृष्टि से अलंकरण सामग्री—

(क) शृंगार रसानुकूल (ख) वीर रसानुकूल (ग) शांत रसानुकूल।

तीन—संस्कृति के अनुकूल—

(क) हिन्दू (ख) मुगल

चार—चित्र शैलियों के अनुसार—

इन सभी के दो रूप, पुरुष रूप और स्त्री रूप, प्रभेद हो जाते हैं। अलंकरण के हेतु प्रयुक्त सामग्री के आधार पर दो रूप प्राप्त होते हैं।

१—राजसी तथा नैसर्गिक

राजसी शृंगार में रागों तथा रागिनियों को सुन्दर और रंगीन वस्त्रों से आवृत किया गया है। आभूषणों के स्थान पर बहुमूल्य पत्थर पहनाए गए हैं। शरीर में चंदन तथा कुमकुम का लेप कराया गया है। संग में सखी अथवा परिचारिकाएँ रहती हैं, ताम्बूल का सेवन

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

किया जाता है ।

ऐसे राजसी वैभव से सम्पन्न रागिनी नायिका का सम्बन्ध राग नायक से भी ऐसा दिखाया गया है, जिसमें नायक के साथ राग रंग कर रही है अथवा मान करके बैठी है । इससे नायिका का अहं तथा उसका रूप-गर्व स्पष्ट रूप से आभासित होता है ।

श्री राग की स्त्री गुणकरी प्रिय की प्राण स्वरूपा है । श्याम वर्ण की है, परन्तु सखियों के मध्य बैठी है । श्वेत वस्त्र धारण किए हैं, केसर के मोती की झलक बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है ।^१

‘गोरी’ जड़ाऊ फूल शीश पर धारण किए हैं । श्वेताम्बर में अत्यन्त सुन्दर लगती है, अतः ‘गुमान भरी प्रीतम को रंग दिखाती है ।’

‘सीस को फूल जराय जरौ जनु रागन की मुख चंद विराजै ।

वाल रसाल कि मंजरि कानि धरै मक्रांकृत कुंडल राजै ।

अंबर स्वेत मनोहर मुपन उज्ज्वल अंग महा छवि छाजै ।

गौरी गुमान भरी गति सौं अति रंग दिखावत प्रीतम काजे ।’^२

रामकली जराऊ भूषण पहने हैं, गले में मोतियों की माला है । कंचन की सी शरीर की छवि पर नीलांबर अत्यन्त शोभित हो रहा है । यह भी नायक को अपराधी देखकर उससे मान किए बैठी हैं ।^३

इसी प्रकार राजसी अलंकरण युक्त रागिनियाँ सुगन्धित पदार्थों का सेवन करती हैं । घनाश्री ‘मृगमद तिलक सुवास’ माथे पर दिए हैं,^४ भूपाली वस्त्रों को केसर में डुबोए है,^५ और देसकार ‘चंदन सों गात में चंदन चिरचि’ कर बैठी है ।^६ स्त्री रागों में भी मदिरा

१. ‘श्याम वरन संग गूजरी पिक बंनी प्रीय प्राण ।

स्वेत वसन वेशर झलक मति गुनकरी सुजान ।’

रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. ‘भूषन अंग जराय जरै, उर मोतिन माल विसाल ठई है ।

अंबर नील अनूप बन्यो तन कंचन की छवि छोन लई है ।

नायक को अपराध लघ्यो मनुहारिन तें मन फेरि गई है ।

राजत रूप गुमान भरी यह रामकली मन मान गई है ।’

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

४. ‘सुगंध घनासी लोचनह मृगमद तिलक सुवास’

रागमाला, हरिश्चन्द्र, श्री अभय जैन, ग्रन्थालय, बीकानेर ।

५. ‘भोपाली चिरहन खड़ी केसर बोरे चीर’, हीयहुलाल, मोतीचंद जी खजांची संग्रहालय, बीकानेर ।

६. ‘कंचन सों गात तामें चंदन चिरचि राख्यो’, राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

का सेवन प्रचलित है। तुरकतोड़ी सुरा का सेवन करती है।^१

राजसी शृंगार से युक्त पुरुष राग विष्णु स्वरूप शंख, गदा, चक्र, कमल धारी भी हैं और मनोहर आभूषणों को धारण किए विविध वर्णों के वस्त्र पहने बहुमूल्य वस्तुओं से अपने शरीर को सुसज्जित किए राग, रागिनियों अथवा सखियों के साथ राग-रंग करते भी दिखाई देते हैं। अत्यन्त राग पूर्ण तथा विलास प्रिय दिखाने के लिए कहीं कहीं मदिरा में उन्मत्त भी दिखाया है।

‘राग सारंग का स्वरूप

गदा संख धरिनु^२ चक्र धरि च्यारि मुजातन स्याम

पीत वसन बाहन गरुड़ सारंग याको नाम।’^३

यह रूप विष्णु के रूप से साम्य रखता है।

राग श्याम शृंगार किए युवतियों के साथ विलास में रत हैं।

‘श्रीव विसाल लसै मनि माल सुभाल में राजत कुमकुम टीको।

छीन लई छवि स्याम घटानि की स्याम वनों तनु ही अति नीको।’^४

सोहत पीत दुकूल महा दुति देपत कंचनु लागतु फीको।

हास विलास करै जुवती हरिवल्लभ स्याम है भावतो नीको।’

कहीं कहीं राजसी शृंगार के प्रेमी कवि ने भैरव को स्त्री बना दिया है और उसे शिव का प्रसिद्ध योगी रूप न देकर राजसी रूप दिया है।

‘तिय भैरों भूषण अंग साजे। काम रूप कामिण संग राजे।

करत किलोल काम रस भीनों। भुजा पसारि आलिंगन दीनों।

वढ्यो नेह नैन टक लागी। रीति तरंग अनंग अनुरागी।

चेरी ततुर चमर कर लीयो। अति विचित्र चितवत चित दियो।

महल सुरंग सेज सुखकारी। ये ते रुचि सुप पावत पिय प्यारी।’^५

नैसर्गिक शृंगार में प्राकृतिक वस्तुओं से राग तथा रागिनियों का शृंगार किया गया है। आभूषण आधिकतर पुष्पों के पहनाये गए हैं, जिनमें श्वेत, नील और अरुण कमल कुंद अधिक प्रचलित हैं। पक्षियों में मोर का पंख नायक और नायिकाओं दोनों का ही प्रिय रहा है।

१. ‘अंग लसै भूषन वसन तुरकाने की रीत

कहै तुरक तोड़ी यहै पिये सुरा करि प्रीत।’

हरिवल्लभ, संगीत दर्पण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. ‘धरिनु’ शब्द स्पष्ट नहीं है। ऐसा लगता है कि लिपिकारों की भूल से कमल के किसी पर्याय के स्थान पर यह विकृत शब्द आ गया है।

३. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

४. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

५. रागमाला, भगवान कृत, म्यूजियम, अलवर।

ललित रागिनी गले में 'शतदल' का हार धारण किए हैं। तोड़ी रागिनी तुपार से उज्ज्वल अंगों पर कुंद का हार पहने हैं। केसर और कपूर का शरीर में लेप किए हैं।

'उज्ज्वल अंग तुपार हुते अति कुंद को हारु गरै छवि छाज।

केसर और कपूर की पीर किए तन में सुष सोभा साजै।'

पुष्पों के आभूषणों के अतिरिक्त पुरुष रागों ने बाण भी पुष्प ही का धारण किया है। नटनारायण का पुत्र 'विहागड़ा' पुष्प-धनुष धारण करके विहंगों के साथ क्रीड़ा करता है।^१

वन में प्राप्त पक्षियों के पंखों का आभूषण धारण करना भी नैसर्गिक शृंगार का एक ढंग है। वसंत सिर पर शिखी का पक्ष धारण कर और श्रवन में रसाल की मंजरी पहने श्याम शरीर में नील सरोज से भी अधिक सुन्दर प्रतीत हो रहा है।'

नट नारायण का एक पुत्र राग गुंड 'स्याम वरण सिर केल दल, मोर पंछ कटि काछ, मुक्त माल मल्हार मिलि गुंड धनुष धर आछ' रूप में शोभायमान हैं।'

अधिकांशतः इन कवियों ने प्रच्छन्न रूप में इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि संगीत भी प्राकृतिक वस्तु है। संगीत आडम्बर रहित है। अतः नैसर्गिक शृंगार से सुसज्जित जो राग और रागिनियाँ प्रकृति के किसी रम्य स्थान पर बैठी चित्रित की गई हैं, वे स्वाभाविक रूप से गान में रत हैं। कोई वीणा बजाती है, कोई किसी न किसी रूप में अपने भावों को संगीत के माध्यम से प्रकट करती है।

रागिनी दक्षिण गूजरी मलयागिरि के वन में पल्लवों की सेज विछा कर बैठी है। अपने 'मनभावन के गुण' गाने के लिए 'प्रवीणतिया' ने हाथ में वीणा धारण कर ली है। राग हिंडोल स्त्रियों के साथ केलि क्रीड़ाएँ करता हुआ भूला भूल रहा है और कर में वीणा धारण किए रस रीति में डूबा हुआ है।'

सारंग नट रागिनी अभी किशोरी है, परन्तु चंपा के फूलों की द्युति को मानों चुरा कर उसने शरीर की कांति में अभिवृद्धि कर दी है। वेनी ऐसी सुन्दर गूथी है जैसे 'मपतूलन'

१. 'चंपक तें अति चारु लसैं तन हारु गरैं सत पत्र को छाजें।' संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. 'सुरभि गौर तन मदन छवि कुस्म मुकुट सुष रंग पुष्प धनुष केदार मिल विलसित मधुर विहग।' रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. 'राजें तहां सिखि पक्ष धरैं सिर, श्रौन रसाल की मंजरि भाई नील सरोजहु तैं अभिराम लसैं तन स्याम की सोभा सुहाई।' संगीत दर्पण—हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

की 'छवि छीन' ली हो। 'तरु के तरे' बैठ कर वीणा बजाती है और सभी का मन आकर्षित करती है।

'बेस किसोरी है गोरी तिया, दुति चोरी है चंपे के फूलन की।

केस सुदेसनि वैनी गुही छवि छीनि लई मष तूलन की।

करवीन लिए तरु के तर बैठति साजु सजे सुष मूलन की।

हरिवल्लभ सारंग नाट के नाटन और लगै सब फूलन की।^१

संगीत काव्यकारों ने नैसर्गिक शृंगार में प्रकृति से राग तथा रागिनी का तादात्म्य दिखाया है, अतः राग पशुओं और पक्षियों के सान्निध्य से आनन्द प्राप्त करते हैं। रागिनी सोरठी कानन में 'नील सरोजों' में बैठी है, जहाँ भ्रमर आकर गुंजार करने लगते हैं, और नायिका उसको सुनकर बड़ी प्रसन्न होती है।

'कानन के नील सरोजनि में अलि गुंज सुनै अति ही सुष माने।'^२

'चंपक से चारु देह' वाली भूपाली की 'मंद गति' देखकर 'मराली' भी लजा कर रह जाती है।^३ मधु माधवी अपने 'कंत' के साथ सुन्दर हरिण पर बैठी है।^४ पक्षियों में विरहिणी के स्वर से साम्य रखने वाला स्वर भी 'पिक' का है और उमंग में भी 'कोकिल के कल कंठ' से साम्य हो जाता है।

ककुभ रागिनी

'रोवति चंद मुखी बन में पिक नाद सुने दुख पावति तैसे।'^५

और गोरी

'कांन रसाल की मंजरि राजति कोकिल के कल कंठ गही है,

गोरी सो मूरति मोदनि पूरति आनन्द में अति ही उमही है।'^६

अन्य पक्षियों में कपोल, खंजन, चकोर व पशुओं में मृग और नाग का आश्रय लिया गया है। नागों को आभूषण के रूप में भी धारण किया जाता है और केशों के लिए उपमान रूप में भी उनका वर्णन होता है। भैरव, भैरवी, आसावरी और केदारा नागों को आभूषण के समान धारण करते हैं।

सुख और दुख दोनों की अनुभूति इन राग और रागिनियों को प्रकृति की गोद में बैठकर सुन्दर जान पड़ती है, अतः मलयागिरि पर कदंब के नीचे, श्वेत शिला पर, पल्लव

१. राधा कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. वही।

३. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

४. 'ऊचा कुरंग सुरंग पर बैठे त्रिय अरु कंत।

सेत चीर मधु माधई नीरद कथा जपंत।'

रागमाला, हरिश्चन्द्र, मुनि कांति सागर जी का संग्रह, उदयपुर।

५. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

६. वही।

शय्या पर अथवा इसी प्रकार के किसी प्राकृतिक रम्य स्थान पर वीणा बजाकर मनोरंजन करती हुई दिखाई देती है ।^१

उदाहरण काव्य में वर्णित अलंकरण-सामग्री में राग मालाओं की अपेक्षा अधिक विविधता प्राप्त होती है । सौन्दर्य वृद्धि की सहायक वस्तुओं में राजसी वस्तुओं का प्रयोग अधिक है । नैसर्गिक दृष्टि से स्वभावतः अलंकरण कम किया गया है । उदाहरण काव्य के नायक और नायिका अधिकतर वैभवपूर्ण वातावरण में ही रहते हैं, अतएव पुरुष रूप में सिर पर पगड़ी, कलगी, सेहरा, माथे पर कुमकुम, केसरादि का तिलक, नगमणि के आभूषण, स्वर्णखचित भीने वस्त्रों का प्रचार है ।^२

स्त्री रूप में भी केशों से लेकर पैरों के 'विष्टुओं' तक रत्नों से जटित स्वर्ण आभूषण पहनाए गए हैं । अंगों में सुवास जड़कर, मुख पर बेंदी, सिर में तिलक, आभूषणों के साज-शृंगार कर चरणों में पायल बजाती हुई स्त्रियाँ गोकुल में नंद के घर बधावा गाने जाती हैं ।^३ इनका स्वरूप सुन्दर है । कानों में कर्णफूल, मोहिनी अलकें, तन पर नीली साड़ी शोभायमान है ।

‘करन फूल प्रतिविब कपोलन

१. ‘मलयागिर मांह कदंब के मूल विराजत बैठी लये संग आली ।’

+

+

‘गिरि कैलास में विलास हास बनि बैठी फटिक चौकी पर गिरिजा सी
जानी है ।’

+

+

‘पल्लव आसन बैठी तिया वन चंदन के है सुवास मई ।’

+

+

‘कर बीन लए तरु के तर बैठति साजु सजै सुष मूलन की ।’

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. ‘लटपटी पाग भुकी सिर कलगी अंग अनंग सजोली ।

सेहरा विराजे है कुमकुम तिलक सुभाल । यो तो हरियाली बनो ।

भूषण सोहैं हे नगमणि जोति सुभाल । यो तो हरियाली बनो ।

भीने तन वागं हे सुंदर ताको धाम । यो तो हरियाली बनो ।’

रस तरंग, जवानसिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

३. ‘हेली नंद घरन आज बघायो ।

अंगन साज सुवास जरी हैं ।

सुष बेंदी सिर तिलक करी हैं ।

भूषण साज सिंगार उजेरी ।

वाजत चली चरनन में जेरी ।’ आदि

रस तरंग, जवानसिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

अलक मोहिनी करत कलोलन

तन सुप सारी नील निचोलन ।^१

वस्त्रों में कवियों ने अपने अपने देश के अनुसार वेप धारण कराया है। राजस्थान के महाराजा कवियों ने कंचुकी, लहंगा और चूनर पहना दी है। जयपुर की रँगई प्रसिद्ध है, अतः नायिका अनेक बार अपने प्रिय से चूनर को रँगाने के लिए कहती है।

‘राग भोंड ताल होरी री

ल्याओ रंगरेजा चूनर सारी

कंचुकी कसूँभी हर्यो लहंगा धूमाला कलीदार’ ।^२

उस समय के प्रचलित वेश का स्तर भी इन गीतों से विदित होता है। साधारण जहंगा नहीं, वरन् बहुत से धूमवाला, कलीदार, हरा लहंगा होना चाहिए।

पैर के अँगूठे में पहना जाने वाला अनवट घूंघरुदार अच्छा समझा जाता है और नूपुर (बिछवा) रत्नों से जड़ा हुआ, हल्का वजने वाला पायल, हीरे, मोती, पन्ने से जड़ा हुआ होना चाहिए।

‘राग सिद्धरी ताल दीपचन्दी

कनइया मोरे अनवट बिछवा समेत ल्यादे

मोरे पैरुं कु रतन नुपरवा । अस्ताई ।

फगवा में पेलत बाजत नीके सौत का कलेजा

जलाऊंगी सुना के ।

भीना भीना वाजना गुधरवा हीरा मोती पनउवा में

मानक लगा दे ।

रसीला राज पिया लटुवा भयो जो तुं अपने करन सों वेसर
पहरा दे ।^३

शृंगार का दूसरा विभाजन रस की दृष्टि से किया जा सकता है। छः राग और तीस रागिनियाँ तथा उनके पुत्र और पुत्रियाँ किसी न किसी रस विशेष को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। राग स्वयं भी किसी न किसी रस में डूबे रहते हैं। इनमें तीन प्रकार के विभाग हो सकते हैं।

१—शृंगार रस से युक्त

२—वीर रस से युक्त

३—शान्त रस से युक्त

अधिकांश राग और रागिनी शृंगार रस से ही ओतप्रोत हैं। शृंगार के दोनों रूप संयोग और विप्रलंभ प्राप्त होते हैं। संयोग और वियोग में रत रखना कवि की अपनी

१. रस-तरंग, जवानसिंह, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

२. मानसिंह का बनाया ‘ध्रुपद और ह्याल’, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

३. वही ।

रुचि है, परन्तु कुछ रागिनियाँ ऐसी मान ली गई हैं, जिनको वियोग में दुखी माना है, इसका कारण उनमें प्रयुक्त कोमल स्वरों का होना नहीं है, केवल गाने के प्रभाव की कल्पना करके कवियों ने ऐसा किया है।

भैरव स्वयं योगी है, परन्तु उसकी भार्याओं में मध्यमा, भैरवी, वराटी सम्भोग में रत रागिनियाँ हैं।^१ भैरवी का स्वरूप कुछ भिन्न है। कहीं वह योगिनी के समान श्वेत सारी धारण किए, फूलों का शृंगार किए शिव की आराधना में रत रहती है^२ और कहीं 'चन्द्रमुखी चपला तैं चारु देह दुति' वाली भैरवी शिव की अर्चना में लीन रहती है।^३ हर स्थान पर भैरवी का रूप गिरिजा के समान है। योगिनी का रूप धारण करते हुए भी शिव के प्रति 'रस रीति' हृदय में है, उसी के मुख में मग्न स्फटिक शिला पर विराज रही है।^४

मालवकौशिक (मालकौंस) स्वयं वीर रस में मत्त है, परन्तु उसकी रागिनियों में टोड़ी, पंभावती और गोरी सम्भोग शृंगार में रत है और गुणकरी तथा ककुभ वियोगिनी है।

हिंडोल स्वयं सखियों के साथ भूला भूलता रहता है और सम्भोग में रत रहता है। उसकी पत्नियों में विलावली, रामकरी तथा ललित, संयोग शृंगार के अन्तर्गत आती हैं और पटमंजरी वियोगिनी है।

दीपक राग केलि कला में प्रवीण है, देसी संयोग शृंगार में रत रागिनी है तथा कामोदी वियोगिनी।

श्री राग किशोरावस्था का शृंगारी राग है। उसकी रागिनियाँ वसंत, मालव, मालसिरी, संयोगिनी हैं। आसावरी, मल्हारी और धनाश्री विरहिणी हैं।

मेघ मल्हार अनुरागी है, उसकी रागिनियाँ देसकारी और टंक और दक्षिण गूजरी

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. 'प्रात समे प्यारी उठि उठी, स्वेत सारी भारी फेली

मुख चंद की उजारी जोति जागती।

गोरे भुज मुल सिव पुजि के चढ़ाय फूल दोउ कर ताल

बजावे प्रेम पागती।'।

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर।

३. 'चंद मुखी चपला तैं चारु देह दुति दिपैं कौल कुस मनि

सिव अर्चा उठानी हैं।'।

संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर।

४. 'गिरि कैलास मे विलास हांस बनि बंठी फटिक चौकी पर

गिरजा सी जानी है।

चंदमुखी चपला तैं चारु देह दुति दिपैं कौल कुस मनि

सिव अरचा उठानी है।

संयोगिनी हैं और मल्हारी और भूपाली, वियोगिनी हैं।

सारंग नट, सोरठी, त्रिवनी, पहाड़ी, पंचम, स्याम, सुद्ध बंगाल, सामंत, तुरक तोड़ी, जेत श्री, सारंग सभी राग संयोग शृंगार के अन्तर्गत हैं।^{११}

शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष के अनुसार पुरुष राग और स्त्री रागिनियों के शृंगार (सजावट) में कुछ विशेषताएँ आ गई हैं। संयोग शृंगार में रत राग और रागिनी अनुराग और उल्लास से संयुक्त रंगों का चयन करते हैं। अधिकतर लाल रंग का वस्त्र पहनते हैं। पीत वस्त्र भी उल्लासपूर्ण है। नीला और श्वेत वस्त्र भी जहाँ पहनाया गया है, वहाँ द्युति और चमक को महत्त्व दिया गया है। हृदय के अनुराग की अभिव्यक्ति जिस रूप में हो, उसी के अनुकूल वस्त्रों को धारण किया है, अतएव आभूषणों में मणियों को स्थान मिला है। रागिनियों ने सखियों के मध्य बैठकर, अथवा एकान्त में प्रिय की प्रतीक्षा करके, प्रिय के विलम्ब से आने पर मान करके, वीणावादन में अपने हर्षातिरेक को छिपा कर, किसी न किसी रूप में सम्भोग और रति-भावना का प्रदर्शन किया है। पुरुष राग काम-केल में प्रवीण है। किसी न किसी रूप में प्रियाओं के सग क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। सभी हास और विलास में संलग्न हैं। सम्भोग का पूर्ण आनन्द प्राप्त करने के लिए 'रति-मंदिर' की योजना की गई है और 'फूलों की शय्या' बनाई गई है।

राग हिंडोल अत्यन्त रागी है।

'भूलत भूला, भुलावति है रवनी कमनी सुप रूप लह्यो है।

काम कुतूहल केलि करै अति कंचन के रंग चौर गह्यो है।

लौनी लसे दुति देह की यो लखि गोत कपोत को लाजि रह्यो है।

वीना लगै कर में रस रीति सो वल्लभ रागु हिंडोल कह्यो है।'^{१२}

मध्यमा रागिनी कुछ 'हंस कर', 'प्रीतम' को आलिंगन और चुंबन देकर आनन्दित करती है।^{१३} वराटी 'कंकण की भनकार' से तो चित्त को चुराती ही है, 'विथरी सुथरी अलकों' से 'छबीली छवि-रास' को बढ़ाती है। 'श्रोन में सोहते हुए फूलों से प्रिय के चित्त को ललचाती' है।^{१४} पंभावती 'मृदुल कंठ' से 'कमनीय तान गान' कर के मुस्कराती हुई

इंदीवर दलहू तै दीरघहै देखे द्रग करि धरि ताल वाल

मृदु मुसक्यानी है।

जिय करि प्रीति हरि वल्लभ यो सुख जीति ऐसी रस

रीति करि भैरवी बषानी है।'

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर।

३. देत आलिंगन चुंबन प्रीतम आनंद, सो जु कछु हसि के।'।

संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

४. 'चोर लिए चतुराचित चोरति कंकन की भनकार सुनावे।

विथुरी सुथरी अलके छब रास छबीली अनंद बढ़ावे।

श्रोन में सोहत फूल विचित्र दुकूल बना चित्त को ललचावे।

‘मीठे वचनों’ से ‘मदन’ उत्पन्न करती है ।^१ रामकरी ‘सब अंगों में जड़ाऊ आभूषण चारण करके’, प्रिय के पैर पड़ने पर भी मान करने की ‘निठुराई’ करती है ।^२

देसी अलसाये हुए उनींदे नेत्रों से ‘पिउ तन’ की ओर मुप करती है, और सुन्दर गान करके ‘भावन’ को जगाती है ।^३ गोरे शरीर पर हरी साड़ी पहने दीपक की पत्नी ‘रति’ में ‘रति’ रखती है ।^४ ललित हाथ में ‘फूल छरी’ लिए प्रवाल की ज्योति का हरण करने वाले लाल वस्त्र पहन कर कमल माल पहने है । रात्रि भर प्रिय के साथ सुख से जगी है, अतः प्रातः ही मंदिर से निकलती है । यौवन की सरिता सी ‘ललिता मन में भी मोद और विनोद’ से भरी है ।^५

राग मालव सब शृंगारों के साथ सन्ध्या समय ‘रतिमंदिर’ में ‘तिय’ को देखकर ‘अनंग’ से छक जाता है और ‘तरुनी मुख’ को चूम लेता है ।^६ टंक रागिनी अपने पति मेघ मल्हार की प्रतीक्षा में ‘पंकज की सेज विछाय परी’ है । चंदन, जल आदि द्रव्यों से ल विरहान से तप्त अंगों को शीतल कर रही है, ‘तभी मनभावन’ आकर ‘आदर से मनुहार’ करता है । पति को देखते ही प्रिया का दुख भाग जाता है और ‘हुलास’ से भर जाता है ।^७ एक स्थान पर संयोग शृंगार के रस से मत्त भैरव की रागिनी, बंगाली विशेष

ऐसी बराटि बनी हरिवल्लभ, प्रीतम को बहु भांति रिखावे ।’

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

१. ‘कंठ सुर मृदु कोकिल ते कमनीय तान गान में प्रवीन

जाने गुन जन को ।

मीठे मीठे बंन चित चैन देन कहि कछु मुस्कयाइ उपजावत

मदन को ।’

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. ‘सौनै तें लौनी बनी सब अगनि भूषनि भाइ अराइ पची है ।

प्यौ परै पाइनि मानति मान सु नैननि में निठुराई नची है ।

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. वही ।

४. वही ।

५. ‘कमनीय कलेवर कुंदन सो छवि सों कर राजत फूल छरी ।

पट लाल प्रवाल की जोति हरै नव पंकज माल विसाल धरी ।

निसि प्रीतम संगि जगी स्रु तिय प्रात ही मंदिर ते निकरी ।

अति जोवन की सलिता तन में ललिता मन मोद विनोद भरी ।’

रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

६. रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

७. ‘विरहानल अंग अनंग दही तिय पंकज सेज विछाय परी ।

घनसार गुलाब कि नीर धर्यो सषी सीतल साज बनाय धरी ।

रूप में दिखाई देती है, जिसमें भैरव की स्त्री होने के कारण शिव के समान भाल में चन्द्रमा शोभित है। सौन्दर्य में कुछ पुरुष तत्त्व अधिक आ गया है, जिससे वचन पापाण के समान हो गए हैं। तिरछे नेत्रों की मार मारती हुई भैरव के रस में मत्त, गोरे रंग की बंगाली रागिनी, वृक्षों के वस्त्र पहने है। शृंगार में योगिनी का स्वरूप सम्मिलित है।^१

इस प्रकार संयोग शृंगार रस की दृष्टि से राग-रागिनियों के वर्णन में कवियों ने सभी आकर्षक वस्तुओं (वस्त्रों, आभूषणों, द्रव्यों) तथा अनुकूलित वातावरण की योजना की है।

वियोग शृंगार में डूबे हुए राग और रागिनियों का वेप संयोगी राग रागिनियों से भिन्न रहता है। वियोगी, जो अपने प्रिय अथवा प्रिया के विरह से तप्त है, उसे मणि तथा सुन्दर वस्त्रों को धारण करना रुचिकर नहीं होता, अतः आभूषणों की चिन्ता न करके, वे एकान्त में, प्रकृति के किसी ऐसे स्थान पर जाकर, जो उनके भावों के अनुकूल है, स्मृति में आँसू बहाते रहते हैं। अधिकतर पीत रंग के वस्त्रादि धारण किए सुन्दर जान पड़ते हैं, फिर भी उनका 'मुख-पंकज' मुरझाया रहता है। कोकिल के वचन सुनकर हृदय दुखी होता है। हँसी के स्थान पर उदासी आ जाती है। देह दीन, क्षीण हो जाती है, द्युति मलिन पड़ जाती है। केश बिखरे रहते हैं। वियोग के कारण जागने तथा रोने के कारण आँखें लाल रहती हैं। अपनी वेप भूषा की ओर से उदासीन रह कर प्रिय की स्मृति में दुखी होती रहती हैं।

‘पट मंजरी रागिनी,

पी के वियोग बन्धो तन रोग इतो दुष कैसे सह्यो रे सुहागिनि।

बैठि रही सिर नाइ तिया रज घूसरि आग महा अनुरागिनि।

सूकि गौ हारु कछु न विचारु, सपी समुभावती है बड़भागिनि।

वार लस विश्वरे हरि वल्लभ ऐसे कही पट मंजरी रागिनि।’^२

कामोदी पीत वस्त्र पहने मुरझाई हुई बोलती रहती है। ‘पिक बानी सुनकर प्रिय-तम का स्मरण हो जाता है’, भामिनी भूली सी फिरती है, भवन को देखकर वियोग बढ़

तब ही मन भावन आय गयो अति आद्र सौ अनुहारि करी।

पति देषति ही दुष दुरि गयो यह रागनि टंक हुलास भरी।’

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

१. ‘गोरे रंग तरु बसन सुभ सेत संग चंदन को लेप अंग सुखद सुढारे हैं।

भाल में लसत चद गज गति चले मंद, अति सुष कंद अंग आरस अपार हैं।

लागत पषान के पषान ता समान सुर मैं बंक बाननि सों करत सुमार हैं।

अति मद माती तिय भैरव के रस राती बंगाली सुहाती गुनी गाइयहि बार है।’

राग सागर, भगवान दास ‘चंद’ कृत, विद्या मंदिर, नाथद्वारा।

२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर।

जाता है ।^१ धनाश्री 'रति मंदिर' के समीप बाग में जल की शीतलता के कारण जाकर बैठती है ।^२ ककुभ 'पीत वसन, पहने वन में चातक के बँन सुनकर विलाप करती है ।'

इस प्रकार संयोग और वियोग भावों के अनुसार वेप-भूषा तथा सजावट में अन्तर हो जाता है ।

शृंगार रस के अतिरिक्त कुछ रागों तथा रागिनियों को वीर रस में रंजित दिखाया है । भैरव राग की एक रागिनी सेंधवी वीर रस में रंगी है । मालवकौशिक राग, स्वयं 'वीर रस में मत्त रहता है', परन्तु उसकी पाँचों रागिनियाँ शृंगार रस से पूरित हैं । हिंडोल तथा उसकी अन्य चार रागिनियाँ अनुराग में लीन हैं, परन्तु एक रागिनी 'दिशाव' 'वीर रस में छकी' है । दीपक राग की रागिनी, कान्हूरा और नट रागिनी में 'वीर रस किलोलें' करता है । श्री राग न तो स्वयं वीर है और न उसकी रागिनियाँ । राग नट कल्याण भी वीर रस की छवि से पूर्ण हाथ में तलवार लिए घूमता रहता है ।

वीर रस से ओत प्रोत राग और रागिनियों के शृंगार में उत्साह तथा उत्तेजना की वृद्धि करने वाले वस्त्राभूषणों का उल्लेख तो है ही, इसके अतिरिक्त राग-तत्त्व होने के कारण उनमें यौवन तथा आकर्षण शृंगार-रस पूर्ण रागों के समान ही है ।

वीरता का द्योतक तथा उत्तेजक रंग भी लाल है, अतः ये राग लाल रंग के वस्त्र पहने, कपाल की माला धारण किए, हाथ में कृपाण, करवाल और गजदंत लिए सुशोभित हैं । वीरत्व में कुछ मात्रा तक कोप का होना भी आवश्यक है, अतः उत्साह और तेज के कारण 'गुलाल के समान लाल' शरीर वाले, क्रोध से अरुण नेत्रों वाले राग, भाल में टीका लगाए, तुरंग आदि पर सवार रहते हैं । इस शृंगार के साथ वीर रस युक्त राग-रागिनी अपने शरीर की कांति के कारण मन्मथ की छवि को छीन लेते हैं । अस्त्रों में विशूल का प्रयोग अधिकांशतः मिलता है, क्योंकि वीर रस युक्त राग का काल्पनिक रूप योद्धा का होता है, उसमें शिव का स्वरूप भ्रलकता रहता है । एक विशेषता इन वीर रसात्मक रागों की यह

१. 'पहिरे पट पीत प्रिया तन में जित ही तित बोलत है मुरझानी ।

प्रीतम कौं सुमरें मन में दुष दूनो बढ़यो सुनि के पिक बानी ।

भामिनी भूली फिर बिभई न सुहात है मौन बिबोग निसानी ।

केस सुदेस लसैं हरिवल्लभ ऐसी कमोदिनि भाति बषानी ।'

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. 'रति मंदिर के ढिग बैठि बाग तहां जल सीतलता सरसाय रहे ।

तन की तिन पीर मिटावन को तिय बैठि कछू दुष नाहि कहे ।'

राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. 'पीत वसन सुभ के सजसु कानन ककुभा नारि ।

मुगधा चातक बँन सुनि विलपति बतह मंभारि ।'

रागमाला . हरिश्चन्द्र, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

है, कि ये शरीर से सुन्दर हैं। 'राग' होने के कारण काम-कला में सभी प्रवीण हैं।^१ जीवन के प्रति अनुराग रखने के कारण अपने शरीर को विलास-प्रसाधनों से भी सुसज्जित रखते हैं, अतएव कपूरादि से शरीर को सुवासित किये हैं।^२ भूप का स्वरूप बनाकर 'मैन' की छवि को भी क्षीण कर देते हैं।^३ कहीं कहीं लाल वस्त्र सिर पर पगड़ी, पेच, जड़ाऊ कलगी धारण किए वीर रस से युक्त खड्ग धारण किए इधर उधर डोलते दिखाई देते हैं।^४

मालव कौशिक युवा है, उत्साह और वीरता से पूर्ण है, धैर्यवान है। हाथ में तलवार लिए प्रवाल की ज्योति हरने वाले लाल वस्त्र धारण किए हैं, परन्तु कोक कला और रति में प्रवीण है। इस प्रकार तरुणी स्त्रियों का मनोरंजन करता है।

‘तन जोवन जोर मरोरनि सो रस वीर छको मन धीर धरै।

कर में करवाल लिए छवि सों पट लाल प्रवाल की जोति हरै।

रति कोक कला परवीन महा द्रग देपत रूप अनूप भरै।

यह मालव कोस अनंग भरी तरुनी मन रंजन रंग करै।’^५

राग नट वीर रस में छका रणक्षेत्र से हट नहीं रहा है। झुक झुक कर तलवार के घातों से शत्रुओं के 'शीश भराभर भार' रहा है। श्रोनित की धारों से लिपटे हुए वीर नट की 'तन की दुति कुंदन' सी हो गई है। 'उमंग' में भरा हुआ यह वीर, तुरंग पर चढ़ा, 'रण-रंग' अर्थात् रण-क्रीड़ा कर रहा है।^६ राग-कान्हारा 'दाहिने हाथ में तलवार और वाम-भुजा में गज दंत' धारण किए हैं, 'घन के समान तन की दुति नील' है, उस पर 'उज्ज्वल वस्त्र तथा मोतियों की माला' पहने हैं। रणभूमि में देवताओं तथा चारणों से अपने कीर्ति-गान सुनकर 'मन में मोद' करता है।^७ देसाध 'तन रोम' में वीर से छकी, अंगों में कपूर का लेप किए, दीर्घ भुजाओं वाली, धैर्यवान, कुछ संकोची स्वभाव की सुन्दर

१. 'कंचनते कमनीय कलेवर काम कलानि में कोविद मानो

मातो महारस वीरहि में नित रातै रुचै बसनो जग जानो।'

संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. राग देसाध, संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. वही (राग कान्हारा)।

४. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर। (राग नट कल्याण)।

५. वही।

६. 'रस वीर छकों रन धीर महा भट षेत षरो लषि नाहिं टरै।

भुकि बाहत हैं कर बाल भरा भरि सत्रुन के कर सीस भरै।

लपट्यौ अति श्रोनित धारन सों तन कुंदन सों दुति लाल धरै।

नट राग उमंग भर्यो सब अंग तुरंग चढ्यो रन रंग करै।'

राग-रत्नाकर, राधा-कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

७. 'कर दछिन में करवाल लिए भुजा वाम लसे गज दंत धरै।

तन की दुति नील मनूँ घन सी पट उज्जवल माल गरै :

रस वीर छकै रन भोमि षरो सुर चारन के गन गांन करै।

स्त्री है ।^१

वीर रस के चार भेद, युद्धवीर, दान वीर, धर्मवीर, दया वीर में से केवल एक भेद युद्धवीर का उल्लेख यहाँ मिलता है। युद्ध वीर में अभी तक शस्त्र अस्त्र से सुसज्जित वर्णन अधिक प्रचलित रहा है, परन्तु राग मालाओं में कहीं कहीं 'मल्ल-वीर' के रूप में पहलवानों के समान रागिनी दिखाई देती है, जिससे विचित्रता का समावेश हो जाता है। राग देसाय का वीर स्वरूप इस प्रकार है।

‘दीर्घ स्मर रोमांच तनु बाहु प्रचंड विशाल।

उडपति छवि देशाय की मल्ल मेघ सुविशाल।’^२

इसके अतिरिक्त वीररस का एक नवीन रूप इन रागिनियों के स्वरूप में प्राप्त होता है, जो अन्यत्र नहीं दिखाई देता। इसे 'प्रेम-वीर' के नाम से पुकारा जा सकता है।

प्रेम-वीर में नायिका रागिनी वीर रस का वेप धारण किए है, परन्तु उसके हृदय में अत्यन्त अनुराग है। प्रिय को रिझाने के लिए उसकी पूजा में भी रत है और दूसरी ओर वीरता के कारण क्रोध भी उपस्थित है। दो विरोधी तत्वों का एक रागिनी के रूप में समावेश किया गया है। मूल रूप में उसके हृदय में प्रेम है, जिसके कारण आराधना भी करती है। पूजा के साथ ही क्रोधित भी होती है। पुष्प तथा त्रिशूल दोनों को धारण करती है। शृंगार के लिए उस पुष्प को चुनती है, जो उत्साह-वर्द्धक लाल रंग का हो। भैरव की रागिनी सेंधवी प्रेम-वीर की वेप-भूषा में है।

‘अति लाल लसैं दुति अम्बर की, तन में तरुनाई कछू सरसे।

छवि सों धरि कानन बंधुक फूल त्रिशूल सदाकर सौ परसे।

सिव पूजि षरी तिय क्रोध भरी मुख पै रस वीर मनु वरसे।

यह सौंधवी मन मरोरन सौं मन पै पिय मारग कों दरसे।’^३

यह सारी रसात्मकता रागों के स्वरूप वर्णन में ही मिलती है। जहाँ तक इनके गेय रूपों का सम्बन्ध है, ये प्रभाव में विशेषरूप से कोमल ही हैं, पुरुष नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चित्र बहुत कुछ अपने युग को प्रतिबिम्बित करने वाले हैं, जिनमें शौर्य और ललित कलाओं का बहुत सुन्दर समन्वय रहा है। तत्कालीन सामंत और उनकी रानियाँ दोनों ही युद्ध में भाग लेते थे। इन चित्रों से उस युद्ध प्रियता का परिचय स्पष्टतः मिलता है। साथ ही जीवन के वैभव और सुख विलास का पक्ष भी उभर कर सामने आ जाता है।

शृंगार युक्त वेप भूषा और वीर तथा ओजपूर्ण शृंगार के अतिरिक्त कुछ राग और

अपनी जब कीरति कान सुनै तब कानरे को मन मोद करें।

राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. रागमाला, हरिश्चन्द्र, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर।

३. राग-रत्नाकर, राधा कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

रागिनियाँ शान्त रस के अनुसार वेप धारण किए प्राप्त होते हैं ।

शान्त रस के रागों में राग भैरव, उसकी रागिनी बंगाली, राग दीपक की रागिनी केदारा और मेघ राग की रागिनी भूपाली का वर्णन है ।

शान्त रस के अनुसार शृंगार करने में राजसी वस्तुओं का निराकरण किया है, अतः शरीर में भस्म का लेप, नागों के आभूषण, सिर पर जटा धारण किए, कानों में कुंडल, त्रिशूल हाथ में लिए, डमरू बजाते हुए पुरुषों को वेष्टित किया है, जो शिव ही का योगी रूप है । स्त्रियों ने जटा के स्थान पर खुले केश रखे हैं, वृक्षों की छाल के वस्त्र पहने हैं, नागिनी के आभूषण धारण किए हैं ।

भैरव का स्वरूप है

‘लाल रिसाल बनी मनि सीस लसित जोति कुंडल
श्रवन मुष गोर वरन ।

जटा जूट में तरंग करत रहत गंग चंद्रमा लिलाट
सेत वसन धरन ।

सोभित त्रिनैन मूल अभे कर डमरू बजावत व्याप्त
उर प्रिया करन ।

कंवल अस्त्वर गान करेंगी व पूरन प्रकास दास
दोप हरन ।’^१

बंगाली रागिनी सुकुमार तन की होने पर भी ‘ब्रह्मसूत्र मुंजी धरै’ और ‘बलकल चीर बनाई, सुभग वेप’ बनाए है ।^२ केदारा भी योगिनी का रूप धारण किए है । सिर पर जटा तथा जटा पर शशि की ज्योति तथा गंगा की तरंगें शोभित हैं । शरीर पर नाग लपेटे हैं । योग का आसन धारण किए ‘दृग-तारों’ को एकाग्र कर समाधि लगाए बैठे हैं । यह वास्तव में पुरुष रूप है, पर स्त्री रागिनी के लिए भी यह वेप कवि ने उचित समझा है ।^३ आसावरी, ‘मलयागिरी के वन में, गले में गज मोतियों के हार पहने, मोर पंखों की सारी पहने, चंदन के द्रुम से नागों को कर में लेकर, पुष्पों का गजरा गले में डाले हुए श्याम घटा के समान शरीर वाली देह की कांति से ही दीप्त हो रही है ।’^४ भूपाली भी शान्त रस में डूबी है, परन्तु भूपाली का शृंगार विचित्रता रखता है । यह शान्त, वियोग शृंगार के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है, क्योंकि यहाँ शान्त रस, वियोग शृंगार के परिपाक का कारण बन जाता है और रागिनी को प्रेम की इन्द्रियातीत स्थिति में पहुँचा देता है । कवि भूपाली को प्रिय के विरह में अत्यंत डूबी रहने के कारण ‘शान्त रस में डरी हुई’ बताता है । हृदय में प्रेमाधिक्य के कारण, शान्त रस, उसे दुःख में भी आनन्द की

१. राग-निरूपण, पूर्ण मिश्र कविरागी, सरस्वती भण्डार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. वही ।

४. वही ।

अनुभूति प्रदान कराता है। कवि नायिका की स्थिति में जड़ता आ जाने के कारण शान्त रस का वर्णन करता है, अतः ऐसी दशा में शृंगार प्रसाधनों का शृंगार और शान्त दोनों के अनुकूल प्रयोग किया गया है।

‘चम्पक तै चारू देह भरी अति पिय नेह अंग
अंग काम ग्रेह अधरन लाली है।
कुंकुम की पौरि पुलि रही है कुचनि पर मंद गति
देखि लजि रहति मराली है।
सांत रस माँह ढंरी चित अति दुष भरी
उर आनि लगत विवोग वानं भाली है।
नैन हर वल्लभ लसत इंदीवरहू ते आली संग
सोहत यो राग भूपाली है।’

अधिकांश रूप में भूपाली वियोगिनी ही मानी गई है। यहाँ शान्त रस शब्द आने के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

राग और रागिनियों के शृंगार (सजावट) का तीसरा विभाजन संस्कृति के आधार पर किया जा सकता है। शृंगार प्रसाधनों के रूप में प्रयुक्त सामग्री में दो संस्कृतियों का समावेश है।

- (१) आर्य संस्कृति
- (२) विदेशी संस्कृति

विदेशी संस्कृति में ईरानी, अरबी और फ़ारसी तीनों का समन्वय है।^१

संगीत काव्यकार तत्कालिक प्रचलित सौन्दर्य प्रसाधनों की सहायता से अपने रागों को सजाते हैं। सामान्य रूप से शृंगार के लिए प्रयुक्त सामग्री में कोई भेद नहीं किया जा सकता। यदि आर्य संस्कृति के अनुसार शरीर में चंदन और कपूर का लेप किया जाता था, तो मुगल संस्कृति में भी नायिका को ‘खुशबुओं’ में बसाया जाता था। केशों को सँवारने में तेल का प्रयोग दोनों ही में होता था। दोनों में मणियों के जड़ाऊ आभूषण तथा स्वर्ण खचित वस्त्र पहने जाते थे।

कुछ वस्तुओं में दोनों संस्कृतियों में भिन्नता भी प्राप्त होती है। आर्य संस्कृति के अनुसार पुरुषों के सिर पर पाग^२, योगी रूप में शिव का स्वरूप, जटा, चन्द्रमा, मृग छाल

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. यहाँ विदेशी संस्कृति के अनुसार प्रयुक्त उन वस्तुओं को लिया गया है, जिनको भारत में आकर विदेशियों ने अधिकतर जीवन में स्थान दिया।

३. ललित मारू युत पंकजा नैन कुसुम पाग मुष रंगे।
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

अथवा वल्कल का प्रयोग, कानों में कुण्डल,^१ सिर पर मुकुट, तथा पीले वस्त्र आदि का प्रयोग होता है। जनेउ का भी प्रचार है।^२

स्त्री रूप में केशों को साँवरने की विविध प्रणालियाँ आर्य संस्कृति की देन हैं। शीश में फूल टीका के रूप में जड़ाऊ आभूषण,^३ माथे पर बिंदी^४ नासिका में 'जराऊ लवंग',^५ हाणी दाँत की बनी हुई वस्तुएँ (चूड़ी आदि)^६ मुख में ताम्बूल,^७ ये सब आर्य संस्कृति के अनुसार पहनाई गई हैं। माथे की बिंदी कवि के परम्परा प्रेम के कारण लाल और श्याम रंग की लगाई गई है।^८

मुस्लिम संस्कृति के अनुसार रागिनियों की नासिका के मध्य भाग में पहना हुआ आभूषण वेसर,^९ वस्त्रों में इज़ार (सलवार के समान एक वस्त्र जिसके पाँच, पजामे के समान खुले होते हैं, स्त्रियों का वस्त्र है) का प्रयोग कराया गया है। एक विचित्रता जो इस संस्कृति के अनुसार आई है, वह यह कि राजसी ऐश्वर्य में मग्न 'तुरक तोड़ी' रागिनी मदिरा का पान करती दिखाई गई है।

‘अंग लसे भूषन वसन तुरकाने की रीति
कहै तुरक तोड़ी यहै पिये सुरा करि प्रीति।’^{१०}

रागिनी तुरक-तोड़ी ही इन कवियों के अनुसार शुद्ध तुर्क है। वही लहंगे के स्थान पर इज़ार पहنتी है—

‘पट केसरियां पिसवा जहरी मग लाल इज़ार सुगंध सनी।’^{११}

१. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ; राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण तथा अन्य सभी रागमालाएँ।
२. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. वही।
४. 'मृगमद बिंद ललाट पर मृग नैनी मुष चंद।
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. 'श्री लवंग नासाकरण पुटि लाषु भी जराव।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. बांह चूड़ गज दंत छवि गूजर चला प्रभात।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. 'तोड़ी मुष तंबोल रंग गावत गून गोपाल।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
८. 'श्री सुंदर अंग भरी छवि स्यामल बिंदु वीराजत तोड़ी।'
राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
९. 'स्वेत वसन वेसर भलकमति गुनकरी सुजान।'
रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
१०. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
११. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

तुरंगमस्कन्धनिवधरागः शोराप्रभाशो नितशो नितशः ॥ संशामन्त्रै
विचरन्धतासिनेटोपसुक्तः किल काश्यपेयता ॥ १४ ॥



राग नट-मालवा शैली
(स्टेट म्यूजियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)

हिन्दू संस्कृति में जो चौसठ कलाएँ वर्णित हैं, उनका प्रयोग इन रागमालाओं में पाया जाता है।

रागों तथा रागिनियों के शृंगार (सजावट) में स्पष्ट रूप से चित्रकला का प्रभाव है, अतः चित्र-शैलियों की दृष्टि से इनका चौथा विभाजन किया जा सकता है। 'मुगलकालीन चित्रों का तत्कालीन कविताओं पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा, इसका मुख्य कारण मुगल सम्राटों की चित्रकला-प्रियता थी।' इन रागमालाओं का शृंगार वर्णन लगभग चित्रों ही के समान है, तभी इनमें चित्र शैलियों के अनुसार उनका स्वरूप, शरीर के भिन्न अवयवों का वर्णन तथा उनकी सजावट वर्णित है। इस दृष्टि से चित्र-शैलियों के अनुसार अनेक विभाग किए जा सकते हैं, उदाहरणार्थ—

१—मालवा शैली

५—जयपुर शैली

२—मुगल शैली

६—काँगड़ा शैली

३—राजपूत शैली

७—बीकानेर शैली

आदि

४—बूँदी शैली

मालवा शैली के अनुसार नायिका का गौर वर्ण, शरीर से चिपटा हुआ वस्त्र, जिससे अंगों का उभार स्पष्ट हो जाए, सोने के आभूषण, माथे पर बिन्दी, बाल छीदे तथा खुले हुए बनाए जाते हैं। रागिनी देशकार का वर्णन मालवा शैली में कवि करता है—

‘कंचन सों गात तामें चंदन चरचि राख्यो,

फेल्यो है प्रकास मुष चंद की उजारी को।

कारे सटकारे अति सोभित मुदेस केस

मोतिन की माल भाल व्यंदा छवि भारी को।’^१

इस प्रकार रागिनी का वर्णन मालवा शैली के अनुरूप जान पड़ता है।

मालवा शैली के अनुसार बने हुए राग नट के चित्र से कवि का काव्य-चित्र कितना साम्य रखता है—

‘सोने ते लोने बने सब अंग तुरंग चढ्यो रन रंग में डोले।

लाल गुलाल सो लौहू लग्यो तन वीर महां रस मांह कलोले।’^२

जयपुर शैली में बहुत सुन्दर शृंगार किया जाता है। श्वेत मोती के आभूषण सभी अंगों में पहनाए जाते हैं। एक सखी नायिका को दर्पण दिखाती है, उसमें देखकर नायिका शृंगार करती है। इसी से प्रभावित गांधार रागिनी का जयपुर शैली का काव्य चित्र इस प्रकार है—

‘गांधार कृश तनु स्याम मुकर लए साजे सकल शृंगार।

१. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक, त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ २४।

२. रागरत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. संगीत-वर्णन, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर। देखिए चित्र राग नट, मालवा शैली।

गावत हरि रस मन मगन सधन केश गंधार ।^१

अथवा जयपुर शैली के कुछ चित्रों में नायिका या सखी हाथ में तोता लिए दिखाई जाती है। कहीं कहीं कवि ने ऐसा वर्णन भी किया है—

‘देशकाल मिल कंज द्विग गोर सुभूषण ग्रंग

हरित वशन कर शुक सुधर भोर विभास सुरंग ।’^२

इस दृष्टि से देखने पर इन राग-चित्रों का लगभग सभी चित्र-शैलियों के अनुसार विभाजन किया जा सकता है।

रूप-वर्णन

वस्तु वर्णन के पश्चात् राग-रागिनियों का जो स्वरूप अंकित है, उनका रूप-वर्णन की दृष्टि से भी विचार करना होगा। उदाहरण-ग्रन्थों में जहाँ आलम्बन के रूप में कृष्ण और राधा अथवा साधारण नायक तथा नायिका को लेकर वर्णन किया गया है, वहाँ अन्य शृंगारयुगीन काव्यों के समान रूप-वर्णन में नख से शिख तक का सूक्ष्म वर्णन प्राप्त है। रागों तथा रागिनियों का भी रूप-चित्रण उसी प्रकार होता है। शास्त्रीय रीति पर नख से शिख तक का वर्णन एक ही स्थान पर नहीं प्राप्त होता, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य रागों का स्वरूप चित्रित करना है। इस काव्य में आंशिक रूप में नख-शिख वर्णन पाया जा सकता है। यह रूप-चित्रण अधिकतर, पारंपरिक मान्यताओं के आधार पर है। कुछ चित्र शैलियों से प्रभावित हैं, जैसा ऊपर कहा जा चुका है। शरीर का वर्णन करते समय केश, माथा, नेत्र, कपोल, चिबुक, ओंठ, ग्रीवा, वक्षःस्थल, हाथ, कटि तथा चरण को लिया गया है। अधिकतर नासिका का चित्र कवियों ने अंकित नहीं किया। नासिका के आभूषण ‘लवंग’ को ले लिया गया है। यह मानना पड़ता है कि इन संगीत-काव्यकारों की रुचि रूप-वर्णन से अधिक वेष-भूषा के वर्णन में है, अतः जो विस्तार अलंकरण को प्राप्त हुआ है, वह रूप को नहीं। रूप का यह सीमित चित्रण केवल रागमालाओं में है, उदाहरण काव्य इसकी पूर्ति कर देता है।

केशों के शृंगार में पुरुष राग तथा शांत रस-युक्त रागिनियों में जटा बाँधने का प्रचार है।^३

मुख चन्द्रमा के समान,^४ कपोत के रंग का,^५ पंकज के समान है।^६ विशाल नेत्र

१. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

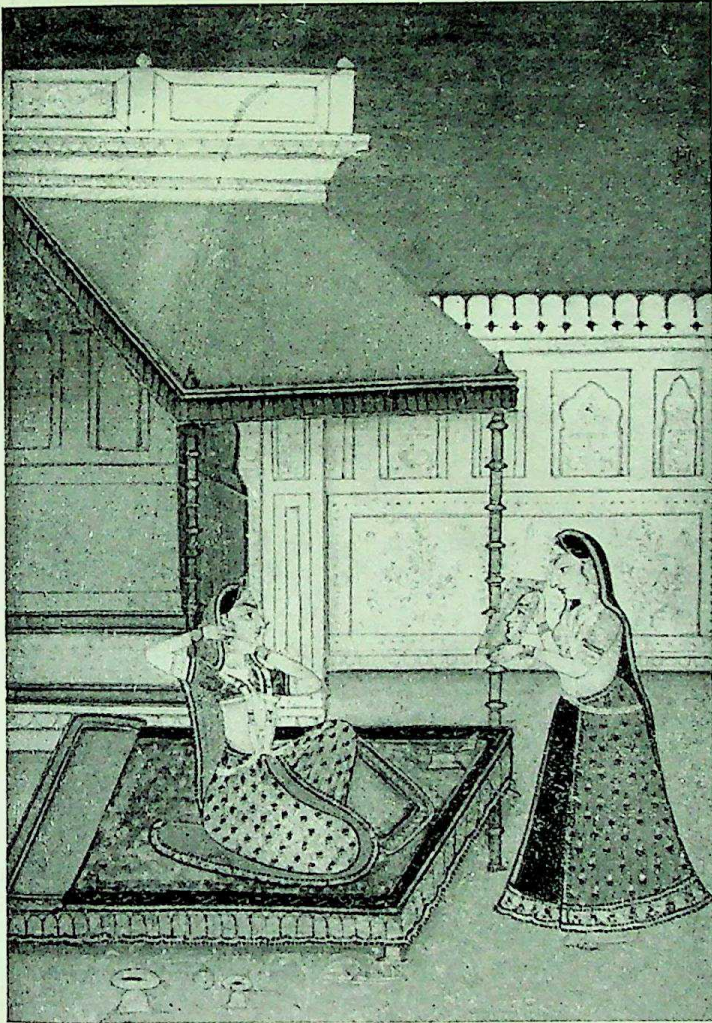
२. वही।

३. भैरव राग, राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

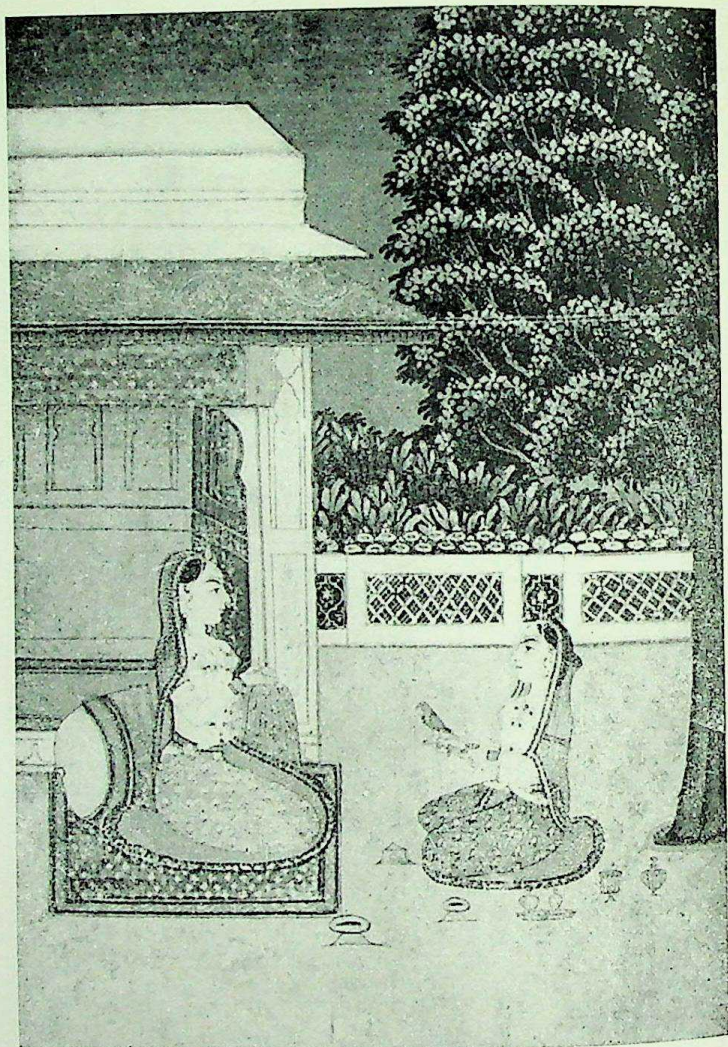
४. राग गोरी, वही।

५. राग हिंडोल, वही।

६. राग कामोद, वही।



राग देशकार—जयपुर शैली
(स्टेट म्यूजियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)



राग सारंग — जयपुर शैली
(स्टेट म्यूजियम, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त)

और पंकज के समान,^१ कभी उनीदे, अलसाए हुए, सुन्दर चिबुक, विशाल हाथ, श्वेत श्रम्वर के भीतर 'उतंग उरोज' आदि अंगों का यद्यपि अलग-अलग वर्णन हुआ है, परन्तु कवि की दृष्टि सदैव सम्पूर्ण शरीर की कांति युक्त सुन्दरता की ओर लगी है। परिणाम स्वरूप एक या दो अंगों का वर्णन करके, 'तन की दुति' को कुंदन, चंपक, कंचन, धन, दामिनी आदि के समान बताया है। शरीर मंजु, मनोहर, यौवन से पूर्ण, अनंग से भरी छवि तथा तरुणाई लिए हुए है। वीर रस से पूर्ण तन 'गुलाब सा लाल भी है'।

एक विशेषता जो इस वर्णन में आ जाती है, वह यह कि संगीत-काव्यकार का उद्देश्य नायिका भेद या नख-शिख वर्णन न होकर राग तथा रागिनी का काव्य-चित्र प्रस्तुत करना है, अतएव, उपमान, अंगों के आकार-सौन्दर्य की दृष्टि से नहीं ढूँढ़े गए, वरन् भाव सौन्दर्य के प्रदर्शन के हेतु रखे गए हैं, फलस्वरूप कवि नेत्र का वर्णन करते समय मृग, खंजन, पंकज आदि को अधिक महत्त्व नहीं देता, वरन् 'हास-विलास भग्नौ नित ही छवि लोचन की सबको सुष साज', कहकर सन्तुष्ट हो जाता है। केशों का सौन्दर्य नागिनी के समान है अथवा घन-समूह के, इसकी चिन्ता इन कवियों को नहीं है, इनके लिए 'वियोग में भूली हुई सी, भवनों में धूमती हुई रागिनी के केशों में विशेष सौन्दर्य आ जाता है।'

‘भामिनि भूली फिर बिभई न सुहातु है

मौन विवोग निसानी।

केस मुदेस लसें हरि वल्लभ जैसी कमोदिनि

भांति वपानी।'^२

इसी कारण वश कवि सदैव यह बताने का प्रयास करता है कि राग के सम्पूर्ण शरीर की द्युति किस प्रकार बढ़ रही है। श्री राग 'मैन का मन मोहने वाला,' 'वैस किसोर मनोहर मूर्ति' का है।^३ मेघ मल्हार की 'देह-दीप्त' है, और छवि अत्यन्त उज्ज्वल है, चन्द्रमा की उजियारी से भी अधिक है। राग देशकारी का प्रत्येक अंग सुन्दर है, परन्तु रागतत्त्व के कारण अंगों में आकर्षण आ गया है।

‘प्रीतम के साथ केलि कौतुक करति अति

कारे सटकारे केस छवि होति भारी है।

सरद संपुरण सुधाधर की सोभा जोति वदन की दीपति

दिपति उज्यारी है।

अंग अंग राजति अनंग भई अद्भुत कुचनि सों

कंचन कलस दुति हारी हैं।

कमल से नैन हरिवल्लभ है सुष दैन मृदु बैन

१. रागमाला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. वही।

बोलति यो राग देसकारी है ।^१

राग-रागिनियों के सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त जो उदाहरण ग्रंथ हैं, उनमें नख-शिख वर्णन भी प्राप्त है। उसमें प्रयुक्त उपमानों में विविधता तथा चित्रोपमता भी है। अन्य रीतिकालीन काव्य के समान सभी विशेषताएँ प्राप्त हैं।

इस दृष्टि से रूप-वर्णन के दो भेद प्राप्त होते हैं।

१—संवेगात्मक

२—संवेदनात्मक

संवेगात्मक रूप-वर्णन का अर्थ है, जिस रूप वर्णन में ऐन्द्रियता अधिक हो। इसमें नख-शिख वर्णन सम्मिलित है।

संवेदनात्मक रूप वर्णन में हृदय के भावों के अनुसार शरीर के अवयवों का वर्णन किया जाता है।

इस दृष्टि से देखने पर हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त वर्णित राग-रागिनियों का रूप-चित्रण अधिक संवेदनात्मक और कम संवेगात्मक है, परन्तु उदाहरण-ग्रन्थों में वर्णित रूप में संवेगात्मकता अधिक है और संवेदनात्मकता कम है। दो एक उदाहरण कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त होंगे। जवानसिंह जी कृत 'रस तरंग' में एक लम्बे गीत में कृष्ण का नख-शिख वर्णन किया गया है। 'छबीली अलक सौधे बोरी', मानों चँवर सा फहराती हैं। 'बंक रसीली भूकुटी' की सोभा अच्छी लगती है। 'कुरंग के समान रसमाते नैन' 'छवि ले चलते हुए सुहाते हैं', 'पंजर मीन विलोक्ते ही मन चुरा कर ले जाते हैं', 'सुंदर विमल कपोल मन को ललचाए' रहते हैं। 'रूप के कूप, चिबुक, कवि के दृग-मीन को लुभाते हैं। 'कठहलरी की सुषमा' बहुत सरस है और इसी प्रकार कृष्ण का मोतियों का जड़ाऊ हार, किकिणी, नूपुर, पैजनि, चरण सभी में कवि (जो राधा रूप में है) का हृदय रमने लगता है।^२ 'कृष्ण का अलंकरण से पूर्ण वर रूप ही कवि को मोहित कर लेता है। अंगों के सौन्दर्य में ही वह ऐसा रम जाता है कि उसे सादृश्य-मूलक उपमानों तथा काव्यालंकारों की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्णन की ऐसी सरलता में भी एक विशिष्ट सौन्दर्य निहित है।

१. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. श्री यह छैल रंगीलो नागर खेलत सरस सुहाय।

श्री यह रंजित सुभग सांवरो हेली। मोतिन निरषि लुभाय।

श्री यह अलक छबीलो सौध बोरी। आली। प्यारी। मेंनहं चवर फहराय।

श्री यह भूकुटी बंक रसीली की सोभा। आली। प्यारी दरसत है इहि भाय।

श्री यह नैन कुरंगन से रसमाते। आली। प्यारी। छवि सों चलत सुहाय।

श्री यह पंजर मीन विलोकन। आली। प्यारी। मन लै गयो है चुराय।

श्री यह विमल कपोलन सुन्दर। आली। प्यारी। मो मन रह्यो ललचाय।

श्री यह चिबुक रूप के कूपहि। आली। प्यारी। मो दृग मीन लुभाय।

श्री यह कठहलरी की उपमा सुषमां। आली। प्यारी। नींकी सरस सुहाय।

श्री यह पंदिन सोंहने पन्नन। आली। प्यारी। मोतिन हार जराय।

‘लाडलो बनो जो म्हारो नवण पनो ।
 दृग अनियारो अंजन सोहैं लटकी अलक फनाइ ।
 कुमकुम पोर संवार सजीली भीहैं नवल बनाह ।
 हारह मेल बसन तन मोहे, भूषण रतन घनाह
 अंग अंग सोभा कही न जावै मोहे नवल बनाहं ।
 सेंधों सरस संवार छबीलो मुष छवि सों लों नाह ।
 सरस रसीली बंक विलोकन तन घर स्याम बनाह ।
 मसि भी नांसा टूना की छवि लषि मन मथ लई पनाह ।
 लषि निहारी नैन सिहावैं मन बस कियो बनाहं ।
 हरपि निरपि कै मगन भई है पद्यो कछू टोनाह ।”

प्रकृति वर्णन

प्रकृति काव्य की मूल-प्रेरणा है, यह एक निर्विवाद तथ्य है। सदैव से ही प्रकृति ने पूज्य, समान तथा लघु बनकर कवि के इंगितों पर नृत्य किया है, अतः प्रकृति का स्वरूप कवि की धारणाओं तथा भावनाओं के अनुरूप होकर काव्य में चित्रित होता रहा है। काव्य के आरम्भ काल से वर्तमान काल तक प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण हुआ है। कहीं आलम्बन रूप में, कहीं आध्यात्मिक शिक्षिका के रूप में तथा कहीं पृष्ठ भूमि के रूप में वर्णित है। कहीं आलंकारिक चमत्कार का प्रदर्शन करती हुई, कहीं कवि के भावों के अनुरूप संवेदनात्मक रूप में तथा कहीं छायावादी, रहस्यवादी तथा प्रगतिवादी कवियों के काव्य में समयानुकूल वेष धारण करके उपस्थित होती रही है।

शृंगार-युगीन संगीत काव्य में वर्णित प्रकृति के प्रधानतया दो रूप उपलब्ध होते हैं।

१—उद्दीपन रूप

२—आलंकारिक रूप

नाना भावों तथा रसों की उद्दीप्ति में सहायता प्रदान करने वाला प्रकृति का रूप उद्दीपन की श्रेणी में आता है। इस वर्ग का प्रकृति-चित्रण संगीत-कवियों में प्रचुरता के साथ दृष्टिगत होता है। उद्दीपक प्रकृति कभी पृष्ठभूमि की सज्जा करती है, कभी वातावरण की सृष्टि करती है, कभी भावोत्कर्ष में सहायक होती है।

अरी यह किकिन मदन बधाई की। आली। प्यारी। सो बदन वार बंधाय।

अरी यह नूपुर पैजनि नीलम। आली। प्यारी। जटित जराब बनाय।

अरी यह मनहु मनोभव डरपि शंभु सों। आली। प्यारी। चरन रह्यो लपटाय।

रसतरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर। मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी महाराज, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

आलंकारिक रूप विभिन्न दृश्यों तथा आलंवरों के रूपोत्कर्ष, चित्रात्मकता तथा नाटकीयता का प्रदर्शन करने में सहायक होता है। सादृश्यमूलक तथा विषमतामूलक दोनों प्रकार के आलंकारों में इसका प्रयोग होता है।

इन रूपों में कवियों ने प्रकृति के दोनों रूपों जड़ तथा चेतन दोनों को लिया है। जड़ प्रकृति में वृक्ष, गिरि, मेघ, सरिता, पवन, पुष्प, पल्लव तथा शाखा आदि का वर्णन है। चेतन प्रकृति में पशु तथा पक्षियों को लिया गया है।

अधिकतर प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में ही प्राप्त होता है। पृष्ठभूमि की सज्जा करना प्रकृति का धर्म ही है। कवि को जो भी वर्णन करना है, उसके अनुरूप प्रकृति का रूप दिखलाता है, जिसके कारण आगे आने वाले चित्रण में सौन्दर्य की वृद्धि हो जाती है। पाठक वर्णित रस की अनुभूति के लिए अपने हृदय में पृष्ठभूमि बना लेता है, जिसके फलस्वरूप साधारणीकरण को पूर्ण सफलता प्राप्त होती है, संगीतकाव्य में इसका विशेष महत्त्व है। उदाहरण रूप में लिखे गए गेय पदों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि गायक अपने गीत अथवा पद से श्रोता को प्रभावित कर ले।

पृष्ठभूमि की सज्जा

कवि की संकेतात्मक अभिव्यक्ति के कारण पृष्ठभूमि के रूप में वर्णित प्रकृति का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ जाता है। राधा और कृष्ण के मिलन का दृश्य सरस बनाने के लिए, कवि फागुन के महीने का 'मुकुलित वन अरु मालती' 'फूले तमाल', भ्रमरों के गुंजन के साथ 'जुही निवारी केतकी', पिक तथा भोरों के शोर के साथ, सोन, जुही और मल्लिका कदली, कदम्ब, फूले कमल आदि का पृष्ठभूमि के रूप में आश्रय लेता है। साथ ही प्रच्छन्न रूप में इसके भीतर जिन संकेतों की ओर कवि इंगित करता है, वह शृंगार युगीन काव्य की विशेषता है। कृष्ण की सखी दूती बनकर राधा से कहती है कि 'छवीली री यह रितु ओसर फाग के यह गन्यो कहा अयान री।' श्याम तुम्हारे बिना छिन भर भी धीर नहीं घर सकते। प्रकृति किस प्रकार आकुल बना रही है। तमाल वन और फूली हुई मालती का वर्णन कर, सखी योवन की आकांक्षा का संकेत देती है, जुही केतकी पर भ्रमरों के गुंजन से प्रिय के गुंजन की इच्छा का संकेत करती है। कदली और कदम्ब झुक झुक कर जल-तीर का स्पर्श कर रहे हैं, यह प्रकट रूप में प्रकृति वर्णन है, पर प्रच्छन्न रूप में कृष्ण के स्पर्श-इच्छा का संकेत है।

राग सारंग धमार

'रंगीली री तुव मुप चंद चकोर वह यह देवें बिन अकुलाय री ।
छवीली री मुकलित वन अरु मालती सो फूले सबै तमाल री ।
रंगीली री जुही निवारी केतकी जहां भ्रमरन की अति गुंज री ।
छवीली री सोन जुही अरु मल्लिका तहां पिक मोरन को सोर री ।
रंगीली री कदली अंब कदम्ब हू यह भुकि परसैं जल तीर री ।
छवीली री फूले कमल तरुनजा जहां कुमुद भए वृज चन्द री ।'

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व संविर, जोधपुर।

इतना प्रकृति वर्णन करने के पश्चात् सखी राधिका से अनुरोध करती है कि 'तुम मान तजो और हरि को जाकर भेंट लो, वह तुम्हारा पथ निहार रहे हैं। फागुन के समय का विचार करके, रंग भरे चलकर भेंट लो।' यह सुन कर राधिका उठ जाती है और कुंज द्वार पर हँसकर भेंट करती है। कृष्ण जो 'मिलने के लिए अकुला रहे थे, भुजा के पास ले आते हैं और अनुराग से मिलते हैं।'

'रंगीली री मान तजो हरि भेंटिये वह तब पंथ रहे निहार री।

छवीली री गिरधर भेष वरन से तू दामनि निहार री।

रंगीली री वह तन स्याम तमाल है यह लपटनि किन छवि वेलि री।

छवीली री कुंज महल चलि भेंटिये जहां नागर नंदन नंद री।

रंगीली री रंग भरे किन भेंटियां यह फागन समय विचार री।

छवीली री यह सुनि उठि चली भांवती, जहां प्रीतम नवल किसोर री।

रंगीली री कुंज द्वार हंसि भेंटि के यह गहि लीनी भुज पास री।

छवीली री नगधर के अनुराग सौं यह मिलि हैं आय अकुलाय री।'^१

यह स्पष्ट है कि यदि इसी मिलन का वर्णन उपरिलिखित पृष्ठभूमि स्वरूपा प्रकृति वर्णन से रहित होता तो इसके भीतर छिपी व्यथा की अनुभूति पाठक को नहीं हो सकती थी।

दृश्य को सुन्दर तथा प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए जो प्रकृति वर्णन हुआ, उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है।

'ध्रुवपद। राग सारंग चौतालो।

मंजर फूले तैसे ही फूले फूल। अस्ताई।

कलियां विकास पतवा दुहरी ले नीकै सोहत भूल।१।

पल्लव मृदु तर सोहत डारन में सरसी सापा अंकुरेन।

बीने मन्जुल तैसो मूल।

जैसे ब्रजवेलि के कुंज में भूल रहे है दोउ भूल।'^२

वातावरण

वातावरण की सृष्टि करने में संगीत-काव्य की प्रकृति ने बड़ी सहायता की है। कवि पाठक को स्वयं अनुभूत रस की अनुभूति कराने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का यथातथ्य वर्णन करता है, परन्तु मादक वातावरण की सृष्टि के लिए यह आवश्यक नहीं कि प्रकृति का प्रकृत रूप ही सम्मुख आए। वर्णन के बीच बीच में प्राकृतिक वस्तुओं का आश्रय लेकर कवि वातावरण अनुकूल बना लेता है। घटाओं का अकस्मात् घिर आना, बूंदों का गिरना, पक्षियों का बोल उठना, मृगों का ठगे से रह जाना, पवन का मस्त होकर बहना, नदी का बहते रहना, वृक्ष की छाया तथा कुंजों का वर्णन, ये सब वातावरण के सृष्टा हैं। रागिनी पहाड़ी 'मैन छवी सखियों के मध्य बंठी बीना बजा रही है', वहाँ कवि 'मलयागिरि

१. रस-तरंग, जवानसिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. 'ध्रुपद और खयाल, मान सिंह, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर।

की कदम्ब की छांह' का वर्णन करके वातावरण को शीतल बना देता है,^१ त्रवणी रागिनी 'लाल दुकूल पहने हार गले में पहने सुकुमार तन से कदली की छांह में बैठी रहती है' तो दिन भर की गर्मी के पश्चात् पेड़ की छाया में जो विश्रान्ति प्राप्त होती है, उसकी अनुभूति होती है। इस राग को गाने का समय तीसरा पहर है।^२ यहाँ प्रकृति के शान्त तथा स्निग्ध वातावरण का चित्रण है। भूला भूलते समय जमुना के किनारे लता और तरुओं का झुमना भूले की आनन्दानुभूति के लिए अनुकूल वातावरण बना देता है।

देखो रंग हिंडोरे भूलनि ।

भूमि भूमि भुकि रहे लता तरु श्री जमुना के कूलनि ।^३

कुंजमहल की ओर मधुर मुरली को सुनते हुए राधिका सखियों के साथ जा रही है, तभी बीच में 'मोर कुहुक' उठते हैं, जिनसे और भी अधिक बरसने लगता है।^४ 'सरद की खिली जुन्हाई, वृंदावन में यमुना के तीर पर राधा की छवि और प्रफुल्लित तरु-वल्ली-सोभा' को देखकर ही कृष्ण राधा को रास करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

'सरद की निर्मल खिली जुन्हाई ।

वृंदारण्य तीर यमुना के राका की छवि छाई ।

प्रफुलित अरु-वल्ली सोभा लखि रास करन सुधि आई ।

'ब्रजनिधि' ब्रज जुवतिन मन-मोहन मोहन वेन बजाई ।'^५

भावोत्कर्ष

प्रकृति हृदय में उठने वाले नवों स्थायी भावों को उद्दीप्त कर रस में परिणत करने में सहायक होती है। प्रकृति का ऐसा वर्णन काव्य में अत्यन्त प्रचलित है। संयोग में नदी, वन, तरु, पल्लव, पुष्प, कीर तथा मोर आदि के साहचर्य से सुख प्राप्ति और वियोग में इनके प्रसन्न दिखाई देने पर नायक अथवा नायिका को पीड़ा का अनुभव शृंगार कालीन

१. 'तिय में छकी मलयागिरि की कदम्ब की छांहि विराजि रही ।'

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२.

तीनि प्रहर में गाइये त्रवीनि दिवस प्रवीन ।४०।

बैठी कदली छांह में कर सरोज को फूल

हार गरे सुकुमार तन त्रवणी लाल दुकूल ।४१।

राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, प्रतापसिंह जी महाराज, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २१० ।

४. 'कुंजमहल की ओर सुनियत मधुर मुरलिका धोर ।

रस बरसत घनस्याम मनोहर कुहुक उठे री मोर ।'

ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०८ ।

५. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृष्ठ २०६ ।

काव्य में विस्तार से वर्णित है। शृंगार-काव्य के उदाहरण-काव्य में भी प्रकृति का उदीपन रूप प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

दीपक राग नायक के रूप में रति के समान रमणियों के संग केलि-क्रीड़ाएँ करता है, उसी समय निशा में घन घोर घटाओं के अन्वकार आ जाने से रसोद्दीप्ति हो जाती है।

‘युग जाम निसा घन घोर छयो, अंधियार घनो सरसायत है।’

रति सी रमनी रति मन्दिर में पति केल कलानि रिभावत है।^१

भूला भूलते समय कृष्ण और राधा अनुराग के हिडोले में तो भूल रहे हैं, प्रकृति के उपकरण और भी उनके अंगों में रंग बढ़ाते हैं। ‘लता लहक लहक कर सुमनों की सुगंध से भर जाती है’, जिससे ‘श्याम और श्यामा दोनों के हृदय सरस हो उठते हैं।’

‘प्रीतम निकुंज मंजु कालिंदी के कुंज जहां भूलत हिडोरे पिय प्यारी

छवि पावै हैं।

लहकि लहकि लता सुमन सुभार रही महकि सुगन्ध अंग रंग

उज्जावै है।

सुन्दर सरस अंग रंग सों रंगीली श्यामा श्याम संग भूलन में सबै

मन भावै है।

मचक रंगीली मैं दामिनी तरस रही नगधर पै कोटि काम मूरति

लजावै है।^२

वियोगिनी कामोदी कोकिल के सुन्दर वचनों को सुनकर दुख पाती है, क्योंकि कामदेव जग जाता है, अतः ‘कोकिल के वैन सुनकर हँसी छोड़ कर उदास हो जाती है और नायक को कुंजों में ढूँढ़ने लगती है।’^३

आलंकारिक रूप

आलंकारिक रूप में जहाँ प्रकृति का आश्रय कवि लेता है, वहाँ सौन्दर्य के प्रतीक उपमानों को हेय अथवा समान दिखाकर नायक अथवा नायिका के रूप को अतीव सुन्दर अथवा विशिष्टतामय दिखाता है। यह वर्णन पारम्परिक है। प्रकृति के कुछ उपमान हैं, जो अपने क्षेत्र में सर्वोच्च समझे गये हैं तथा जिनका वर्णन संस्कृत काव्यों से होता आया है। गौर वर्ण के लिए कुंद, चम्पक आदि, नेत्र के लिए मृग, खंजन, मीन, कपोत, हस्त, चरण के लिए कमल, मुख के लिए चन्द्र, गति के लिए मराल, गज, शरीर के सौन्दर्य के लिए रति कामदेव आदि का वर्णन होता आया है। इसके लिए कवि सादृश्यमूलक तथा विषमतामूलक

१. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. रस-तरंग, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर तथा मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

३. ‘तिय कोकिल के कल बैन सुनै दुष पावत मैंन जगे मन में।
तजि हांसि उदासि कामोद घरी सुनि हारति नायक कुंज न में।’

राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

दोनों ही अलंकारों को अपनाता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के सहारे रूपोत्कर्ष दिखाया जाता है। यह आलंकारिक वर्णन चित्रात्मकता की सृष्टि भी करता है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं नाटक के समान चलना, उठना आदि का वर्णन भी इस रूप में किया गया है, जिससे अलंकारों के कारण नाटकीयता का समावेश हो जाता है।

प्रकृति अधिकांशतः रूप-उत्कर्ष के रूप में प्रयुक्त हुई है। प्रकृति के उपमान की शोभा उपमेय से कम करके दिखाने में उसकी द्युति को नायक अथवा नायिका के सम्मुख हीन, म्लान दिखाने में कवि का उद्देश्य अलंकार-प्रदर्शन से अधिक रूप को उत्कर्ष देना रहा है। फलस्वरूप मेघमलार 'चन्द उज्यारिहूँ, ते अति उज्ज्वल है,'^१ देसकारी 'सरद के संपूरन सुधाधर की सोभा को जीत लेती है'^२ तथा भूपाली की 'मन्द गति को देखकर मराली लजा कर रह जाती है,'^३ पंचम चन्द्रमा की द्युति मंद करता है,^४ तथा श्याम राग के तन की 'श्याम छटा श्याम घन घटा की छवि को छीन लेती है'^५।

इसी प्रकार वियोगिनी कामोद का 'मुख पंकज सों मुरभाय' रहा है।^६ वसंत राग के 'श्याम तन की शोभा नील सरोज से भी अधिक अभिराम' लगती है।

'नील सरोजहुँ तैं अभिराम लसैं तन स्याम की सोभा सुहाई।'

गावैं नचैं युवती हरिवल्लभ राग वसंत की रीत बनाई।'^७

नीलाम्बर में चमकता हुआ गौर शरीर ऐसा लगता है, मानों घन में दामिनि चमक रही हो।

'बर अम्बर नील मनो घन में तन की दुति दामिनि सी भलकैं।'

'विज्जुलता तिय दमकि कैं मिली स्याम घन आई हो।

नगधर स्याम तमाल के मनु लपटी हैं बेल सुहाई हो।'^८

१. 'अति उज्ज्वल चंद उज्यारिहूँ तैं उपरें ना महां छवि छाजतु है।' संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
२. 'सरद संपूरन सुधाधर की सोभा जीति वदन की दीपति दिपति उज्यारी है।' संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
३. 'कुंकुम की घोरि पुलि रही है कुचनि पर मंद गति देषि लजि रहति मराली है, संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
४. 'उमगे तन जोवन जोति जगै मुख चंदहु की दुति मंद करै।' राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. 'छोन लई छवि स्याम घटानि की स्याम वनो तनु है अति नीको।' संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. 'मुख पंकज सों मुरभाई रहो, जित ही तित डोलति है वन में।' राग-रत्नाकर, राधा कृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
७. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
८. राग रत्नाकर, राधाकृष्ण, वही।
९. रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर तथा पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

रूपक तथा उत्प्रेक्षा का आधार लेकर कभी कवि 'तिय' को 'विज्जुलता' तथा 'स्याम' को 'घन' का रूप देता है, और कभी उस गौर-स्याम तन के सम्मिलित रूप की कल्पना में कवि 'तमाल' से लिपटी हुई 'बेल' की कल्पना करता है। प्रकृति की इस रम्यता के सादृश्य पर कृष्ण तथा राधा का स्वरूप और भी अधिक निखर उठता है।

उपमान के रूप में प्रयुक्त प्रकृति के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति के आलंकारिक वर्णन ने काव्य में चित्रात्मकता का समावेश कर दिया है। चित्रकला से न केवल प्रभावित वरन् उसके पूर्ण ज्ञानी ये कवि वर्ण योजना में दक्ष हैं। प्रकृति के रंगों से साम्य तथा वैषम्य दिखा कर किस प्रकार काव्य-चित्र सा अंकित हो जाता है, इसका इन्हें बड़ा अच्छा ज्ञान है। प्रातःकालीन शुभ्रवेला में श्वेत रंग की साड़ी का पवित्रता से युक्त बड़ा तीक्ष्ण प्रभाव पड़ता है, अतः भैरवी 'प्रात समै प्यारी उठि उठी श्वेत साड़ी भारी फैली', जिसके कारण उसके 'मुख चन्द की उजारी जोति जागती' है,^१ अथवा मलयागिरि के वन (मलयागिरि का रंग नीले, बैंगनी आदि पर्वतीय रंगों की कल्पना लिए है) का घनत्व आसावरी के श्याम वर्ण के 'देह की दीप्ति' को और अधिक 'दीपित' बना देता है।^२

चित्रात्मकता के अनेक उद्धरण इस काव्य में प्राप्त हैं। परस्पर साम्य रखने वाले रंग तथा विरोधी रंगों को साथ साथ दिखा कर वर्णन को चित्रित किया है। केसरिया रंग का दुपट्टा पीला जरी तथा लाल रंग की इज्जार पहना कर कवि तुरक तोड़ी को चित्रित करता है।^३ सोरठी सुरंग (लाल रंग) की साड़ी के साथ, हरे रंग का लहंगा पहने है, जो अत्यन्त लग रहा है, कंचन से शरीर में चन्दन का रंग तथा चन्द्रमा का रंग मिल कर कांति बढ़ा रहे हैं। काले बाल तथा श्वेत मोती, लाल बिन्दी की छवि बढ़ा रहे हैं। इन रंगों से पूर्ण देशकारी रागिनी चित्रवत् दिखाई देती है।^४

चित्रात्मकता लाने के लिए केवल रंगों की योजना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् अंगों का सूक्ष्म वर्णन इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि नायिका का चित्र स्पष्ट होकर सामने आ जाए। 'वृषभानु-मुता की छवि को देखकर सकल दुख दूर हो जाते हैं।'

'नैन उनीदें अंग अरसाने पिय संग सब निसि जागे।

छूटे वार हार उर उरभे अरुन अघर रंग पागे।

१. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. 'पट केसरिया पिसवा जहरी, मग लाल इज्जार सुगंध सनी।'

संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

४. 'कंचन सौं गात तामें चन्दन चरचि राख्यो

फैल्यो है प्रकास मुख चन्द की उजारी को।

कारे सटकारे अति सोभित सुदेस केस

मोतिन की माल भाल व्यंदा छवि भारी को।'

राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

भुकि भांकनि मुसकानि मनोहर मनहुं मैं सर लागे ।

‘व्रजनिधि’ लखि वृषभानु-सुता-छवि निरखि सकल दुख भागै ।^१

इस काव्य में उपलब्ध आलंकारिक प्रकृति-चित्रण स्पंदन से युक्त और सजीव दृष्टिगोचर होता है ।

ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिससे प्रकृति का स्पन्दन स्पष्ट होता है । बादलों का भूमकर आना, नन्हीं बूंदों का बरसना, तथा पवन से वृक्षों की लता का भुक भुक पड़ना, प्रकृति चित्रों को गत्यात्मक बना देता है ।

भुक भूम भूम बदरा

बरसन लागे नांनो नानी बूदन तें । अस्ताई ।

रसराज पिय्या अजहूँ नही आए ।

बिरछ लता रही लूम लूम ।^२

नायिका के हृदय में कृष्ण के प्रति मिलन की आतुरता है । उसकी पीड़ा को समझ कर कामदेव के दूत के रूप में मेघ आते हैं और विरहिणी को घेर्य बँधाते हैं । कृष्ण की आकुलता का भी परिचय देते हैं । मेघों की चल-चित्र की सी छवि अंकित की गई है ।

‘राग मलार’

काम के आये मेघ नकीव

गरज गरज कै कहत वाम सौं उदयो तोही नसीव ।

दामिनि दीप दिषावत भामिनि चलहु वेग करि पीर ।

घन बूदन में देष सकत नहि तुम प्रिय प्रान अधीर ।

स्याम निशा मधि स्याम भेष सजि देषहु स्याम शरीर ।

तुव देपै बिन आकुल नगधर अरी धरै नहि धीर ।^३

राधिका के ‘मनोहर तीर पर स्थित बाग के मध्य झूला झूलते’ हुए प्रकृति भी इतनी आनन्द मग्न हो जाती है, कि ‘घन मधुर ध्वनि करने लगते हैं, पिक, मोर चातक शोर करते हैं ।’ ‘अलि रस से पूर्ण बहूत सी तानों का गान करने लगते हैं ।’ ‘हरित वन-भूमि लताओं पर भूम भूम कर, दूर से प्रिया की विहार-स्थली को देखकर मुदित होती हैं ।

‘मनोहर तीर मधि बाग फूला रचै

तहां झूलति ललित भानु नृप की लली ।

मधुर घन घोर पिक मोर चातक सोर

करत अलि गान बहु तान रस की रली ।

हरित वन भूमि रहे भूमि भूमि लतन पर

१. व्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २२० ।

२. ‘ध्रुपद और खयाल’, मान सिंह जी, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

३. रस-तरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर; पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

जहां खेलति प्रिया निज बिहार स्थली ।^१

ऐसा प्रकृति वर्णन नाटकीय, सजीव और सप्राण दृश्यों की सृष्टि करता है। पाठक के समक्ष प्रकृति अपने कार्य व्यापारों में लीन चल-चित्री सी चलती रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति का स्वरूप बहुत कुछ परम्परा ही है, अधिकतर के उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति का वर्णन किया गया है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपने चारों ओर विकसित और विस्तृत प्रकृति वैभव की ओर से इन संगीतकारों ने अपनी दृष्टि बन्द नहीं रखी। प्रकृति के साथ मनोभावों का साम्य उपस्थित करना उनका उद्देश्य रहा है और उसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है।

कल्पनातत्त्व

काव्य में कल्पना का विशेष स्थान है। कल्पना के आधार पर ही कवि ज्ञात जगत के चित्रों को नीरस घरातल से उठाकर उस स्थान पर पहुँचा देता है, जहाँ वह चित्र एक नवीन रूप लिए तथा नए रंगों से चित्रित पाठक के समक्ष आ जाता है। कवि की प्रतिभा के अनुसार कल्पना के अनेक रूप बन जाते हैं। साधारण से साधारण वस्तु भी कल्पना का आवरण पहन कर सौन्दर्य की प्रतिमा जान पड़ती है। संगीत-काव्य, जो संगीत तथा शृंगार रस दोनों से समन्वित है, ऐसे आलम्बनों से भरा हुआ है, जिन्हें कल्पना के इन्द्रधनुषी रंगों में रंग कर अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जा सके। सौभाग्यवश शृंगार युग के प्रतिभावान तथा रसिक कवियों में कल्पना की विचित्रता भी प्रचुर मात्रा में थी, अतः संगीत-काव्य कल्पना के सुन्दर चित्रों से भर गया।

कल्पना के सहारे कवि प्रस्तुत दृश्यों का अप्रस्तुत उपमानों तथा दृश्यों से साम्य तथा वैषम्य दिखाकर अपने वर्णन में सजीवता लाता है। इसके लिए उसे अलंकारों की सहायता लेनी पड़ती है।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य में जहाँ वस्तु वर्णन तथा रूप वर्णन हुआ है, वहाँ अधिकतर परम्परा से आए हुए उपमानों का ही प्रयोग हुआ है, नवीनता का अभाव सा है। कवि केशों के लिए नाग तथा घटाग्रों के अतिरिक्त तीसरा उपमान कठिनार्थ से ढूँढ़ पाता है। नेत्रों के लिए खंजन, मीन, कमल तथा मृग आदि पारंपरिक उपमानों को छोड़कर कवि कहीं नहीं जा पाता। मुख की दीप्ति चन्द्रमा, कुन्दन, चंपक तथा स्वर्ण के ही समान हो सकती है। नवीन काल्पनिक उपमानों का प्रयोग कवि के लिए असम्भव सा जान पड़ता है। इसी प्रकार अंगों के वर्णन में अन्य शृंगारिक कवियों के समान सौन्दर्य के मान्य प्रतीकों की तुलना में नायक तथा नायिका को ऊँचा दिखाना ही पर्याप्त है। इसका उल्लेख पहले वस्तु-वर्णन में किया जा चुका है।

रास-केलि में संग्राम का रूपक वाँच कर, कवि नायिका तथा नायक दो प्रतिद्वन्द्वियों का मिलन दिखाता है। शरद पूर्णिमा की निशा है। वन में मलय समीर प्रवाहित हो रहा

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २५१।

है। यमुना के किनारे वेणु की ध्वनि हो रही है। 'बंसी धुनि' दूती बनकर ब्रज वाला के समीप जाती है। 'समर-विजय' आरंभ होता है। एक ओर से 'ब्रज वाला परम प्रेम के रथ पर आरूढ़ होकर, विषम पंथों की ध्वनि' करती जाती है। रास-केलि रूपी संग्राम करके 'मदन रूपी गढ़ को जीतना' है। मार्ग अवरुद्ध करने के लिए 'विमल जुन्हाई जगमगाती' है, सभी ओर वेणु ध्वनि छाई है। प्रेम रूपी नदी में 'तिय रगमगी' है। बृंदावन भी आ गया। 'तिय' उत्साह वश गृह काजों को छोड़कर चलती गई, रुकी नहीं। अन्त में श्याम रूपी रस मिला। सिंधु रूपी मन में सरिता रूपी प्रेम का प्रवाह हो रहा है। हाथों से हाथ मिलते हैं, मानों 'कमलों के बीच जुन्हाई की ज्योति' मिल रही हो।

इस प्रकार राधा कृष्ण से मिलती है और तब रास प्रारंभ होता है।^१ स्त्रियों के मध्य शोभित यह श्याम-समन्वित समूह 'कंचन मणियों के बीच श्याम मणि से पूर्ण कामदेव की माला' सी जान पड़ती है।

'अति दरसी सरसी जु छवि छै तिय मधि नंद लाला हो।

कंचन मणि विच स्याम मणि मनी मैन की माला हो।'^२

इस प्रकार की कल्पना पूर्णतया नवीन नहीं है, फिर भी सुन्दर है।

अरुण चरणों में मेहदी लगी हुई ऐसी शोभित होती है, मानों 'पंकज दल मंगल मान' कर बैठ गये हों।

'चरन हरन मनि नहनि में दी मंहदी सुपदान।

बैठे पंकज दलनि मनौ मंगल मंगल मान।'^३

चरणों ने 'सहज अरुणाई' प्राप्त की है, मानों अनुरागी दृगों का रंग लिपट

१. 'पूरन ससि निस सरद की चलि बन मलय समीरा हो।

होत बेंग रव रास हित तरनि तनैया तीरा हो।

बंशी धुनि दूती पठे बोली है ब्रज वाला हो।

समर विजै आरंभ रस रास करन नंद लाला हो।

पूरन प्रेम आरूढ़ रथ विषम पंथ धुनि बैना हो।

रास केलि संग्राम हित चली मदन गढ़ लेना हो।

विमल जुन्हाया जग मगी रही बैन धुनि छाया हो।

प्रेम नदी तिय रंग मगी बृंदा कानन आया हो।

रुकी न कापे तिय गई छाड़ि काज गृह चाहा हो।

मिल्यो श्याम रस सिंधु मन सलिता प्रेम प्रवाहा हो।

जुरें करनि कर कंवल विच अमल जुन्हाया जीती हो।

हाव भाव बहो गान गति रास रंग अति होती हो।'

रसतरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह उदयपुर।

२. रसतरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर।

३. वही।

गया है ।^१

कहीं कहीं विचित्र सी कल्पनाएँ भी मिलती हैं । 'सुंदर श्याम सुजान' की छवि वर्णन करते हुए जवान सिंह जी कहते हैं—

'प्रेम गली विच रूप की पंभा पंसी ह्वै पूर
लोचन दुर्वल वायु रे भए जात है चूर ।'^२

प्रेम की गली के बीच रूप के स्तम्भ के समान मुख हँसी से पूरित है, जिसे देखकर लोचन दुर्वल वायु के समान उसी से चूर हुए जा रहे हैं । कृष्ण के हँसते हुए मुख की शोभा का वर्णन है ।

कल्पना-वैचित्र्य का एक उदाहरण नागरीदास जी द्वारा लिखित दोहों में प्राप्त होता है, जिसमें अंगों के आंगन में 'पेमा' सजाया गया है और प्रिय के मन पर शासन करने के लिए 'अदालत' की योजना की गई है ।

'अंगना अंग आंगी तनी श्रीपी लाल सुरंग
मनीं भैन पति स्याह के पेमा परे उतंग
कुच कुरसी विच उरवसी ऊंची लखी सु तौर
पिय मन पति स्याही करन रची अदालत ठौर ।'^३

एक स्थान पर नेत्रों को कया बाँचने वाला बनाया है, जो मोहन को 'सेनों' से विलोकते रहते हैं तथा श्रोतागण 'इकटक' देखते रहते हैं । अथवा मोहन के संकेतों को देखकर नेत्र भी कथक बनकर कथा भी कहने लगते हैं । इस सांकेतिक प्रेमालाप का आनंद नागरीदास श्रोता बनकर ले रहे हैं ।

'नैन कथक वाचत कथा मोहन सैन विलोक ।
पीवत श्रोता नागरी इह रस इकटक ओक ।'^४

'मीन विमल कपोल पर अलकों की लट' आ जाने से कवि कल्पना करता है, मानों मदन सुंदर लेख लिखने वाला मुंशी है, जिसने काँच पर काफ़ लिखा है ।

'मीने विमल कपोल पर लगी छूट लट साफ़
पुस नवीस मुनसी मदन लिप्यो काच पर काफ़ ।'^५

१. 'रुचिर रूप कोमल विमल सहज अरुनई पाई ।

मनु अनुरागी दृगति को रंग रस्यो लपटाइ ।'

रस-तरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर तथा पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. रसतरंग, जवान सिंह, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

३. रस तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

४. वही ।

५. वही । इस दोहे का प्रथम चरण 'मुबारक' के 'अलक-शतक' में दूसरे रूप में मिलता है । "अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यो साफ़ ।" मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृ० ३६८ ।

दूती के लिए गेंद का उपमान बनाकर कवि एक सरस दृष्य की सृष्टि करता है। ज्यों ज्यों कृष्ण राधा के पास विनती का संदेश भेजते जाते हैं, त्यों त्यों राधा और भी अधिक मौन ग्रहण करती जाती है। बार बार संदेश लाने और ले जाने में दूती चागान की गेंद बन गई है। रात्रि बीती जा रही है। मिलन की कोई आशा न देखकर कुछ भुँभुलाहट से भरे प्रेम-उपालम्भ में दूती राधा से कहती है।

‘आवत जाति अरि हों हारि रही री

ज्यों ज्यों पिय विनती करि पठवत त्यों त्यों तुम गढ़ मौन गही री।

तिहारे बीच परै सो बावरी हों चौगान की गेंद बही री।

कृष्णदास प्रभु गिरधर नागर सुखद जामिनी जात बही री।’^१

जहाँ दृश्य वर्णनों की योजना है, वहाँ कवि की कल्पना अनूठी है। इस क्षेत्र में श्रृंगार युगीन संगीत-काव्यकार हिन्दी साहित्य में सर्वोच्च स्थान ग्रहण कर सकता है। दृश्य चित्रों में जो विशेषताएँ न कवियों की हैं, वह यह है कि पाठक के सम्मुख दृश्य अपने वास्तविक रूप में खिंच जाता है। उसकी स्थिरता जड़ न रह कर चेतना को प्राप्त हो जाती है, जिससे पाठक, दर्शक बन जाता है।

उमंग से भरे हुए कृष्ण-राधा भूला भूल रहे हैं। सभी सखियाँ गान करती हुए उन्हें भुला रही हैं। प्रारंभ में कवि भूले पर बैठे या धीरे धीरे भूलते हुए कृष्ण-राधा की मुस्कान तथा सुगन्धित शरीर आदि का वर्णन करता है। धीरे धीरे भूने की गति में तीव्रता आती है। विनोद तथा गति के कारण केश भी अस्त व्यस्त हो जाते हैं, और गति तीव्र होने पर श्रम-विन्दु झलक आते हैं। प्रिय के ‘अंगों से लगी’ राग देश में गाती हुई राधिका अतीव सुन्दरी लगती है।

‘भूलत रंग उमंग सूं नव जोवन सुकुमारी हो।

भूलन आई सबै जु री कुंज भवत सुषकारी हो।

मृदु मुसकनि पिय भावती मुप सोभा सरसाती हो।

रंग रंगी पिय श्याम के नवल नेह हुलसाती हो।

सौवै लपट मधुप गन आवत अंग सुगंध सुहाती हो।

नव नवला सी भावती श्याम संग रस भाती हो।

नव नव रूप उजागरी सुन्दर सोभत भेसा हो।

भूलत विविध विनोद सू छूट छूट गए केसा हो।

स्वेद पेद तन झलक ही श्याम सुमदन नरेसा हो।

अंग लगी पिय श्याम के गावत राग जु देसा हो।

गुन गरबीली भावती अति सोभा सरसाई हो।

ललित हिडोरे छवि लसी प्रीतम के मन भाई हो।’^२

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २२६।

२. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

उपर्युक्त चित्र में कल्पना के आवाह पर चित्रण की सजीवता और गत्यात्मकता का अच्छा आयोजन हुआ है।

कृष्ण लताओं की ओट से राधा को अकेले भूलते देखकर मुग्ध होते हैं, यह दृश्य कवि की कल्पना को प्रसार देता है।

‘नगधर रसिक लाल देपै लतनि ओट वारै

तून तोर तोर मति विसराई है।

भूलत रंगीली की तरंगन बढी हैं यों घटा

ओट चंद मानो घूँघट दरसाई है।’^१

घूँघट के भीतर दुलहिनी के विकल लोचनों की ‘मीन केतु के मीन’ से समता देकर, कवि नेत्रों की चपलता का दृश्य सम्मुख रख देता है।

‘दुलहिनी लोचन विकल हैं मोहन मुख छवि लीन

घूँघट में अकुलात मनु मीन केतु के मीन।’^२

दृश्य चित्रों की कल्पना में रास के चित्र विशेष रूप से सुन्दर बन पड़े हैं। रास का वर्णन पढ़ते समय, कृष्ण और राधा का सखियों के साथ किए गए रास नृत्य का दृश्य नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। नृत्य की गति में क्रमिक विकास स्पष्ट रूप से जान पड़ता है। सर्व प्रथम नर्तक और नर्तकी खड़े दिखाई देते हैं। संगीत की ध्वनि सुनाई देती है। पैरों की गति, संपूर्ण नृत्य, संगीत की बढ़ती हुई लय के साथ नूपुरों की गति में वृद्धि, नर्तकियों के उल्लास में उमंग, चरम सीमा पर पहुँचा हुआ मृदंग का स्वर, नर्तकों की नूपुर ध्वनि तथा एक दूसरे के प्रति अभिनयात्मक भाव आदि सब का चलित-चित्र सा खिंचता जाता है। कवि की कल्पना में ये चित्र इतने स्पष्ट रहते हैं कि सजीवता स्वाभाविक रूप में आ जाती है।

रास मंडल में उधर कृष्ण की अलकों राधिका के कुंडलों में उलभ जाती हैं, इधर राधिका की बेसर कृष्ण की बनमाला में ‘अरुभी’ रह जाती है। इस प्रकार ‘गौर और श्याम’ एक दूसरे से उलभ जाते हैं। इतनी देर आवेश में नृत्य करने के कारण पाँव डग-मगाने लगते हैं। मुकुट एक ओर झुकता है, चन्द्रिका दूसरी ओर जाती है, सिर के सकल श्रृंगार रास के रस में मग्न हो जाते हैं, स्त्रियों के अंचल अपने स्थान से हट जाते हैं, केश गुंथन से छूट छूट पड़ते हैं, हार टूट टूट कर गिर रहे हैं। यह सौन्दर्य राशि, नृत्य की इस श्रमिता अवस्था में बिखरी पड़ रही है, जिससे मन्मथ का भी मन मथ गया है, तो और किस में सामर्थ्य है कि इसका वर्णन करे।

‘उत अरुभी कुंडल अलक, इत बेसर बन माला हो।

गउर श्याम अरुभी दोऊ मंडल रास रसाला हो।

गर बहियां गति लेत मिल श्रम बस सिथलत भाया हो।

१. रस-नरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर।

२. वही। यह दोहा किसी अन्य कवि का जान पड़ता है, कवि ने इसे गीत की अन्तरा रूप में गाया है।

डारे मन लै सबनि के डगमग डगनि डुलाया हो ।
 लेत बलैया रीभ दोऊदोऊ पोछत श्रम वारी हो ।
 नचत सनी अति रंग सों बनी मदन अनुहारी हो ।
 उते झुको हो जव मुकुट इते चंद्रिका वारा हो ।
 भये रास रस मगन तन सर के सकल सिंगार हो ।
 खूटि खूटि अंचर गए, छूटि छूटि गए वारा हो ।
 श्रमिक रास रस रंग पै टूटि टूटि गए हारा हो ।
 कहत कहत कहां लगि कहें कवि मति मंद प्रकासा हो ।
 तिन के भोंह विलास में कोरि कोरि कै रासा हो ।
 नागरिया दये रास में अगनित कलप बिताया हो ।
 मनमथ हू को मन मथ्यो कथ्यो कौन पै जाया हो ।^१

संगीत काव्यकारों ने अलंकारों के द्वारा काव्य में कल्पना का परिचय तो दिया ही है, कहीं कहीं ऐसे सरस प्रसंगों की योजना की है कि इनकी सूझ की प्रशंसा करनी पड़ती है ।

कृष्ण और गोपियों के प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए गौरस-लीला की कल्पना में एक चित्र उपस्थित किया है, जिसमें गोरस वेचने जाती हुई सखी को कृष्ण मार्ग में रोकते हैं तथा गोपी-कृष्ण का परस्पर संवाद होता है । यह गीत 'गरवा' के लिए लिखा गया है, अतः नृत्योपयुक्त सरस वार्तालाप है ।

‘गोरस मांगत गोरसिक । हो । चलन देत मग रोंक ।
 भगरत हैं किस दान कै । हो । पी रस नैनन ओक ।
 वदत नांही ग्वालनी । हो । अंग जोवन उफनात ।
 मुसकनि महरि मजेजसू । हो । शोभित सुंदर गात ।
 जोवन माती फिरत है । हो । दांन हमारो मार ।
 गरव गहेली ग्वालनी । हो । बोलत वचन सम्भार ।
 रूप लालची लाल हो । हो । मांगत नाहिन दांन ।
 चलत कछु तुम और हो । हो । मानत नाहिन आन ।
 जोवन गर्व गहेलड़ी । हो । मानहुं मेरी बात ।
 गोरस मोहि चपाइये । हो । सैनन हाहा पात ।
 लाल जु मानत नाहि हो । हो । मोहि हटकी मग मांह ।
 लोक चतुर लष पाइये । हो । छाड़ों मेरी बांह ।
 प्रेम छके दोउ विपन मवि । हो । भगरो दांन निवार ।

१. नागरीदास कृत, रस-तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर । यह पद नागरि छाप से युक्त है, अतः नागरीदास कृत है, परन्तु जवान सिंह के रस संग्रह ‘रस-तरंग’ से उद्धृत है ।

नगधर प्यारी कुंज मथि । हों । प्रीत छके सुकुवार ।^१
 कृष्ण और राधा के इस प्रेम भरे संवाद में बड़ी सजीवता है ।

गोपियों को मुरली से सदैव ही सौतिया डाह रहा है । सूर की गोपियाँ भी कहती थीं कि मुरली कृष्ण के अधरों पर लेट जाती है और अपने पैर दबवाती है, कृष्ण को टेढ़ा खड़ा कर देती है, इतने कष्ट देने पर भी 'मुरली तऊ गोपालहि भावत' । रसखान की राधा मुरली को अधरों पर रखने को मना कर देती है, 'मुरली अधरान धरी अधरा न धरोंगी ।' लगभग वही भावना यहाँ मिलती है ।

'मुरलिया भार भरी री तैं मोहें नंद लाल
 पिय रस अधर लगी निसदिन तू सोति सुहाग लहाय ।
 विहरत अधर पलव सय्या पर पिय मुष लगी सुहाय ।
 धुनि सुनि विकल भई हम तलफत लाग्यो विरह दहाय ।
 नगधर पिय मुष लाग लाग कै तू बैरिन मति पाय ।'^२

'मुख लगना' मुहावरे का बड़ा सुन्दर प्रयोग है । कष्ट देने वाले व्यक्ति के लिए स्त्रियों की भाषा में 'खाए जाने' का प्रयोग प्रचलित है । वही प्रयोग यहाँ है कि 'कृष्ण के मुँह लग कर, तू हमें न खाए जा ।'

सरस प्रसंगों के अतिरिक्त उचित चमत्कार भी इस काव्य की विशेषता है । यह भी कवियों की कल्पना शक्ति का परिणाम है । गोधूलि की बेला में घर लौटती हुई गोपी को कृष्ण मार्ग में रोक लेते हैं । गोपिका अपने आँचल को छुड़ाने के लिए अपनी सास का डर दिखाती है, ऊखल बंधन की याद दिलाती है और फिर कृष्ण को लज्जित करने के लिए बलि से दान माँगने की कथा पर व्यंग्य करती है । 'बलि से दान मांगा था, तब तो वामन (बौने) हो गए थे, अब देखो, हम से दान लेकर किस छवि को प्राप्त करते हो ! कृष्ण को परास्त करने में यह उक्ति सहायक होती है ।

'राग गौरी चौतालो ।

बैर गोधूरिक भई, रोकी लै मग मांझ, छाड़ देहो अंचरा ग्रह सासु सुन
 पायो है ।

नगधर रसिक लाल प्रेम मतवारे प्यारे, रूप रस भीजै ओदान हटलाय
 हो ।

सांच हूँ कहूँ हूँ स्याम मेरी यह मानो बात, आगे दधि चोखे में, ऊखल
 बधाय हो ।

बलहूँ पै मांग दान वामन भए हो देखो हम हूँ पै दान लै के कौन छवि
 पाय हो ।'^३

१. रसतरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर ।

२. वही ।

३. रस तरंग, जवान सिंह जी, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

संकेतों के द्वारा कृष्ण तथा राधा के भावों को बताने के लिए दूतियों ने विचित्र कल्पनाएँ की हैं। वन्द कमल से रात्रि का संकेत, पानी की बूंदों से आँसुओं की ओर संकेत प्रसिद्ध ही है। प्रतापसिंह जी 'ब्रजनिधि' की रचना में भी कुछ इसी प्रकार की कल्पना है।

‘रागसारंग वृंदावनी, खयाल (जल्द तिताला)
पिय प्यारी भोजन भेलेहूँ करत मनो मन हारे।
कांसों कनक रु सुवरन चौकी रचना रचि ललिता जु धरें।
भक्ष्य भोज्य अरु लेज्य चोज्य ओ चोस्य पेय लें अमित भरें।
गुपचुप लाय प्रिया मुख दीनी अर्द्ध पान ले आप करें।
समुझि सकुचि चतुराई को प्यारी नैनन मांझ लरे।
खांड खिलोना नटनी लेकरि प्रीतम के सनमुखहि अरे।
नोक ठंडोलहि समुझ लाल जू हसनि दसन से फूल भरे।
श्री राधे ब्रज-निधि को कौतिक सखियां अखियन मांह चरें।’^१

भाषा तथा शैली

काव्य का सौन्दर्य भाषा ही में निहित है। शृंगार युगीन संगीत-काव्य की विशेषता का सौन्दर्य है। ब्रज भाषा का जो रूप राजाश्रित कवियों के द्वारा निर्मित हुआ है, उसमें फ़ारसी के प्रभाव से विशेष माधुर्य आ गया है।^२ इन कवियों का शब्द-चयन संगीत से पूर्ण है, अतः नाद तत्त्व इसमें विशेष है। चित्रोपमता, गत्यात्मकता, आलंकारिकता, प्रभावोत्पादकता आदि इस काव्य की भाषा के गुण हैं। काव्य-गुण अोज, प्रसाद तथा माधुर्य, रसानुकूल प्राप्त हैं। शब्द शक्ति की प्रचुरता है। अनुकरण मूलक शब्दों के प्रयोग से ध्वन्यात्मकता की सृष्टि की गई है।^३ इस काव्य का साधन तथा साध्य दोनों ही संगीतात्मक होने के कारण इस काल की रचनाओं में अनुकूल छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।

संगीत-काव्य की भाषा सर्वत्र ब्रज ही है। संगीत विषय के लिए प्रयुक्त ब्रज का ऐसा उपयुक्त स्वरूप इन काव्यों में देखकर यह भ्रम होने लगता है कि संगीतात्मकता ने

१. ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६८।

२. “The sweetness and melody of Brij Bhasa appealed powerfully to the nobles of the imperial court at Agra, and their contact proved highly beneficial to its growth. In the hands of hindu officers who had learnt Persian, the language lost its old crudity, and became sweet, chaste, and artistic”. History of Muslim Rule. Ishwari Prasad, p. 543.

३. “संगीतमयता के गुण की वृद्धि शब्दों की मैत्री तथा भावानुकूल ध्वनि वाले शब्दों की योजना से भी होती है।” अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीन दयाल गुप्त, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, सं० २००४, पृ० ७६१।

ब्रज का यह स्वरूप बना दिया, अथवा ब्रज भाषा के स्वाभाविक माधुर्य ने कवियों में संगीतात्मकता ला दी। ब्रज भाषा का साहित्यिक रूप यहाँ पाया जाता है, अधिकतर तत्सम शब्दों का प्रयोग है। तद्भव का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है, अतः कहीं भी काव्य में क्लिष्टता नहीं आने पाई है।

तत्सम शब्दावली में भैरव के रूप-वर्णन का एक चित्र है—

‘उज्जल गात सोहात सुधा सम

उज्जल वस्त्र विराजत तैसो ।

सीस जटा मनि कुंडल कानन

कण्ड विषे विष सोम सो जैसे ।”

तद्भव शब्दों के निर्माण में इन काव्यों का शब्दों की कोमलता की ओर ध्यान रहा है। इस दृष्टि से भाषा में निम्न परिवर्तन दिखाई देते हैं। अधिकतर ‘श’ को ‘स’ तथा ‘स’ को ‘श’ में परिवर्तित कर अनेक शब्दों का तद्भव रूप बन गया है। ‘विशाल’ का ‘विसाल’, ‘शीश’ का ‘सीस’, ‘विश्राम’ का ‘विसराम’ शब्द बन जाते हैं।

तत्सम शब्दों की मात्राएँ हटा कर तथा जोड़ कर भी तद्भव शब्द बनाए गए हैं। ‘त्रिलोचन’ के स्थान पर ‘त्रलोचन’, ‘आनंद’ का ‘अनंद’, ‘ललाट’ का ‘लिलाट’ हो गया है। कहीं अक्षरों का लोप तथा वृद्धि भी हो जाती है। ‘परिवार’ का ‘परवार’, ‘त्रिशूल’ का केवल ‘सूल’, ‘उज्ज्वल’ का ‘उज्जल’, ‘स्वरूप’ का ‘सरूप’ हो गया है। ‘मालव कोसिक’ शब्द का रूप ‘मालकोसिक’ अथवा ‘माल कोस’ इसी प्रकार बन गया है।

संयुक्त वर्णों में कठोरता आ जाती है, अतः एक संयुक्त वर्ण को तोड़ कर दो वर्ण बना लिए हैं, अथवा दोनो वर्णों में से एक ही रख लिया गया है। अतः ‘घनाश्री’ का ‘घनासरी’, ‘मृदु’ का ‘मरदु’, चंद्र का ‘चंद’, उद्योत का ‘उदोत’ ‘वागेश्वरी’ का ‘वागेसुरी’ अथवा ‘वागेसिर’, ‘मूर्ति’ का ‘मूरति’ बन गया है। इन शब्दों में कोमलता आ गई है। शब्द के प्रारम्भ में यदि संयुक्त वर्ण हो तो प्रारम्भ के अर्द्धाक्षर का अवश्य ही लोप हो जाता है, जैसे ‘स्फटिक’ का ‘फटिक’। ध्वनि में कोमलता लाने के लिए अल्प प्राण से महाप्राण और महाप्राण से अल्पप्राण बना दिया जाता है, अतः ‘घ’ के स्थान पर ‘ग’, ‘क’ के स्थान पर ‘ग’ बन गया है। ‘प्रकाश’ के स्थान पर ‘परगास’, ‘प्रकट’ के स्थान पर ‘परगट’ हो जाता है।

कोमलता लाने के लिए आवश्यकतानुसार कहीं कहीं स्वरों तथा व्यंजनों का योग कर लिया जाता है। ‘उल्लास’ का ‘उल्हास’, ‘जरी’ का ‘जहरी’ ‘मुसकान’ का ‘मुस्कयान’ बन जाता है।

‘ज’ का ‘य’, ‘य’ का हर स्थान पर ‘ज’, ‘ण’ का ‘न’, ‘व’ का ‘ब’, ‘व’ का ‘ब’, ‘ड’ का ‘ड’ हो गया है। ‘जवान सिंह’ का ‘यवान सिंह’, ‘योगिनि’ का ‘जोगिनि’, ‘युवती’

१. राग-विवेक, पुरुषोत्तम, सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

का 'जुवती', 'कल्याण' का 'कल्यान', 'मणि' का 'मनि', 'करुणा' का 'करुना', 'तोड़ी' का 'तोडी', 'पहाड़ी' का 'पहाड़ी', 'बहुरि' का 'बहुरि', 'बंगाली' का 'बंगाली', 'वसंत' का 'वसंत' आदि शब्द इसके उदाहरण हैं।

शब्दों का बहुवचन बनाने में 'नि' का योग करके तत्सम शब्दों की कठोरता को कोमल कर दिया गया है। 'जटा' का 'जटानि', 'पक्ष' का 'पक्षीवन', 'तरंग' का 'तरंगन' आदि शब्दों को इसी प्रकार कोमल बनाया गया है।

इसके अतिरिक्त लोक-प्रचलित तद्भव शब्दों का भी प्रयोग है। 'वस्त्र' के लिए 'वसन', 'गर्जन' के लिए 'गाज', 'मस्तक' के लिए 'माथा' ऐसे ही प्रयोग हैं।

संगीत की लय के लिए आवश्यकता पड़ने पर दीर्घ मात्राएँ लघु और लघु मात्राएँ दीर्घ बन जाती हैं। 'गरे' को 'गरै', 'आसावरि' को 'असावरि', 'घोवन' को 'जोवन', 'माथे' को 'माथै' का प्रयोग इसी प्रकार हुआ है।

शृंगार-युगीन काव्य की भाषा मूलतः ब्रज है, परन्तु इसमें देशज तथा विदेशी दोनों भाषाओं के शब्दों का मिश्रण है। इसके दो कारण हैं। एक तो संगीत समस्त उत्तर भारत के राज्याश्रय में फैल गया था, दूसरे संगीत सीमा में बाँधी जाने वाली कला नहीं है, अतः शास्त्रों, ग्रन्थों अथवा गेय गीतों के द्वारा समस्त राज्यों में प्रचारित हो गया। यही कारण है कि प्रत्येक देश तथा गायक के अनुसार भाषा में परिवर्तन आ गया। जैसा शृंगार युगीन परिस्थितियों के अध्याय में बताया जा चुका है कि संगीत को न केवल दिल्ली दरबार में वरन् अधिकांश रूप में रियासतों के नरेशों तथा सामन्तों के दरबारों में आश्रय मिला था, अतः यह संगीत काव्य एक प्रदेश में सीमित नहीं रहा और सभी प्रदेशों के लिए लिखा गया। संगीत प्रेमी नरेशों के उत्साह के कारण संगीतज्ञों का एक से दूसरे राज्यों में आना जाना भी भाषा के मिश्रण का एक कारण बन गया। भाषा के ब्रज रूप में उन प्रदेशों के शब्द आ गए, जिनमें कवि अथवा कवियों का संगीत पहुँचा, फलस्वरूप देशज भाषाओं में राजस्थानी, अवधी, बुंदेलखंडी, पंजाबी तथा बंगाली सभी प्रभाव कहीं न कहीं पड़ा।

शृंगार युगीन संगीत काव्य का निर्माण मुगल बादशाहों के संरक्षण में विशेष रूप से हुआ, अतएव अरबी, फारसी तथा उर्दू के शब्दों का आ जाना स्वाभाविक था।

देशज शब्दों में सबसे अधिक राजस्थानी बोलियों का प्रभाव पड़ा है। अधिकतर संगीत काव्यकार भी राजस्थान में राजा हुए हैं, अतः कुछ पद तो केवल राजस्थानी ही में लिखे गये हैं।

‘आज रंगभीनी है जी रात ।

सुषड़ सनेही म्हारे महल पधार्या मिलस्या भर भर गात ।

रंग महल में रंग सूँ रमस्यां, करस्यां रंग री बात ।

‘वृजनिधि’ जी ने जावा न देस्यां होबाद्यो नें परभात ।’

१. वृजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० ३८० ।

राजस्थानी से प्रभावित ब्रज का प्रयोग तो बहुत अधिक प्राप्त होता है।

‘पारोसन कुं मैं अपनाई कबहुं न लै कहुं नांव ।’^१

‘देख्यो नगधर छैल अनोपो जण जण को मन तोलें ।’^२

‘पिय मन रो अधियारो दूर गयो सुप सेजां री सैल में ।’^३

उपयुक्त उदाहरणों में कुं (को), जण जण (जन जन), रो (का) का प्रयोग राजस्थानी है।

राजस्थानी के अतिरिक्त पंजाबी का प्रयोग भी अधिकांशतः दृष्टिगत होता है। केवल पंजाबी में लिखे गए गीत भी प्राप्त होते हैं। पंजाबी तथा राजस्थानी दोनों से मिश्रित ब्रज में भी और केवल पंजाबी मिश्रित ब्रज में प्राप्त होते हैं। केवल पंजाबी में लिखा गया ‘बृजनिधि’ का एक पद है,

‘ईमन

तपदे वेखण नू मैडे नैन ।

दिल दे अंदर हूका उठ दी रैन दिहा नहि चैन ।

वेपरवाही नंद महर दा सुधि मैडी नहि लैन ।

किसनू आखां गल्ला सईये ‘बृजनिधि’ ब्रज सुख दैन ।’^४

पंजाबी के कारक-चिन्हों तथा शब्दों ‘नू’, ‘दा’, ‘नाल’ ‘सानू’, ‘चंगा’ का प्रयोग तो पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

‘मैनू दिल जानी मोहन भाव दानी ।’

‘नंद दानी गुर प्यारा भावदा ।’

‘ये तो मन भावदा सुजाण ।’ आदि!

मिश्रित भाषा का एक सुंदर उदाहरण, मानसिंह जी कृत एक खयाल में प्राप्त है।

‘चंगी ए कलाल नी ।

चंगा दारुड़ा पिलाय दे । अस्ताई ।

बाई घर आयो छै मारु मतवालडो ।

ऊनै ज्यूं त्यूं विलमाय है ।

बाई घर म्हारे के थारे बारणे ।

तीजी ठौर न जाण दे ।

बाई थारो ऊवे रो उणिहारो एक सौ जी सुं विलम रहें लो ।

१. मान सिंह कृत ध्रुपद और खयाल, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

२. गीत संग्रह, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. मानसिंह कृत ध्रुपद और खयाल, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

४. बृजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६८ ।

बाई जी सूथौड़ी सो पिय्या मतवालो ह्वै इसो चौसरो कढाय दे ।^१
 'चंगी' तथा 'नी' का प्रयोग पंजाबी है तथा अन्य राजस्थानी शब्द प्रयुक्त हैं ।

ब्रज में पंजाबी क्रियाओं का प्रयोग भी प्राप्त होता है ।

‘सलौने स्याम ने मन लीता

रत्त दिहाडे कल नहि पड़दी क्या जाणां क्या कीता ।’^२

इसी प्रकार बुँडेलखंडी, अवधी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है ।

देशज भाषाओं के ग्रामीण प्रयोग भी यत्र तत्र प्राप्त हैं । ‘गलबहियां’, ‘खरभर’, ‘पौढाय’, ‘हरियाली बनो’, ‘बनड़ा’, आदि शब्द इसी प्रकार के हैं ।

फ़ारसी, अरबी तथा उर्दू के शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त है । अनेक पद उन्हीं भाषाओं तथा शैली में लिखे गए हैं । उर्दू के शब्द तो ब्रज भाषा का एक अंग बन गए हैं ।

फ़ारसी मिश्रित उर्दू का एक ध्रुपद कृष्णानन्द व्यास देव ‘रागसागर’ के ‘राग-कल्पद्रुम’ में संग्रहीत है ।

‘वैटुल्ला सरीक अल्ला अभी कुदरत ।

रट दुसरो कीनो रसूल जगत सुहाग ।

आप करतार कर सुत हैदर दीयो नवी को

तुम कर वसी सुधारो उमद को ।

दीन भजव तुम मदीन इलम आली ।

वहां हसन हुसैन दोउ करत सेवा बन्दगी ।

हक आरवदीन आंख दसा मुदवाकर ।

जाफर काज मरजात की हकीतकी न

कीतक वादी न अशकरी आश पूरण में

हदी महम्मद हादी रदनुमा ।’^३

संगीत काव्यकारों को उर्दू भाषा इतनी प्रिय लगी कि ब्रज के समान ही उर्दू में एक बड़ी संख्या में ‘रेपता’ पद लिखे हैं ।

‘दर ख्वाब मुझे दाद सोच दई निर्देई ।

तड़फूँ हूँ बेकरारी में बस बावरी भई ।

खोया ह्वास होश-बजा किस सेती कहूँ ।

आतिश विरह की मेरे तन मन में आ छई ।

पैगाम आया प्यारे का सुन खुरमी हुई ।

सद शुक बजा लाई भला अब तो सुधि लई ।

१. मानसिंह कृत खयाल, मुनि कांति सागर संग्रह, उदयपुर ।

२. वृजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १६६ ।

३. लखनऊ यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी; संगीत नाटक एकेडमी पुस्तकालय, न्यू देहली ।

पूछे थी हकीकत में 'ब्रजनिधि' की जुबानी ।

कि इतने में कहा कि नहीं पाती 'पिया दई ।

पाती लगाय छाती से बैठी थी बांचने

खुलने न पाई खाम मेरी आंख खुल गई ।'^१

उर्दू शब्दों का प्रयोग ब्रज भाषा में बिखरा सा जान पड़ता है ।

'प्रिय दृग बिहरन को करी मनमथ फरस फिरास ।'^२

'कैफ भरी अखियन सूं हेली भारत छिन छिन गर्व गहेली ।'^३

हुस्न दिखाइ सांवले प्यारे मन जबरी सै लीया ।'^४

'दिल', 'खफा', 'देवफा', 'महर', 'अजब', 'जुदाई', 'नजर' आदि उर्दू शब्दों का बाहुल्य है ।

इन रचनाओं में खड़ी बोली के क्रिया रूप भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं । यह अधिकतर उर्दू के प्रभाव के कारण आया है ।

'सुनकर दिया जवाब बिहंसि 'ब्रजनिधि' प्यारे,

मुझको तो प्यारी एक तू ही क्यों अब रूठी ।'^५

'राखे पियारी तुम तो टोना सा कर गई हो ।'^६ आदि ।

विदेशी भाषाओं में उस समय तक अंग्रेजी भी भारत में आ चुकी थी । अंग्रेजी से हिन्दी का सम्पर्क उस समय तक स्थापित नहीं हुआ था, अतः अधिक शब्दों का आना तो असम्भव था, परन्तु एक दो शब्दों का प्रयोग यह चरितार्थ कर देता है कि अंग्रेजी भाषा भी किसी सीमा तक इन कवियों को परिचित बना चुकी थी ।

‘राग सारंग (चौताल)

बैठे दोऊ उसीर—बंगला में ग्रीष्म सुख बिलसत दंपति-वर'^७ में 'बंगला' शब्द अंग्रेजी के 'बंगलो' शब्द से आया है ।

संगीत-काव्य में शब्द-चयन माधुर्य तथा लालित्य की दृष्टि से किया गया है, अतएव अधिकतर कोमल वर्णों का प्रयोग किया गया है । संयुक्त तथा द्वित्व वर्णों का प्रयोग यथा सम्भव नहीं किया है । शब्दालंकारों के सहारे भाषा को सुन्दर बनाया है । संगीत सम्बन्धी रचनाओं में श्रुति माधुर्य है, अतः श्रुत्यानुप्रास का अधिकतर प्रयोग है ।

१. ब्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० ३२१ ।

२. रस-तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. रस-तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

४. ब्रजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १६२ ।

५. वही, पृ० २५७ ।

६. वही, पृ० ३१३ ।

७. वही, पृ० १५६ ।

‘अति लाल लसै दुति अंतर की, तन में तरुनाई कछू सरसै ।’
 ‘भूषन भाई जनाई कछू मुस्कयाई तवै बहुते ललचानी ।’
 ‘लोनी लसै दुति देह की यो लपि गोत कपोत को लाज रह्यो है ।’
 ‘मीठे मीठे वैन चित चैन दैन कहि कछू मुस्कयाई उपजावत मदन को ।’

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ल, स, त, द, न, म आदि अक्षरों के बारम्बार प्रयोग से पदावली में लालित्य आ जाता है। यह श्रुति-माधुर्य संगीत-काव्य के लिए अत्यंत आवश्यक है।

संगीत की सृष्टि करने के लिये शब्दों का चुनाव ऐसा किया गया है कि शब्दों में माधुर्य श्रवित होता सा जान पड़ता है।

‘निकसि निकसि मंडलनि तैं लेत ललित गति लाला हो ।

देखि देखि अंकन भरति रीभि रीभि बस वाला हो ।’^१

ऐसे उदाहरणों से यह काव्य भरा पड़ा है। मधुर बनाने के लिए ही द्वित तथा संयुक्त वर्णों का प्रयोग नहीं किया गया है। अतः ‘हर्ष’ के स्थान पर ‘हरप’, ‘सन्मुख’ के स्थान पर ‘सनमुष’ हो गया है।

‘सब जन हरप बघाई कीरत सनमूष गाई ।’^२

इन रचनाओं की भाषा में संगीतात्मकता निहित सी हो गई है, अतः अक्षरों तथा शब्दों की आवृत्ति मात्र से ही काव्य में गेयात्मकता आ जाती है। शब्दों तथा अक्षरों के चुनाव में अधिकतर न, ल, स, त आदि कोमल वर्णों का प्रयोग किया गया है। संगीत इन शब्दों से भङ्कृत सा होता है। जहां ट, ज, क आदि कठोर अक्षर आते भी हैं, वहां उनको भी मधुर वर्णों के सहयोग से सरस बना दिया गया है।

‘जमुना तट बंसी बट छैया ठाढो वैन बजावे हो हो ।

कोउ-इक नट नागर रस सागर गुन आगर गुन गावै हो हो ।

गलबहियां दै के प्यारी को राग सुनाय रिझावै हो हो ।

रसिक सिरमनि स्याम सुंदरवर ब्रजनिधि हियो सिरावै हो हो ।’^३

भाषा को संगीतात्मक बनाने में अनुप्रास सबसे अधिक सहायक होते हैं। छेकानुप्रास तो इतना अधिक है कि उसकी गणना ही व्यर्थ है। वृत्त्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास सभी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। अनुप्रास की विशेषता यही है कि एक अक्षर की बार बार आवृत्ति होने से स्वयं ही एक स्वर-लहरी का निर्माण हो जाता है। उसको पढ़ने से स्वाभाविक रूप से पाठक के स्वर में लय उत्पन्न हो जाती है। वही लय रचना को संगीत से पूर्ण बना देती है।

‘मुख दीन मलीन धरे पट को कर वीन लिये मुरझाई रही ।’
 में ‘ईन’ की पुनरावृत्ति मधुर है।

१. रस तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. वही ।

३. ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १५६ ।

‘रति सी रमनी रति मंदिर में पति केलि कलानि रिभावत है ।’

‘लागी जगावन भावन को जुरि आवन गावन तानन दै मन ।’

में क्रमशः र, त तथा ‘आवन’ के बारम्बार प्रयोग करने से श्रुति-माधुर्य उत्पन्न हो जाता है ।

संगीत-काव्य को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अनुकरण मूलक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिसमें यह काव्य नाद-तत्त्व से सम्पन्न हो गया है । जो शब्द अपना अर्थ स्वयं ही प्रतिध्वनित करते हों, वह काव्य को सामर्थ्य तथा संगीत दोनों ही प्रदान करते हैं और इसी प्रकार काव्य की प्रभावोत्पादक शक्ति में भी वृद्धि हो जाती है । अनुकरण मूलक शब्द कार्य व्यापारों, वातावरण के सर्जक अवयवों तथा आभूषणों के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

रात्रि भर जागते रह कर पति के साथ केलि-क्रीड़ाएँ करते रहने के कारण ‘मधु माधवी’ के शरीर में शिथिलता आ गई है, परन्तु प्रेम में पगी है, अतः मानों मदिरा के बहुत अधिक पान करने से छक गई हो, ऐसी आकृति हो गई है । इसके कारण नेत्रों में आलस्य, निद्रा, प्रेम, प्रसन्नता, प्रेम-प्राप्ति का सन्तोष, आत्म-विश्वास, मदिरा का उन्माद तथा सब भावों के साथ प्रिय को फिर देखने की अभिलाषा, एक पंक्ति में आ गई है ।

सब अंग थकी, मधु माध छकी, छवि देपन को अखियां ललकै ।^१

इस पंक्ति में ‘थकी’ शब्द सुनते ही नायिका का शिथिल होकर गिरता हुआ शरीर दिखाई देता है । ‘छकी’ शब्द सुनकर प्रेमोन्माद के आधिक्य से भ्रूमातु हुआ मुख सम्मुख आता है और ‘ललकै’ शब्द से आँखों में मुख देखने की अभिलाषा, लालच, अत्यन्त तीव्र चाह प्रेम आदि भावों का परिचय मिलता है । ये शब्द कार्य व्यापारों के अनुकरण पर रखे गए हैं । इसी प्रकार हृदय के उठते हुए आवेगों के लिए ‘चरजत तरजत’^२ शब्द का प्रयोग, भुँड में आती हुई स्त्रियों के लिए ‘भुँडन घूमत आवैं’^३ अपना अर्थ स्वयं ध्वनित करते हैं । आभूषणों से युक्त स्त्रियों के झूलने पर ‘झूलत भ्रमक भ्रमक नमै’,^४ कहने से झूलक हिलने पर आभूषणों से निकली हुई ध्वनि स्वयं सुनाई देने लगती है । लता, सुमनों से भरे होने के कारण अपने यौवन का प्रदर्शन ‘लहकि लहकि’^५ कर करती है । ‘लहकि लहकि’ शब्दों से आत्म प्रदर्शन, आत्म-सौन्दर्य का आभास, आनंदानुभूति को अपने में सीमित न रख सकने का अर्थ, ध्वनित होता है ।

१ राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. “अरी यह मन चरजत तरजत हो । वाली प्यारी । राध्यों नाहि रहाय ।”
रस-तरंग, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर ।

३. “भुँडन घूमत आवैं । वाह वा । फागुन रंग बढावैं । वाह वा ।” वही ।

४. “झूलत भ्रमक भ्रमक नमैं अनि नगधर पिय मन भाई ।”
रस-तरंग, जवानसिंह जी, मुनि-कांति सागर संग्रह ईदयपुर ।

५. “लहकि लहकि लता सुमन सुनार रही महकि सुगंध अंग रंग उपजावे है ।”
गीत संग्रह, जवानसिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर ।

नाना प्रकार के विलास करते हुए नायक-नायिका का वर्णन अनुप्रास तथा संगीतात्मक शब्दों में करके चित्र को ध्वनि से पूर्ण बना दिया है ।

‘प्यारी पिय महल उसीर दोउ विलसै नाना मुख के पुंजे ।

हिलियां मिलियां सब रंगरलियां कुंजन-गलियां अलियां गंजे ।’^१

नृत्य का वर्णन जहाँ कवि करता है, वहाँ केवल अनुकरण मूलक शब्दों का प्रयोग ही भावाभिव्यक्ति में सहायक होता है, अतएव मृदंग की ध्वनि के साथ हाव भाव से समन्वित नृत्य करती हुई मुखाकृतियाँ पाठक को स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं ।

‘राग ईमन रास

थोंग थोंग तत तत तत थेई थेई थेई थेई

नृत्यत सुघर स्याम ताल मन भाई ।

घुम कट घुमकट घिलान रंग रही पीय संग

नृत्यत नवेली सब ही सुहाई ।

तत थेई तता थेई थोंग गतै लेत प्रीतम संग

गत अलाप मिली राग केदारी गाई ।

उलट उलट रीझ नगधर संग रंग लेत

चपल नैन बंक भौंह त्रिभुवन छवि छाई ।’^२

यहाँ मृदंग तथा नूपुरों की बड़ी स्पष्ट ध्वनि निकलती जान पड़ती है ।

ये संगीतकार नृत्य तथा संगीत की ध्वनि में इतने तन्मय हो जाते हैं कि मृदंग के ध्वनित शब्दों को काव्य से पृथक अस्तित्व देना कठिन हो जाता है ।

‘धिलंग तक थुंगा तक धिलंग धित्ता धी धी वाजत मृदंग ।

ये दोऊ नृतत गावत सप्त सुर विधान तान अति सुधंग ।

नूपुर कंकन की कनी मुरली डफ वाव भींझ जंत्र

ईमृत कुंडलीं आवज श्री मंडल मुरझ ताल

ताकड़ता धीकड़ता ता कड़ता धीकड़ता ताकड़ता

धीकड़ता ताता थेई रटत सखी रहत रंग ।’^३

संगीत तथा नृत्य के क्षेत्र में ऐसे अनेक ध्वन्यात्मक चित्रण पाए जाते हैं ।

उमड़ घुमड़ कर मेघों के आने की ओर वर्षा की ध्वनि कवि इस प्रकार अंकित करता है—

‘सावनियां री लूमा भूमां मेहड़ो रमझम वरसे है ।’^४

प्रकृति के समान कभी कभी सखियों के आभूषणों से भी संगीतात्मक ध्वनि उत्पन्न होती है । गौरी पूजते समय ‘नवल किशोरी सखियों’ के साथ आई है ।

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १६० ।

२. गीत संग्रह-नगधर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २२४ ।

४. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० १७० ।

‘गोरल पूजत नवल किसोरी ।

संग सहेली सब अलवेली लिए फूल फल रोरी ।

गान करत कोकिल सी कुहकत उमंगि उमंगि रंग बोरी ।

रमकि भमकि चमकत चपला सी धमकत मिलि इक ठोरी ।

रुनक भुनक आभूपन खनकत छनकत विछिया डोरी ।

लचकत कटि उचकत दे तारी चांचर की चित डोरी ।’^१

सखियों के जड़ाऊ वस्त्रों में चपला जैसी चमक है । आभूषणों तथा विछियों में ‘रुनक भुनक’ शब्द हो रहा है । इस प्रकार का वर्णन बड़ा सजीव है ।

रास के लिए मंडल बनाने के उपरांत बीच ही में कहीं से मुरली की ध्वनि आती है । नृत्य बहुत प्रकार से होने लगा । नूपुरों की ध्वनि आकाश तक पहुँचने लगी । कुंडल हिलने लगे, वेणियाँ खुलने लगी, मोतियों की मालाएँ भूलने लगीं, पग डगमगाने लगे, ऐसा रस से पूर्ण रास रचाया गया, जिसमें चित्त के हाव भाव भी लुटने लगे ।

‘विहाग (रास)

‘रास रच्यो नंद लाला, लीने संग सकल ब्रजवाला ।

अद्भुत मंडल कीने, अति कल गान सरस स्वर लीने ।

लीने सरस स्वर राग रंजित बीच मुरली-धुनि कड़ी ।

होन लाग्यो नृत्य बहुविध नूपरन-धुनि नभ चढ़ी ।

हलत कुंडल खुलत बेनी भूलत मोतिन माला ।

धरत पग डगमग विवस रस रास रच्यो नंदलाला ।

चित हाव भावन लूटे, अभिनपट्ट मोहन सर छूटै ।

ललित ग्रीव भुज मेलत कवहुंक अंकमाल भर भेलत ।’^२ आदि ।

शब्द-शक्ति की दृष्टि से भी संगीत काव्य की भाषा संपूर्ण है । अधिकतर लक्षण बताने के लिए अभिधा शब्द शक्ति का ही आश्रय लिया गया है, परन्तु उदाहरण काव्य में लक्षणा तथा व्यंजना स्वाभाविक रूप से आ गई है । व्यंजना के अन्तर्गत कवियों के उक्ति-चमत्कार का भी प्रदर्शन हो जाता है । अभिधा शब्द शक्ति का एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा ।

‘मध्यमादि अरु भैरवी पुनि बंगाली होइ ।

वैराटी अरु सैधवी ये भैरव की जोई ।

टोडी पंभावति बहुरि गौरी गुनकारी रागि ।

ककुभौ मिलि ये रागिनी कौसिक कौ बड़ भाग ।’^३

१. गीत संग्रह नगधर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. नागरी दास कृत रास, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २४४ ।

३. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

लाक्षणिक प्रयोगों में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में देखने में आता है। 'विक जाना' अपने आप को समर्पण करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, अतः गोपी कृष्ण से कहती है—

‘कान्हां तैं मेरी पीर न जानी ।

बिन देखे तलफों दिन-रैना छवि को निरखि लुभानी ।

‘अरे निरदई निठुर नंद के अखियन बरसत पानी ।

ब्रजनिधि तेरी चितवनि मांही को तिय नाहि विकानी ।’^१

कृष्ण ने 'शोश पर अमित दुति चंद्रिका' धारण की है। 'उर पर लाल बनमाल, कटि पर पीत पट' कसा है। 'गजगति, से चलकर बाँसुरी बजाता है, फिर मुस्कुराकर ऐसी चितवन से देखता है कि 'जब से नैनो ने निहारा है, तब से सुधि हार दी'। दुखी होकर नायिका कहती है 'यह बिहारी छवि देखकर तो मेरा मन, न घर का रहा न घाट का ।'

‘नैननि निहारी सुधि हारी या बिहारी छवि

तब तैं न मेरो मन घर को न घाट को ।’^२

‘घर का न घाट का’ मुहावरे का सुंदर उदाहरण इस उक्ति में मिलता है।

‘हाथ मलना’ या ‘हाथ मलते रह जाना’ का प्रयोग तभी होता है, जब अपनी अधिकार-प्राप्त वस्तु किसी और के द्वारा ले ली जाए। इसका बड़ा सुंदर प्रयोग यहाँ मिलता है। श्याम के साथ नृत्य करती हुई राधिका जरतारी सारी में झिलमिलाते हुए शरीर के साथ ऐसी शोभायमान हो रही है कि दामिनी उस दृश्य को देखकर ‘हाथ मलती’ रह जाती है। श्याम घन में गौर-वर्ण के साहचर्य से उत्पन्न, सौन्दर्य की अधिकारिणी अभी तक दामिनी ही थी।

‘रास में रसीली राधे श्याम संग नाचे

जरतारी सारी लसै भीना झिलमिल गात

नाचत श्याम संग भावती, मलै दामिनी हाथ ।’^३

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० १७३ ।

२. ‘सोस पर सोहत अमित दुति चंद्रिका की ।

बानिक रह्यो है बनि ललित ललाट को ।

राजत उदार उर पर बनमाल लाल ।

कटि पट कसत पिछौरा पीत पट को ।

गज गति ऐबो बर बाँसुरी बजैवो मृदु ।

मुसुकि चितैवो चित चेटक उचाट को ।

नैननि निहारि सुधि हारी या बिहारी छवि

तब ते न मेरो मन घर को न घाट को ।’

ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २६१ ।

३. रस-तरंग, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

‘भाड़ भोकना’ का अर्थ होता है, समय व्यर्थ गंवाना अथवा जो कुछ उपलब्ध किया, उसका कोई उपयोग नहीं किया, वह सब भाड़ में ही भोक दिया। कवि इसका प्रयोग अपने मन को शिक्षा देते समय करता है।

‘आज लौं तो तेरी कहीं कहीं सब हेरी अब
लोक लाज भार लै के भार ही में भोकिये।’^१

लक्षणा तथा व्यंजना का मिश्रित रूप इस उद्धरण में प्राप्त होता है।

‘प्रिय के मिलन की ‘लगन’ अग्नि से भी अधिक है, अग्नि तो जल से बुझाई जा सकती है, परन्तु ‘लगन’ तो तभी बुझेगी, जब प्रिय आकर मिलेंगे। कृष्ण से स्पष्ट रूप से यह न कहकर कि ‘आओ, मेरी लगन को तृप्त करो’ अपनी इच्छा का संकेत मात्र किया गया है।

‘लगनि अग्नि हू तैं अधिक निस दिवे जारे जीय।
प्रगट अग्नि जल तैं बुझै लगनि मिले जो पीय।’^२

व्यंग पूर्ण वचन बोलकर गोपिकाएँ कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती हैं, अतः ऐसे ही कथनों में उक्ति-चातुर्य भी मिल जाता है। बार बार रुठना और मनाना राधा के वश के बाहर की बात है, अतः कृष्ण के प्रति व्यंगोक्ति करती है।

‘घरी घरी को रूसनो हो कैसे वन आवै ?

है कोउ तेरे ववा की चेरी नित उठ पड़्यां लागि मनावे।’^३

‘घड़ी घड़ी में रुठने से कैसे काम चलेगा ? पाँव पड़ कर मनाने का कठिन कार्य नित्य प्रति नहीं हो सकता। कोई तुम्हारे बाबा की दासी तो नहीं है, जो नित्य उठकर पाँव पड़कर मनाए ?’ राधा की भोली व्यंगोक्ति सुनकर ही कृष्ण मुग्ध हो जाते हैं और ‘गिरधर नागर राधे राधे राधे’ गाने लगते हैं।^४

कृष्ण और राधा के प्रेम वर्णन में उक्ति-चमत्कार भी प्राप्त हो जाता है। पपीहा ऐसा निष्ठावान पक्षी है कि केवल स्वाति-नक्षत्र से ही तृप्त होता है, और कोई भी जल कण उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकता, अपने प्राणों की पपीहे से समता करते हुए राधा कृष्ण से कहती है कि ‘हम तो भोले हैं, तुम चतुर प्रेमी ही, प्राणों को पपीहा जान कर ही प्यासा मार रहे हो।’ अपनी दुर्बलता प्रकट हो जाने पर राधा के मन में हल्का सा पश्चाताप है। यही इस पंक्ति से व्यंजित हो रहा है कि ‘जानते हो न ! कि तुम्हारे समान कोई और नहीं है, जो इन प्राणों की प्यास बुझा सके।’

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २८७।

२. वही, पृ० २८४।

३. कृष्ण दास कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २२७।

४. ‘अब तो कठिन भई मेरी आली तो बिन लालन और न भावें।

कृष्ण दास प्रभु गिरधर नागर राधे राधे राधे गावें।

कृष्ण दास कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० २२७।

‘हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची विधना यह आनि ।
आनंद धन ह्वे प्यासन मारत प्राण पपीहा जानि ।’^१

उक्ति-चातुर्य कवि की प्रतिभा का परिचायक है। कवि साधारण सी बात को इस प्रकार कहता है, जिसमें कुछ चमत्कारिता आ जाए। वियोग की अग्नि ने बड़ी कठिनाई उपस्थित कर दी है। ‘मन में रखती हूं तो तन जलता है, और कहती हूं तो मुख जलता है ।’

‘सजनी वान वियोग की कठिन बनी है आइ ।
मन में राखे तन जरे, कहूं तो मुख जरि जाइ ।’^२

यह तो सभी जानते हैं कि ‘गांठ पड़ने’ से सुख नहीं मिलता, परन्तु ‘गंठजोड़े की गांठ’ में रंग चौगुना हो जाता है। विरोधाभास अलंकार के आधार पर ‘गंठ जोड़े की गांठ’ अर्थात् विवाह के प्रेम बन्धन की ओर इंगित किया है।

‘गांठ परै सुख होइ नहि यह सब जानत कोइ ।
गंठ जोरे की गांठि में रंग चौगुनो होत ।’^३

कहीं कहीं साधारण रूप से कही गई उक्तियों में प्रच्छन्न भाव-संकेत के द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि हो गई है।

गोपी को सिर पर पानी रखे देख कर कृष्ण उससे अनुरोध करते हैं कि ‘नेक’ पानी पिला दो। गोपी पानी पिलाने लगती है। कृष्ण ‘ओक’ (अंजलि) लगाते हैं, परन्तु उंगलियों को ढीली कर लेते हैं, जिससे पानी नीचे गिर जाता है और वह नेत्रों से गोपी की ओर संकेत करते जाते हैं। ग्वालनी देख कर समझ जाती है, मुस्कुरा कर कहती है ‘मैं तुम्हारी प्यास को जान गई ।’ और सिर पर गागर रख कर घर की ओर चली जाती है।

‘प्यासन मरत री नेक प्यावो मोहि पानी ।

लेहु जल पीवो लाल जब इन ओक कीन्ही ।

ढीली अंगुरिन जल चुचावत नैन सैन मिलावत

निरखि ग्वारि मुसकाय के कहत प्यास जानी ।

फिरि गागरि भरि सिर पर धरि घर चाली

तब लाल गैल रोवयो मग मई वाल अनाखानी ।’^४

काव्य में रस के उत्कर्ष के कारण गुण की स्थिति मानी गई है।^५

१. आनन्द-धन कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २२५ ।
२. आनन्द-धन कृत पद, ब्रजनिधि ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २८१ ।
३. वही, पृ० २८१ ।
४. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० १६७ ।
५. काव्यांग-कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २०७ ।

प्राचीन आचार्यों के अनुसार माने गए दस गुणों (श्लेष, समाधि, औदार्य, अर्थव्यक्ति, कांति, सुकुमारता, समता, प्रसाद, माधुर्य तथा ओज) में से केवल तीन गुण प्रसाद, माधुर्य और ओज परवर्ती आचार्यों के द्वारा माने गए हैं। 'शेष सात गुणों में से कुछ तो दोषों के परिहार स्वरूप होने से गुण मान लिये गये थे और कुछ का अन्तर्भाव तीन गुणों में ही हो जाता है',^१ अतः यहाँ इन्हीं तीन गुणों का वर्णन किया जा रहा है। इस काव्य में तीनों ही गुण प्राप्त होते हैं। प्रसाद गुण के अनुसार काव्य सरलता से युक्त होना चाहिये। 'जहाँ सरल, सीधे-सादे, सुबोध शब्दों के द्वारा वाक्य-रचना की जाती है, वहाँ 'प्रसाद' गुण होता है।'^२ इस दृष्टि से लक्षण-काव्य तथा उदाहरण काव्य दोनों में 'प्रसाद' गुण सर्वत्र पाया जाता है।

'राग कामोद कल्याण—गाढ़ चौताला
गला लाग मिलूंगी पीय खा मे तारे।
रस राज तोरे कारण मैं रही हूं
सारी रैन भर जाग जाग।'^३

अथवा

'मोरवा बोले है। देखो नंद कुमार।
मोरवा बोले है। देखो सुंदरता को मार।
मोरवा बोले है। देखो अद्भुत रूप रसाल।
मोरवा बोले है। देखो अति अद्भुत नटराज।'^४

सामासिक पदावली से युक्त काव्य-रचना में ओज गुण की स्थिति होती है।^५ इस दृष्टि से इस काव्य में ओज गुण कम मात्रा में पाया जाता है। सामासिक पद गायन की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते। गेय बनाने के लिए सामासिक पदों को विच्छिन्न करना आवश्यक होता है, फिर भी कहीं कहीं ओज कुछ मात्रा में प्राप्त हो जाता है।

'सरस भा सर-सरित निस-कमल दिन-कमल
अलि-अवलि-गान-धुनि सुनत छकि छकि रहे।
नाना-खग-वृंद-कुल करै चह चरचहुं
लठां कल-कुंज कहतकनि तकि तकि रहे।'^६

१. काव्यांग कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २०८।
२. वही।
३. मानसिंह कृत ध्रुपद तथा ख्याल, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।
४. जवान सिंह कृत रस तरंग, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
५. 'ओजः समासभूयस्त्वमेदं गद्यादि जीवितम्।' अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ८३।
६. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०४।

अथवा

'फुलवन सों भूकि रही लता मर्हि

ठाढे जहाँ कुंवर नटनागर ।

नव द्रुम पल्लव नव कुसुमावलि नवफल वृंदावन गुन आगर ।

नव निकुंज अलि-पुंज गुंज नव मंजु कंज प्रफुलित नव सागर ।

नवल लाल नव बाल माल गल वसन नए भूषनहि उजागर ।^१

अधिकतर ओज का वर्णन वीर तथा भयानक रस के अन्तर्गत होता है। संगीत-काव्य में इन रसों का प्रयोग नगण्य प्रायः है, अतः स्वाभाविक है कि ओज इस काव्य में अल्प मात्रा में प्राप्त है।

'क्रोध, ईर्ष्या आदि अवस्था के समान गम्भीरता का जहाँ अभाव हो और वैर्य का समावेश हो, वहाँ माधुर्य गुण होता है।'^२ संगीत-काव्य में अधिकतर शृंगार रस का ही वर्णन हुआ है। क्रोध, ईर्ष्या आदि भावों का वर्णन प्रेम के अन्तर्गत ही हुआ है, अतः माधुर्य गुण प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। 'जहाँ लम्बे समासों को त्याग कर छोटे छोटे समासों के व्यवहार से मधुर रचना की गई हो, वहाँ माधुर्य गुण माना जाता है।'^३ इस दृष्टि से भी संगीत-काव्य में माधुर्य गुण सर्वत्र व्याप्त सा जान पड़ता है।

'हे री मनमोहन ललित त्रिभंगी ।

तूपुर वजत गजत मुरली धुनि ललित किशोरी जी रो संगी ।

रास रसिक रस अद्भुत राजत तान तरंगन रंगी ।

ब्रजनिधि राधा प्यारी चित पर मननि भरे हैं उमंगी ।^४

कृष्ण के सांवरे रूप से प्रभावित गोपी सखी से जाकर कहती है कि कृष्ण की रूप-माधुरी ने मुझ पर तो जादू कर दिया है।

'ए री ग्वाल सोहिनी मोहिनी सांवरे ग्वार ।

लालन मोहे मोहिनी कीनो विविध सिंगार ।

मृगमद आज लिलाट है छल्यो अजब धिलवार ।

पंजन नैन चलाय के जकरे जुल्फ जंजीर ।

यह मोहन दिलदार को मारत सैनन तीर ।

फाग भरी अनुराग सो निकसी गृह के द्वार ।

पिचकारी मुरसैन की लिये अजब सुकुमार ।

सुंदर विमल सुधार तन ओढ़ै भीनी चीर ।

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०४ ।

२. 'क्रोधेर्ष्याकारगाम्भीर्य माधुर्य धैर्यगाहिता ।'

अग्निपुराण का काव्य शास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ८३ ।

३. काव्यांग-कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २०६ ।

४. वही, पृ० १७५ ।

मोहे नगवर यार तू अरी घरै नहीं घोर ।^१

भाव तथा भाषा दोनों ही के द्वारा माधुर्य से ये गीत पूर्ण हैं ।

संगीत काव्य के प्रकृति चित्रण में भी कला का प्रभाव है । रूप-चित्रण तथा वस्तु-चित्रण सभी चित्रात्मकता लिए हैं, परन्तु भाषा में चित्रोपमता उपस्थित करने की क्षमता अद्वितीय है । ऐसे शब्दों का प्रयोग, जिससे चित्र सा अंकित हो जाए, यह भाषा के सामर्थ्य को बढ़ा देता है । ऐसे शब्द अपने किसी पर्याय से बदले नहीं जा सकते ।

‘रूप उमंग सन्धो रहे मोहन प्रीत घनाह

उपमा को भटकत फिरै लोभी नवल बनाइ ।’^२

यहाँ पर ‘सन्धो’ शब्द साहित्यिक न होते हुए भी, एक वस्तु का सभी ओर से किसी द्रव्य से लिपटे रहने का अर्थ ध्वनित करता है । ‘सना’ हुआ शब्द में सजावट नहीं है । कवि ‘डूबा हुआ’ भी कह सकता था, परन्तु ‘डूबा हुआ’ एक विशेष प्रक्रिया के द्वारा भिगोए जाने का अर्थ देता है । कवि स्पष्ट कर देता है कि यह प्रयत्न वश प्रेम में भिगोया हुआ दृश्य नहीं है, यह तो अनायास ही ‘रूप की उमंग’ से ‘सन’ गया है । ‘लोभी’ शब्द भी लोभ का परिचायक है । लोभ में संतुलन नहीं होता । सब कुछ ले लेना चाहता है । अदम्य रूप राशि का लोभी यह ‘नवल बना’ बना हुआ है ।

‘अलुसावत अंग मुंदी अखियां पति सोवत है लखि नींद भरौं ।

कर सो भजराय बड़े मुर माय जगायन कौं बहु भाव घरी ।’^३

में ‘भजराय’ शब्द, हाथ से पकड़ कर किसी व्यक्ति को झिझोड़ कर उठाने का अर्थ देता है । इसको पढ़कर सामने एक अलसाये हुए अंगों वाली, मुँदती आँखों से पति को सोये हुए देखकर, विचित्र भावों के साथ गा गाकर हाथ से पति के शरीर को झिझोड़ कर जगाने का प्रयास करती हुई नायिका आकर खड़ी हो जाती है ।

कवि के समर्थ शब्दों में पीत वस्त्र धारण किए, नटवर वेष से मुस्कुरा कर नैनो को नचाते हुए, माधुरी ध्वनि की वेगु वजाते हुए कृष्ण की सुन्दर मूर्ति नेत्रों के सम्मुख खिंच सी जाती है—

‘पट पीट कसे नट वेष लसे मुसकाय के नैन नचावन की ।

गर गुंजन भाव विसाल दिनें कर में वर कंज फिरावन की ।

मधुरी धुनि बेन बजावनि गावनि बानि परी तरसावन की ।

निसि ओस सदा मन माहि कसे छवि वा बन ते वनि आवन की ।’^४

शरद की रैन में मधुर वंसी की ध्वनि छाई थी । रसीली तान को सुनकर ब्रजवाला आकुल हो गई । वेदना इतनी बढ़ी कि गुणी, वैद्य, सभी हार गए, परन्तु राधा की व्यथा

१. रस-तरंग, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. गीत-संग्रह, जवान सिंह जो, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. राम-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, । जोधपुर ।

४. ब्रजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६०

दूर नहीं हुई। अंत में चतुर सखियों के द्वारा कृष्ण बुलाए गए। रसिक वन कर कृष्ण सँजी-वनी लाए, मुरली में 'कुछ' गाया और तभी—

‘उठी तब चौंकि के प्यारी, लखै दृग खोली बनवारी ।
गई वेदनि जु ही सारी, सखी मिलि लेत बलिहारी ।
पिया ने अंग सिंगारे, भ्रमकि मंडलि पै पग धारे ।
गए तूपुर के भ्रनकारे, बजे बांजन तुम न्यारे ।’^१

इस वर्णन से राधा की वेदना, कृष्ण का उपचार, सभी चित्र के समान सम्मुख आ जाते हैं।

कहीं कहीं शब्दों का ऐसा सुन्दर प्रयोग है कि केवल एक शब्द से ही सम्पूर्ण चित्र खिंच जाता है।

‘विज्जुलता तिय दमकि के मिली स्याम घन आई हो ।
नगधर स्याम तमाल के मनु लपटी है बेल सुहाई हो ।’^२

घन के समान श्याम से, विजली के समान द्युतिमती नायिका के मिलन में तथा पुरुष के समान कठोर तमाल वृक्ष से नारी के समान कोमल बेल के लिपट जाने में एक ओर तो रूप-सादृश्य का सुन्दर चित्रण है तथा दूसरी ओर नायिका की प्रिय से मिलने की आतुरता ‘दमकि कै’ मिलने में विदित होती है। केवल विजली ही ‘दमकि कर’ मिल सकती है, जिसका श्लेष के द्वारा अर्थ लेने पर ‘चमक कर’ और ‘तेजो से’ दोनों अर्थ लगाए जा सकते हैं। दोनों ही से नायिका की मिलने की व्याकुलता और दौड़कर प्रिय से मिलने का दृश्य उपस्थित होता है। इतनी अधिक प्रतीक्षा और विह्वलता के पश्चात् जो नायिका प्रिय से मिलेगी, वह केवल दूर से ही नहीं मिलेगी, वरन् बेल के समान लिपट जाएगी, जिससे शरीर और मन किसी में भी परस्पर दूरी न रह जाए। कलात्मकता इन पंक्तियों में पूर्ण पराकाष्ठा को पहुँच गई है।

भाषा को अलंकारों से सुसज्जित करना शृंगार युगीन कवियों की एक प्रमुख विशेषता थी। संगीत-काव्यकार भी इसके प्रभाव से अपने को पृथक् न रख सके। ढूँढ़ने पर तो सभी प्रकार के शब्द तथा अर्थ अलंकार प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु इस काव्य में अलंकारों के प्रयोग में भी एक सीमित दृष्टिकोण रहा है। कवियों ने दो प्रकार से आलंकारिक वर्णन किया है। एक तो उन अलंकारों को चुना है, जो काव्य को संगीतमय बनाते हैं अर्थात् अनुप्रास आदि दूसरे, जो राग तथा रागिनियों के स्वरूप को किसी भी प्रकार से उत्कर्ष देते हैं, ऐसे अलंकारों का विशेष प्रयोग किया गया है। फलस्वरूप, काव्य में कृत्रिमता तथा क्लिष्टता लाने वाले अलंकार अत्यल्प मात्रा में मिलते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि का अधिकतर प्रयोग है। रूपक तथा श्लेष, कहीं कहीं प्राप्त हो जाते हैं।

१. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० ३०६

२. रस-तरंग, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

केवल पांडित्य-प्रदर्शन के लिए इस काव्य की रचना नहीं हुई, इसीलिए काव्य कहीं भी अलंकारों से बोझिल जान नहीं पड़ता।

सबसे अधिक प्रिय अलंकार अनुप्रास है। छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास के प्रयोग से काव्य में लालित्य तो आया ही है, दृश्य को सजीव भी बनाया गया है।

‘गौर तरुण मूरत मदन कंठ मुक्त मणि हार।’

+ + +
‘कुसुमनि की माला गरै धरै मुकट मन सीस।’^१

छेकानुप्रास तो स्वाभाविक रूप से इनके वाक्यों में आ जाता है। वृत्यानुप्रास के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं।

‘अंग अंग अनंग तरंगन’

+ + +
‘कंचन ते कमनीय कलेवर काम कलानि में कोविद मानो।’
+ + +

अथवा

‘चोर लिए चित ही चतुराचित चोरिनी कंकन की झनकार सुनावै’ में वृत्यानुप्रास के अच्छे उदाहरण हैं।

श्रुत्यानुप्रास का आनन्द इन कवियों ने पूर्णतया लिया है। संगीतात्मक ध्वनियों का परिचायक यही अनुप्रास है, जिसके विशेषज्ञ संगीतकार ही हो सकते थे।

‘सुन्दर सरस तन जोवन बनाउ बनी पूजति विरंचि

को सजति मोद मन को।’

‘विश्वरे छबीले केस लगत सुदेस भेस राते

राते नैन रस करुना में ठई है।’

+ + +
‘सुन्दर स्याम सलोने लोने करि राखे नैननि के तारे।’
+ + +

अथवा

‘मृदु मुसकान जात मन में सिंहास, उर आनंद

न मात मीठी बात बतरात है।’

आदि अनेक उदाहरण दृष्टिगत होते हैं।

उपमा भी इन कवियों का प्रिय अलंकार रहा है। ‘रसाल’ दुर्गचल सों, ‘पीत दुकूलन की दुत दामिनि सी’, ‘बिजली सो सरीर’, कह कर प्रकृति के उपमानों से शरीर के अवयवों की समता दी है।

१. राग माला, कल्याण मिश्र, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

२. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

रूपक का प्रयोग भी सौन्दर्य-वर्णन में अधिकतर मिलता है। जब वनिता पावस बनकर आती है, तब 'नीलाम्बर घन', 'अंगदुति दामिनी' 'मांग के मोती बग पांति', 'अलका-वलि धुखाई', बन जाते हैं, 'नखमणि और मेहंदी इंद्रधनुष की छवि पाते हैं, नूपुर दादुर के समान बोलते हैं, चितवनि वर्षा की झड़ी लगा देती है।' इस प्रकार विरह का ताप मिटाया जाता है।

'मलार

वनिता पावस ऋतु बनि आई।

नीलांबर घन दामिनि अंगदुति चमकनि सरस सृहाई।

मुक्त मांग बग-पांति मनोहर अलकावलि धुखाई।

नखमनि मेहंदी इंद्रधनुष मनो सोहत अति छवि पाई।

नूपुर दादुर बोलनि सोहै चितवनि भर बरसाई।

मेरी विरह ताप 'व्रजनिधि' सब मिलि कीनी सियराई।'^१

रूपक के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

नैना अंचल रूपी पट में नहीं समाते, कजरा रूपी साँकर से बाँध कर रखे, फिर भी अत्यंत चंचल हैं, भाग जाते हैं।

'नैना अंचल-पट न समाई।

कजरा साँकर से बाँधे तउ अति चंचल भजि जाई।'^२

उपमा और रूपक दोनों ही के आधार पर कवि कृष्ण रूपी पंकज के जन्म लेने पर व्रज वालाओं का भ्रमरी रूप वर्णन करता है।

'घन सी नौबत घुरत है, विज्जुलता सी बाल

इंद्रधनुष पट लसत हैं मनु बूंदनि बेंदी भाल

घन ज्यों वरपत नंद जू दान रंग भर मेह।

दादुर बंदा रटत है सोभा बढ़ी सुगेह।

बगदल से मुक्ता लसे भूषन रतन अपार

दान रंग सरिता चली सुवरन रज तन पार।

दधि कादो सरवर भरे बालहि हंस कलोल।

नगधर पंकज जन्म सुनि व्रज अलि बढ़ी अलोल।'^३

यह स्पष्ट है कि संगीत-काव्य में अलंकारों के प्रयोग का उद्देश्य प्रदर्शन न होकर काव्य को मधुर तथा ललित बनाना रहा है, फिर भी अपवाद स्वरूप एक दो पद ऐसे प्राप्त होते हैं, जिनमें यमक तथा श्लेष के सहारे चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यमक का एक चमत्कार-पूर्ण प्रयोग यहाँ उद्धृत है।

१. व्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २०७।

२. व्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, ग्र०।

३. रस-नंतरंग, जवान सिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

‘राग कांनरो – ताल फिरती

हरित कंदव भूमि हरियारी हरी अमावस हर्यो समाज ।

हरी सवारी साज चलयो है हरी गाज सब हिन मन राज ।

हरि तनया प्रफुलित हरि गुंजत हरि सोभा सुप दाम ।

हरित लतनि से हरित हिंडोरा हरि संग भूलत हरि मुप वाम ।

हरी कुंज गहवर हरियारी हरि सोभा वरनी नहि जात

हरे रतन तन बसन हरे रंग हरी पटुप माला सरसात ।

हरी हरी पर सोभित अद्भुत हरि वरसत हरि लायो ।

हरी राग गावत मुरली में मधुरै मन हरि भायो ।

हरि वरनी हरि गवनी री तु हरि लोचनि मदमाती ।

हरि कटि लचकत संग भूलन मैं हरि बैनी उछराती ।

हरिप हरिप गावत मधुरै सुर भई हरी रंग राती ।

नगवर हरी हरष हरियारै हरी हरी सब हित मन भाती ।’

इस गीत में ‘हरी’ शब्द को लेकर यमक का चामत्कारिक प्रयोग है ।

यहाँ सभी प्राप्त अलंकारों का प्रयोग दिखाना सम्भव नहीं है, अतः दो एक उदाहरण कवियों के कौशल को चरितार्थ करने के लिए पर्याप्त होंगे ।

जहाँ प्रसिद्ध उपमान का वर्णनीय उपमेय द्वारा निरादर किया जाय, वहाँ प्रतीपा-लंकार होता है ।^१ राग ‘मालकोस’ की भार्या गौरी का वर्णन करते हुए कवि नायिका के मुख से चन्द्रमा का लज्जित होना बताता है, यही प्रतीपालंकार है ।

‘घवल बसन मूप देपे चंद लाजों विधि रचि पचि

कैं बनाइ सुप दानि हैं ।’^२

अथवा राग हिंडोल के ‘देह की दुति’ को देखकर ‘कपोत का गोत’ लज्जित हो कर रह गया ।

‘लोनी लसै दुति देह की यौ लपि गोत कपोत

कौ लाजि रह्यो है ।’^३

जहाँ कारण का प्रतिबन्ध करने वाली वस्तु के होते हुए भी कार्य हो जाए, वहाँ तृतीय विभावना अलंकार होता है ।^४ राधिका सखी से कहती है कि ‘लोक-लाज के कारण नेत्रों को मना करती रही, फिर भी कृष्ण के पास बरजोरी करके चले गए ।’

१. रस तरंग, जवानसिंह, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. काव्यांग कौमुदी, तृतीय कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६६ ।

३. सभाभूषण, गंगाराम कृत, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

४. संगीत-दर्पण, हरिवल्लभ पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर ।

५. काव्यांग-कौमुदी, तृतीय कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० १५२ ।

‘आज अचानक भेंट भई री ।

हाँ सकुचाइ रही अनबोली उनि हंसि नैननि

सैनि दई री ।

लोक लाज वैरिनि रही वरजति ये अंखियां वरजोर

गई री ।”

कारण का प्रतिबन्ध होते हुए भी कार्य हो जाता है, यही विभावना है ।

इसी प्रकार यद्यपि संगीत-काव्य में लगभग सभी अलंकार प्राप्त हो जाते हैं, फिर भी अधिकतर अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक तथा श्लेष का ही अधिकांशतया प्रयोग हुआ है ।

छंद

छंद वह काव्यात्मक रचना है, जो किसी विशेष नियमानुसार मात्राओं में बद्ध हो ।^१ मात्राओं से रहित रचना भी अपना एक अलग नियम बनाने के कारण छन्द युक्त रचना कहलाती है । सभी प्रकार के छंदों में विशिष्ट यति तथा गति के कारण गीतात्मकता आ जाती है, अतः छंद मूलतः गेय होता है । ‘किन्हीं छोटी बड़ी ध्वनियों के व्यवस्थित सामंजस्य का ही नाम छंद है ।’^२ ‘सामंजस्य की प्राप्ति के लिए छन्द के भिन्न भिन्न ध्वनि समूह-खंडों में ध्वनियों का तोल माप या वजन बराबर होना चाहिए ।’^३ यही ध्वनि संतुलन का नियम संगीत में भी आवश्यक होता है । छंद तथा संगीत के निर्माण-तत्त्व समान होने के कारण छंद तथा संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध स्वयं ही सिद्ध हो जाता है । संगीत की दृष्टि से छंदों में से कुछ अधिक, कुछ कम उपयुक्त होते हैं । संगीत-काव्यकारों ने उन्हीं छंदों को चुना है, जो बहुत अधिक संगीतात्मक थे । पिंगल शास्त्र का विषय होने के कारण छंद, शास्त्र की सामग्री बने रहे, संगीत में उनका कोई स्थान नहीं बन पाया । कुछ रचनाएँ इस प्रकार की प्राप्त होती हैं, जो छंद शास्त्र में वर्णित, छंदों से अधिक गेय हैं, जो मात्राओं में बँधी हैं, परन्तु संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहने के कारण केवल संगीत की सामग्री समझी जाती रही हैं । संगीत-काव्यकारों ने इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग करके दिखा दिया है कि ये गेय छंद भी साहित्य के अन्तर्गत स्थान बनाने के पूरे अधिकारी हैं । साहित्यिक मात्राओं तथा सांगीतिक मात्राओं में कोई अन्तर नहीं है । साहित्य में लघु, दीर्घ और प्लुत के आधार पर संगीत में क्रमशः एक, दो, और तीन मात्राओं को गिना जाता है । संगीत में एक मात्रा, एक का अर्द्धांश, चतुर्थांश, अर्ध्ठांश, तथा एक मात्रा को विस्तार करके एकाधिक मात्राओं का

१. ब्रजनिधि-ग्रंथावली, पुरोहित हरी नारायण शर्मा, पृ० २२३ ।

२. अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है ।”

हिन्दी साहित्य कोष, डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित, पृ० २६० ।

३. हिन्दी छंद-प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० ४ ।

४. वही पृ० ५ ।

बनाया जाता है। प्रत्येक गीत मात्रा-बोधक ताल में गाया जाता है। उदाहरण के लिए, सोलह मात्रा की चौपाई, संगीत में सोलह मात्रा की ताल 'तीन ताल' में गाई जा सकती है। परंपरा से साहित्य तथा संगीत दो विभिन्न शास्त्र होने पर भी एक ही सूत्र में बँधे हैं।

वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर भी यह जाना जा सकता है कि उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों के बीच विशेष प्रकार की गायन-शैली के कारण छंदों के विभिन्न रूप हो गए। विशेष प्रकार के गायन में मात्राएँ स्वयं निश्चित हो जाती हैं, उसी को एक विशेष छंद बना दिया गया। गायत्री, अनुष्टुप तथा जगती आदि छंद इसी प्रकार बने। स्वामी प्रज्ञानन्द जी ने अपने ग्रंथ 'भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विकास' में तीन सप्तकों (मन्द्र, मध्य तथा तार) का मूल तीन स्थान स्वरों (उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित) में दिखाया है तथा बताया है कि वैदिक कथाओं के गाने में ताल का ध्यान रखा जाता था।^१

वैदिक छंदों के पाठ-नियम से इसका प्रमाण प्राप्त हो जाता है कि छंद का निर्माण लयात्मक गान के कारण होता है। उदाहरणार्थ गायत्री मंत्र के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं और इसमें कुल मिलाकर चौबीस अक्षर होते हैं।

ओं तत् सवि तुर व रेण् यम् ।

भर् गो दे व स्य धी म ही ।

धि यो यो नः प्र चो द यात् ।

उक्त गायत्री मंत्र में व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध पाठ 'वरेण्यम्' है, परंतु इसे 'वरेणियम्' पढ़ने का विधान है।^२ इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों का अनुष्टुप् वैदिक स्वरों से नियंत्रित न होकर ताल संगीत के अनुशासन में बद्ध है।^३ 'वैदिक त्रिष्टुप भी ब्राह्मण ग्रंथों

1. "The experts singers and chanters of the Vedic age knew fully well the specific laws and method of application of the three registers: bass, medium and high i.e., Mandra, Madhya and tara. The three ancient register notes or sthansvaras, raised, not raised and balancing circumflex i.e., Udatta, Anudatta, and Svarit came to be used as three kinds of pitches of speaking as well as singing voices. The rhythm and tempo were used in accordance with different types of feet of the Vedic metres, gayatri, jagati, anustupa, etc. The time-measure or tala was observed in hymnal songs and different ways, with beat and without beat i.e., Sa-sabda and nis-sabda. The sa-sabda time measure was kept with the clapping of hands and the nis-sabda one by wavering of the hands or different limbs of the body." Historical Development of Indian Music, Swami Prajnananda, P. 64.

२. हिंदी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० ८ ।

३. वही पृ० ६ ।

में 'ताल' से नियंत्रित होकर संस्कृत में वर्णवृत्त के रूप में पहुँचा है।^१

शृंगार-युग में रचित सभी काव्य संगीतात्मकता से ओत प्रोत हैं। इस काल के कवियों ने अपने काव्य के लिए दो प्रकार के छंद चुने। एक तो वे, जो छंद-शास्त्र के अनुसार मात्राओं तथा वर्णों में बाँधे गए हैं, परन्तु संगीतात्मक हैं। दूसरे प्रकार के छंद वे हैं, जो मात्राओं में नहीं बँधे हैं, परन्तु गेय हैं, अतः ताल बद्ध हैं। संगीत-काव्यकारों के लिए तो काव्य रचना का उद्देश्य ही उसको गेय बनाना था, अतः केवल ऐसे छंदों में रचना की गई है, जिनकी गति और यति में संगीत और नृत्य की मधुरता, ताल और लय स्वाभाविक रूप से निहित है। संगीत काव्य में प्रयुक्त छंद अधिकतर दोहा, सबैया तथा घनाक्षरी अथवा मनहरण हैं, जिसे सामान्य रूप से कवित्त कहकर पुकारते हैं। गेय छंद की गणना मात्रिक और वर्णिक किसी भी छंद में नहीं की जा सकती, परन्तु गति तथा यति दोनों ही का समावेश होने के कारण उन्हें गेय छंद कहा गया है। ऐसे छंदों में कुछ उर्दू में प्रचलित छंदों को लिया गया है। इसके अतिरिक्त संगीत की शैलियों के आधार पर कुछ छंदों का निर्माण कर लिया गया है। इन छंदों में रेखता, गजल, ध्रुवपद, दमर, होली तथा रास आदि का प्रयोग हुआ है।

दोहा

पिंगल शास्त्र में वर्णित छंदों में सर्वाधिक प्रयोग दोहे का है। दोहा छंद की संगीतात्मकता, उसके अत्यधिक प्रचार और उसकी प्राचीनता से ही सिद्ध है। श्री रघुनंदन शास्त्री ने 'दोहा' की उत्पत्ति वैदिक छंद अनुष्टुप् से मानी है। उन्होंने बताया है कि 'अनुष्टुप् वैदिक स्वरों से नियंत्रित न होकर ताल संगीत के अनुशासन में बद्ध है। गाया जाने के कारण इसे गाथा कहते हैं। यही गाथा छंद पीछे काल मात्रा से नियंत्रित होकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में 'आर्या' कहलाया है। हिंदी में पहुँचकर यही दोहा बन गया है।'^२ इस दृष्टि से दोहे की गेयात्मकता स्वाभाविक है। आदि काल के 'रासो' में भी गाया जाने के लिए दोहे को चुना गया। उपदेश देने वाले संतों और भक्तों ने भी जब गाकर अपनी वाणी जनता के हृदय तक पहुँचानी चाही, तो दोहे का आश्रय लिया।

संगीत के क्षेत्र में दोहे का एक अलग स्थान है। दोहे की यति और गति को दृष्टि में रखने पर यह पता चलता है कि दोहे की प्रकृति में गंभीरता है। चंचल गायन अथवा द्रुत लय के गीत के पश्चात् यदि गायक विलंपित में गाना चाहता है, तो दोहे का प्रयोग करता है। गीत को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए भी बीच बीच में दोहे का प्रयोग होता है। विशेष रूप से कीर्तन और भजन की गायन शैली के अनुसार एक पंक्ति को बहुत अधिक तेज लय तक बढ़ाते जाना, और उसी में विभोर होकर थोड़ी देर तक ताल बद्ध गाते रहना, उसके पश्चात् लय एकदम विलम्पित करके ताल छोड़कर गम्भीर पद कहना प्रचलित रहा है। ऐसी धीमी लय में गाने के उपयुक्त छंद दोहा ही है। ऐसा प्रयोग अधिकतर भक्त

१. हिंदी छंद-प्रकाश रघुनंदन शास्त्री, पृ० ६।

२. वही !

कवियों के अनुकूल था। कुछ देर कीर्तन करने के पश्चात् बीच बीच में इष्ट की विशेषता बताने के लिए या कोई नीति-धर्मोपदेश देने के लिए दोहा गाया जाता था। ऐसा ही प्रयोग शृंगार युग में भी पाया जाता है। कृष्ण भक्ति के गीतों में बीच बीच में दोहों का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण के लिए—

‘लाड़लो बनो जी म्हारो नवल बनो
है नोपीलो बनो जी म्हारो नवल बनो ।
नपरालो बनो जी म्हारो नवल बनो ।
रूपालो बनो जी म्हारो नवल बनो ।
दोहा— रूप उमंग सन्यो रहे मोहन प्रीत घनाह ।
उपमा कौ अटकत फिरँ लोभी नवल बनाह ।’^१

उपर्युक्त गीत में ‘लाड़लो बनो जी म्हारो नवल बनो’ आदि पंक्तियाँ द्रुत लय में गाई जाएँगी। ताल बद्ध गीत का आनंद लेने के पश्चात् गायक विलंपित लय में दोहा गाता है। फिर द्रुत लय की स्थायी पर लौट आता है। दोहा गाते समय ताल बन्द कर दी जाती है। छन्द शास्त्र के लक्षणानुसार तेरह, ग्यारह मात्राओं में ही गाया जाता है। ताल में गाने के लिए चौबीस मात्राओं को कहरवा में गाया जाता है। कहरवा आठ मात्राओं का होता है। उसकी तीन आवृत्तियों में एक पंक्ति गाई जाती है। चौबीस मात्राओं का आलाप से बढ़ाकर बत्तीस मात्राएँ कर लेने का भी प्रचलन रहा है। ऐसी दशा में तीन ताल में भी गाया जा सकता है।

गीत में दोहे का महत्त्व इतना अधिक है कि गीत तो कवि के मौलिक होते हैं, परन्तु दोहे प्रसिद्ध संगीतज्ञों के गाए जाते हैं, इसका कारण स्पष्ट ही है कि उस समय गीत में भाव की अभिव्यंजना अधिक महत्त्वपूर्ण थी, फलस्वरूप जवानसिंह जी की रचनाओं में नागरी दास, मुबारक अथवा हरिदास के दोहे लिए गए हैं। अधिकतर स्थायी, कवि की होती है और अन्तरा के रूप में दोहे अन्य कवि के। उदाहरणार्थ,

‘वमार तामैं अस्थायी श्री जवान सिंह जी कृत अन्तरा का दोहा
श्री नागर दास जी कृत मजलस मन्डन का ।
अहो छवि देपियें हो चलो सुन्दर स्याम सुजान ।
दोहा— भीनैं विमल कपोल पर लगी छूट लट साफ
पुसनबीस मुनसी मदन लिप्यो काच पर काफ़ ।

नैन कथक वांचत कथा मोहन सैन विलोक
पीवत श्रोता नागरी इहं रस इकटक ओक ।’^२

१. जवानसिंह जी कृत ‘रस-तरंग’ मुनि कान्ति सागर, संग्रह, उदयपुर।

२. वही।

उपयुक्त गीत में पहली अन्तरा के मुबारिक में दोहे का रूपांतर किया हुआ दोहा^१ और दूसरा नागरी दास का है ।

इसके अतिरिक्त दोहे में फ़ारसी के शेरों के समान ऐसी क्षमता है, जो थोड़े स्थान में अधिक उक्तियों को अभिव्यक्त कर सकता है, अतः इस चामत्कारिक युग में उसका बड़ा योगदान रहा । दोहे का सर्वाधिक प्रयोग 'रास' के गीतों में रहा ।

इन कवियों ने अन्य रीतिकालीन कवियों के समान लक्षण लिखने के लिए सदैव ही दोहे का प्रयोग किया है । अतएव, शास्त्रीय ग्रन्थों में दोहे का प्रयोग अधिक है ।
उदाहरण के लिए—

'राम करी में मिलत है गौड अड़ानो जाय
ताहि कहत हैं गुन कली गुनी कलावत गाय ।'^२
+ +
'हाथ पिता है ताल को, माइन देपी जाइ ।
मिलि संयोग वाज्यो शवद, ताल गयो कर आइ ।'^३
+ +
'प्रीतम चाल्या है सपी ललिता करै विलाप
हिरदा ऊपर हीडतों भो विरहन को हार ।'^४
+ +
'आदि नाद अनहद भयों ताते उपज्यो वेद
पुनि पायो वा वेद तै सकल सृष्टि की भेद ।'^५
+ +
'वीर और उत्साह मैं रौद्र भाव रस आनि
पुरुष करै नृत्यहि वहै, तांडव नृत्यहि जानि ।'^६

कवित्त

दोहे के पश्चात् इस काल में कवित्त सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है । छंद शास्त्र की दृष्टि से कवित्त और मुक्तक दंडक एक ही माने गए हैं ।^७ मुक्तक दंडकों के तीन भेद मुख्य रूप से किए गए हैं । इकतीस अक्षरों के, बत्तीस अक्षरों के तथा तैंतीस अक्षरों के मुक्तक दंडक ।

१. "अलक मुबारक तिथि बदन लटकि परी अति साफ़ ।
भुस नवीस मुनसी मदन लियों काच पर काफ़ ।"
- अलक-शतक, मुबारक, मिश्रबंधु-विनोद, भाग एक प्रथम संस्करण, पृ० ३६८ ।
२. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
३. राग-माला, कवि उस्तत, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
४. राग माला, सागर कवि, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ।
५. हीय हुलास, म्यूजियम, अलवर, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
६. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
७. हिंदी-छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० १०३ ।

इनमें भी प्रभेद करते समय इकतीस अक्षरों के मुक्तक दंडकों के तीन प्रकार हो जाते हैं। एक, घनाक्षरी या मनहरण—इनके प्रत्येक पाद में इकतीस वर्ण होते हैं। अन्तिम वर्ण गुरु होता है।

दो जनहरण—इसके प्रत्येक पाद में इकतीस वर्ण होते हैं, जिनमें तीस लघु वर्ण और अन्तिम वर्ण गुरु होने का नियम है।

३, कलाधर—प्रत्येक पाद में इकतीस वर्ण होते हैं, जो क्रमशः गुरु लघु के पंद्रह युग्मकों में रखे जाते हैं। इकतीसवाँ वर्ण गुरु होता है।

इसी प्रकार वत्तीस अक्षरों के मुक्तक दंडक में अभेद रूप घनाक्षरी, जलहरण, डमरू, कृपाण, विजया और तैंतीस अक्षरों के मुक्तक में देवघनाक्षरी, प्रभेद माना गया है।^१

यहाँ पर रास के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन न करके केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि माधुर्य भाव की भक्ति में रस को चरम पराकाष्ठा पर पहुँचा देने वाला 'रास' नृत्य था। अतः, उस दिव्य आनंद को प्रदान करने वाले नृत्य के साथ संगीत का माध्यम दोहा ही क्यों चुना गया, इस का सबसे बड़ा कारण यह ज्ञात होता है कि रास में जिस रस-व्याप्ति की प्रारंभ से अन्त तक आवश्यकता होती है, वही दोहों के निरंतर गाने से प्राप्त हो जाती है, यों दूसरे शब्दों में, जिसे साहित्य में 'प्रबंधात्मकता' कहा जाता है, वही 'प्रबंध-गीतात्मकता' इस नृत्य में अपेक्षित है, जिसकी पूर्ति दोहा करता है।

रास नृत्य करते समय नर्तक और नर्तकी धीमी लय से प्रारंभ करके निरन्तर ज्यों ज्यों रस में डूबते जाते हैं, त्यों त्यों लय भी बढ़ाते जाते हैं। नृत्य कला के दृष्टिकोण से इसी बढ़ती हुई गति के साथ गोपियाँ कृष्ण से अधिकतर काल्पनिक सामीप्य का अनुभव करती चली जाती हैं, इसी अनुभूति के साथ ही कृष्ण का स्वरूप उसका सौंदर्य, उसका प्रेम उद्दीप्त होता चला जाता है। उनके अंग संचालन, गति, अभिनय और रस की अभिव्यक्ति में नवीन भावों और हावों का समावेश होता चला जाता है, जिसकी पूर्ति दोहे के समान सरल और स्वाभाविक छंद ही कर सकता है, तभी सूरदास, नंददास तथा अन्य कृष्ण भक्तों ने भी रास में गीत के लिए सदैव 'दोहा' ही अपनाया है और सभी रास गीतों में एक ही प्रकार की तन्मयता दिखाई देती है। कृष्ण से तादात्म्य करते ही एक अलौकिक आनंद में नर्तक डूब जाता है और तब साधक साध्य और साधन सभी का एक ही स्वर हो जाता है, जिसका प्रमाण प्रत्येक रास में दिए गए मृदंग के धोल हैं, जिनमें गोपी के पैरों से निकलने वाले मृदंग के धोल स्वयं कवि गाने लगता है।

‘सरद उजारी रैनि तामधि रच्यों है रास मंडल

पियारी चले ठुम ठुम चाल है।

ता थेई ता थेई थेई तक तक थेई ता ता थेई भनन कनन

बाजे भ्रम भ्रम ताल है।

धिधिकट धिधिकट धिकतां तां न थुंग थुंग थर थर

१. हिन्दी-छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० १०३।

तन न न जाल है ।

ताडिगिडि तथुडिगिडि था गिडि गिडि ता ता कु ता उघटत

गोपी संग नाचत गुपाल हैं ।^१

संगीत-काव्य में राग रागिनियों के उदाहरण स्वरूप लिखे गए छंदों में लगभग हर स्थान पर कवित्त अथवा मुक्तक दंडक का आश्रय लिया गया है, अतः लगभग सभी प्रकार के मुक्तकों का प्रयोग प्राप्त हो जाता है। अन्तिम वर्णों के लघु और गुरु वर्णों के वैभिन्न्य से अधिकतर घनाक्षरी का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण के लिए, 'राग रत्नाकर' में देसकार का स्वरूप वर्णन करते हुए कवि राधाकृष्ण कहते हैं:—

‘कंचन सो गात तामें चंदन चरचि राख्यो,

फैल्यो है प्रकाश मुष चंद की उजारी को ।

कारे सटकारे अति सोभित सुदेस केस

मोतिन की माल भाल व्यंदा छबि भारी को ।

प्रीतम कै संगि रति रंग में अनंग भरी

दूनी दुति अंग अंग फूलि गयो प्यारी को ।

कंचन कलस कुच केशरि की क्यारी माभि

देख्यो गुलजारी यह रूप दे सकारी को ।^२

यहाँ इकतीस वर्णों का कवित्त है, सोलह और पंद्रह पर यति है और अन्तिम दो अक्षर गुरु हैं, अतः घनाक्षरी छंद है।

रागिनियों के उदाहरण अधिकतर इसी छंद में दिए गए हैं।

‘भावै भेद करि हरि वल्लभ यो हिय हरि

पंभावती पिन पिन भावै सब जन कौं ।

सुंदर सरस तन जोवन बनाउ वनी

पूजति विरंचि को सजति मोद मन को ।

कंठ सुर मृदु कल कोकिल ते कमनीय, तान

गान मे प्रवीन जानै गुन जन कौं ।

मीठे मीठे बैन चित चैन दैन कहि, कछु

मुस्कयाइ उपजावत मदन कौं ।^३

पंभावती के इस उदाहरण में भी इकतीस अक्षर हैं, सोलह और पंद्रह पर यति है, अतः घनाक्षरी छंद है, परंतु अंत में लघु गुरु है। अन्तिम वर्णों में लघु गुरु है। अन्तिम वर्णों में लघु गुरु के भिन्न प्रयोगों से भी छंद में विचित्रता आ जाती है। कवि भोलानाथ का राग ‘परज’ का एक उदाहरण है—

१. संगीत-पञ्चीसी, गहर गुपाल कृत, याज्ञिक संग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।

२. राधाकृष्ण कृत राग-रत्नाकर, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

३. संगीत दर्पण, हरि वल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

‘आनन अतूष रूप राशि दोऊ भोलानाथ,
 विद्रुम से ओठ हास वीजुरी सो सोहिये ।
 पंजन निवारियत वारिज विसारियत,
 मीन मृग तारियत हेरि हंस जोइये ।
 मोरन चकोरन के मान मद गारियत,
 वारियत देपि तनु काम मन मोहिये ।
 भरि भरि अंगनि विनोद मिलि लेत,
 हरपित गातनि अनंत गति पोहिये ।’^१

इन मुक्तकों में कहीं कहीं उपयुक्त लक्षणों के अनुसार दोष दिखाई देता है, परन्तु उसका कारण इनकी गीतात्मकता है। गाने में कहीं स्वर का विस्तार और कहीं लोप स्वाभाविक रूप में आ जाता है।

सवैया

सवैया छंद भी शृंगार युगीन कवियों का प्रिय छंद रहा है। इस छंद की गति और यति भी संगीतात्मकता लिए हैं, अतः राग और रागिनियों के स्वरूप वर्णन के लिए इस छंद का प्रयोग किया गया। ‘आकृति से लेकर उत्कृति जाति तक के (बाईस अक्षर पादी से लेकर छव्वीस अक्षर पादी तक के) बड़े छंदों को प्रायः सवैया कहते हैं।’^२ यों तो सवैया छंद को वर्णों की गिनती के आधार पर भिन्न भिन्न जातियों में विभक्त कर दिया गया है, और रूप भेद के परिणाम स्वरूप लगभग अड़तालीस सवैयाओं का उल्लेख किया गया है,^३ परन्तु संगीत-काव्यकारों ने उनमें से कुछ का प्रयोग किया है।

इस काव्य में मदिरा सवैया सर्वाधिक प्रचलित है, जिसके ‘प्रत्येक पाद में सात भगण और अन्त में दो गुरु अक्षर रखे जाते हैं।’^४

‘नील सरोज की पांति लसै, ललना जब ही दृग कोर चहै ।
 नीके मनोज के वान किधौं जु लगै तिन कै हिय पीर गहै ।
 ढक्यो दृग बुद्धि समानहि सौं उर छेदति नैकु न बार लहै ।
 हरि वल्लभ और कहां लौं कहीं मुनि के मन मे नहि धीर रहै ।’^५
 दुमिल सवैया में आठ सगण होते हैं।^६ इसका प्रयोग भी अधिकांशतया किया गया है।
 ‘पट लाल प्रवाल की जोति जगै तन कुंदन की दुति दूरि करी ।
 गज मोतिन माल विसाल गरै अंगिया उर राजत रंग हरी ।

१. पद-संग्रह, भोला नाथ, पुरातत्त्व मंदिर जोधपुर।
२. हिन्दी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, पृ० ६२।
३. वही, पृ० ६६।
४. हिन्दी छंद प्रकाश रघुनंदन शास्त्री।
५. संगीत दर्पण, हरिवल्लभ, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।
६. काव्य कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, तृतीय काल चतुर्थ आवृत्ति पृ० २६३।

तिय बैठि विलोकत बालम को मग सुंदर सेज विछाय धरी ।

यह सोहनि नारी सबै मन मोहनि सोहनि सूरति मन भरी ।^१

मत्तगयंद सबैया में सात भगण तथा अंत में दो गुरु होते हैं ।^२ संगीतात्मक होने के कारण यह भी एक प्रचलित सबैया है ।

‘बोलत कीर सुकोकिल बानी हरयारी लता नित ही सुप साजै ।

नित वसंत रहै छवि सो सुनि रंगहि अंग धरयो रति राजै ।

सोभित स्फटिक शृंग शिला नग रूप धर्यो श्री नगधर काजै ।

नीलम को रचि हार मनो गिर राजत रे जमुना छवि छाजै ।’^३

इस प्रकार से लगभग सभी प्रकार के सबैया प्राप्त हो सकते हैं । गाए जाने के कारण सबैयों में भी छंद शास्त्र के नियमों के अनुसार कहीं कहीं दोष आ गया है ।

संगीत-काव्य में कुछ ऐसे प्रयोग किए गए, जिनमें वे रचनाएँ, जो अभी तक संगीत में ‘ताल’ के नाम से प्रसिद्ध थीं, अब साहित्यिक छंद बनकर प्रस्तुत हुईं । साहित्य और संगीत का ऐसा सुन्दर समन्वय केवल संगीत-काव्य में ही प्राप्त है । इन छंदों को यहाँ ‘गेय छंद’ कहा गया है, क्योंकि इनका सौन्दर्य गति के अनुसार पठन-पाठन में नहीं, बल्कि रागा-नुसार गायन करने में है । इन छंदों को दो भागों में बाँटा गया है ।

कुछ छंद इस प्रकार के हैं, जो उर्दू के छंदों से लिए गए हैं । उर्दू में छंद विभाजन वर्ण्य विषय के अथवा शैली के आधार पर होता है, मात्राओं तथा वर्णों के अनुसार नहीं । जैसे गज़ल, स्त्री से बात करने के ढंग पर की गई शृंगार रचना को कहते हैं ।^४ किसी धार्मिक या राष्ट्रीय नेता, बादशाह या किसी महान पुरुष की प्रशंसा को ‘कसीदा’ कहते हैं ।^५ स्त्रियों के पारिवारिक जीवन और सामाजिक बन्धनों का वर्णन करने के लिए ‘रेपती’ का प्रयोग होता है,^६ आदि । इनमें से गज़ल और रेपती छंद इन शृंगार-प्रिय संगीत-काव्य-कारों के विषयानुकूल उपयुक्त थे, अतः इन्हीं को हिंदी में ले लिया गया है ।

दूसरे प्रकार के गेय छंद वे हैं, जो संगीत में प्रचलित गायन शैलियों के आधार पर विशेष ताल (मात्राओं) में गाए जाने के कारण छंद के समान प्रयुक्त हुए । इनमें ध्रुवपद, धमार, होली तथा रास का नाम लिया जा सकता है ।

रेपता

गेय छंदों में उर्दू से लिए गए छंद रेपता तथा गज़ल अधिक प्रचलित हैं । लगभग

१. राग-रत्नाकर, राधाकृष्ण, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. भासत दो गुरु को रख के रचते कवि मत्तगयंद सबैया, हिंदी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री पृ० ६६ ।
३. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
४. उर्दू साहित्य का इतिहास, सैयद एहतिशाम हुसैन ।
५. वही ।
६. वही ।

सभी राजा-कवियों ने तथा अन्य कृष्ण लीला के संगीतकारों ने इनको अधिक स्थान दिया ।

स्त्रियों की भाषा में, स्त्रियों ही के सम्बन्ध में जो कविताएँ लिखी गई हैं, उनको 'रेखती' कहते हैं । उनमें स्त्रियों के पारिवारिक जीवन और सामाजिक बन्धनों का वर्णन होता है । कहीं कहीं इसका रूप अश्लील भी हो गया है । इसका रूप अधिकतर गजल का होता है यद्यपि और रूपों में भी लिखी जाती है ।^१ 'रेपता' उर्दू का ही नाम है, अतः प्रारंभ में उर्दू में लिखा गया शेर और गजल 'रेपता शेर' और 'रेपता गजल' कहलाया । धीरे धीरे प्रयोग में गजल या शेर के स्थान पर 'रेपता' का प्रयोग होने लगा । 'रेपता' का फ़ारसी में अर्थ होता है—'ढालना',^२ परन्तु कालांतर में जब 'रेपता' शब्द का प्रयोग गजल और शेर के अर्थ में होने लगा, तो गजल के विषय में भी कुछ जान लेना आवश्यक है ।

गजल का वर्ण्य विषय प्रेम होता है । पुरुष का स्त्री से प्रेम प्रदर्शन, प्रियतमा के रूप में वर्णन, उससे मान आदि करना, उसके विरह में अपनी भावनाओं को व्यक्त करना ही, गजल का विषय है । कृष्ण-राधा का प्रेम व्यक्त करने के लिए 'रेपता' या 'गजल' संगीत-काव्यकारों के लिए उपयुक्त छंद था । गजल में तीन शेरों से कम और पच्चीस से अधिक नहीं होने चाहिए । लगभग सभी ऐसे कवियों ने जिन्होंने उदाहरण ग्रन्थ लिखे हैं, और गीत संग्रह, गाने के लिए लिखे हैं, उन सभी ने कुछ 'रेपते' अवश्य लिखे हैं ।

उदाहरण के लिए, महाराज प्रताप सिंह का रेपता:—

'जिसके नहीं लगी है वह चश्म चोट कारी ।

हैवान क्या करेगा वह नंद के से यारी ।

इस्तेमाल इश्क का जहान बीच होवै ।

दीन औ कुफर की बदबोई दिल से धोवै ।

महबूब के मिहर का हर रोज रहे दिवाना ।

आसान कुछ न जानो यह आसकी का बाना ।

गोविंद चंद 'ब्रजनिधि' की अर्ज सुनो प्यारे ।

टुक छवि भरी नजर करि सब दुख हरो हमारे ।'^३

गजल

गजल का प्रयोग हिन्दी में, फ़ारसी और उर्दू कविता के प्रभाव के कारण हुआ, अतः इस छंद का नियम वही रखा गया, जो उर्दू कविता में था । इसमें भी कम से कम तीन शेर रखे जाते हैं । अधिक से अधिक पच्चीस शेरों को जोड़ कर गजल बनाई जाती है । गजल की विशेषता उसके वर्ण और मात्राओं के प्रयोग में नहीं है, वरन् उसके वर्ण्य विषय में है । गजल का वर्ण्य विषय प्रेम होना चाहिए । पुरुष स्त्री से प्रेम प्रदर्शित करता है । 'गजल

१. उर्दू साहित्य का इतिहास, सैयद एहतिशाम हुसैन, पृ० ३५७ ।

२. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, भूमिका ।

३. ब्रजनिधि-ग्रन्थावली, पुरोहित हरि नारायण शर्मा, पृ० २६६ ।

अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है—‘स्त्री से बात करना’। गज़ल में अधिकतर आंतरिक भावों का उल्लेख होता है। प्रेमिका की सुन्दरता का वर्णन भी इसमें होता है। हर शेर अलग अलग पूर्ण अर्थ रखता है और पूरी गज़ल में आदि से अन्त तक एक ही विचार भी हो सकता है। हर शेर में पहिले शेर के तुक की पावन्दी की जाती है।^१

इस दृष्टि से शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष पूर्ण रूप से इसमें वर्णित रहते हैं। पुरुष और स्त्री का प्रयोग लौकिक से अधिक अलौकिक अर्थ के लिए किया जाता है।

‘गज़ल’ बहुत अधिक प्रचलित छंद रहा, अतः इसके दो रूप देखने में आते हैं। एक साहित्यिक तथा दूसरा लोक-व्याप्त। साहित्यिक रूप के अनुसार उर्दू के ही माप-दण्ड पर छंद लिखा गया। इसका प्रयोग अधिकतर उन कवियों ने किया, जिन्होंने गेय काव्य लिखा। इस काव्य का वर्णन उदाहरण काव्य के नाम से किया गया है। यह छंद ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिए बड़ा अनुकूल था, अतः हिन्दी भक्त कवियों ने भी इसे अपनाया। संगीत-काव्यकारों की रचनाएँ भी अधिकतर कृष्ण प्रेम में विभोर हो कर गाए जाने के लिए ही लिखी जाती थीं, अतः ऐसे कवियों के काव्य में इस छंद का सर्वत्र प्रयोग प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, प्रतापसिंह जी महाराज, जवान सिंह जी तथा मान सिंह जी आदि की रचनाओं में गज़ल का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

‘शादिए मर्ज हुआ यार का जो मुपड़ा देखा
जाफरा यार को हंस हंस के यह मरता देखा।
हुआ दिल वेखबर मुझ दाश दीदे जर्व ज्यो आई।
जुदाई यार से गाफिल पुदाई कहर सरमाई।
फिरा के यार में हरदम तसवुर उसका रहता है।
देपे बिन सांवला दिलवर वो नगधर याद आता है।’^२

*

*

*

‘सलीने स्याम प्यारे, क्योंन आबों।

दरस प्यासी मरे तिनको जिवावों।

कहां हौ जू, कहां हौ जू कहां हौ’ आदि।^३

गज़ल का दूसरा रूप प्रचलित है, उसे हम लोक प्रचलित रूप इसलिए कह सकते हैं कि उसका छंदात्मक स्वरूप इससे भिन्न है। सर्व साधारण में गाए जाने वाले ‘आल्हा’ छंद के समान उसकी गति है। उसका अपना रूप है, परन्तु उसे एक विशेष ढंग पर गाए जाने के कारण गज़ल का नाम दे दिया गया है। लोकप्रियता के कारण यह छंद गाँवों में गायन का एक प्रकार बनकर प्रचलित हो गया। ग्रामीण-तत्त्व लिए, इस गज़ल छंद में उर्दू काव्य की गज़ल से न तो वाह्य रूप में कोई साम्य है और न

१. उर्दू साहित्य का इतिहास, एहतिशाम हुसैन, पृ. ० ३५५।

२. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

३. वियोग बोली गज़ल, नंददास, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

वर्ण्य विषय में ही। इसमें आठ वर्णों की एक पंक्ति होती है, जिसमें चार चार वर्णों पर यति होती है। गाया जाने के कारण यति के लिए चार वर्णों से अधिक चार मात्राओं पर ध्यान दिया जाता है। तीसरे वर्ण पर बल दिया जाता है, अतः यदि पाँच या छः वर्ण भी प्रस्तुत हो गए या उन वर्णों की मात्राएँ छंद शास्त्र की दृष्टि से चार से अधिक भी हो जाती हैं, तो भी गायन कला की दृष्टि से ताल की चार मात्राओं में उन वर्णों को गाया जा सकता है।

इसमें गाँव, नगर आदि का वर्णन अधिकतर हुआ है। उदाहरण के लिए, अर्जुन कवि की 'दुगोली गाँव री गजल', कल्याण कवि कृत 'गिरनार गजल', खेतल कवि की 'चित्तीड़ गजल', 'उदयपुर की गजल' और भोज कवि की 'उदयपुर गजल' आदि।

लगभग सभी गजलों में नगर का वर्णन किया गया है। यहाँ गजल शब्द, छंद विशेष के लिए प्रयुक्त है।

‘गढ़ चीतीड़ है बंका
कि मानु समंद मै लंका
कि वेडलपुर तल बहतो
कि अरु गंभीर भी रहती
कि अल्ला देत अल्लादीन बांधी
कि पुल बड़ी परवीन
गैवी पीर है गाजी
कि अकबर अवली या राजी ।’ आदि ।

‘कूवा पूव मज्जेदार
पाणी भरत है नर नार
मिंदर देष मन मोहे
क मूरत मोहनी सोहै
क स्वामी करत है सेवा
क मालक मेल सी मेवा
क रहता राज का माणी
क मीठी बोलता वाणी
क मारग मोकला आवै
क मींदर देख मन भावै ।
क सब ही लेत है विश्राम
आछा वरायानी का धाम ।’^१ आदि ।

१. चित्तीड़ गजल, कवि खेतल, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. दुगोली गाँव री गजल, अर्जुन कवि, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति के बीच में 'कि' का प्रयोग करके, दूसरी पंक्ति को उसी लय और ताल में पकड़ लेना गायन के एक विशेष ढंग की अपेक्षा करता है। इन पंक्तियों के पाठ करने में यद्यपि एक दो वर्ण यत्र तत्र अधिक और कम मिलते हैं, परन्तु गाए जाने के उद्देश्य से ही लिखे जाने के कारण उन वर्णों को आवश्यकतानुसार घटा और बढ़ा कर गा दिया जाता है, और छंद ठीक ही रहता है। उदाहरण के लिए, पहले उदाहरण में 'अल्लादैत अल्लादीन बांधी में 'अल्लादीन' शब्द अधिक जान पड़ता है। गाते समय इस पंक्ति के पूर्व 'कि' कह कर और अल्लादीन का 'अल्ला' जल्दी कहकर मात्रा तथा लय में ठीक किया जा सकता है। इसी प्रकार 'पुल बड़ी परवीन' पंक्ति में 'बड़ी' शब्द के अक्षर 'ब' पर बल दिया जाना चाहिए।

गज़ल का प्रयोग आज भी लोक-गीतों में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है।

ध्रुवपद

ध्रुवपद छंद छियालीस मात्राओं का होता है, जिसमें बाहर, बारह, बारह, दस पर यति होती है। उदाहरण के लिए—

‘है यही अनादिनद निर्विकल्प निर्विवाद, भूलते न पूज्य पाद वीत राग
योगी।

वेद को प्रमाण मान अर्थ योजना बखान गा रहे गुणी सुजान साधु स्वर्ग
भोगी।

ध्यान में धरै विरक्त भाव से भजै सुभक्त त्यागते अधी अशक्त पोच पाप
रोगी।

शंकरादि नित्यनाम जो जपे विसार काम तो बने विवेक धाम मुक्त क्यों
न होगी।”

इस छंद का काव्य में अधिक प्रयोग नहीं मिलता है, परन्तु संगीत में 'ध्रुवपद' बहुत अधिक प्रचलित है। अभी तक काव्य के 'ध्रुवपद' छंद और संगीत के ध्रुवपद को दो अलग अलग वस्तुएँ समझा जाता रहा है। दोनों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि वास्तव में संगीत में प्रयुक्त गायन का एक प्रकार ध्रुपद, इसी शब्द 'ध्रुवपद' का बिगड़ा हुआ रूप है। कहीं कहीं तो 'ध्रुवपद' शब्द भी ध्रुपद के लिए लिखा मिलता है। श्याम-सुन्दर दास जी के अनुसार ध्रुपद की व्याख्या इस प्रकार है, 'ध्रुपद एक गीत है, जिसके चार भेद या तुक होते हैं, अस्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। कोई मिलातुक नामक इसका एक पाँचवाँ भेद भी मानते हैं। इसके द्वारा देवताओं की लीला, राजाओं के यज्ञ तथा युद्धादि का वर्णन गूढ़ राग रागिनियों से युक्त गाया जाता है। इसके गाने के लिए स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यकता नहीं। इसमें यद्यपि द्रुतलय ही उपकारी है, किन्तु यह विस्तृत स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी भला मालूम होता है। किसी किसी

१. हिंदी छंद-प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री।

ध्रुपद में अस्थायी और अन्तरा दो ही पद होते हैं। ध्रुपद कान्हड़ा, ध्रुपद केदारा, ध्रुपद एमन आदि इसके भेद हैं। ये सब के सब चौताल पर गाए जाते हैं। इस राग को संस्कृत में 'ध्रुवक' कहते हैं। 'संगीत दामोदर' के मत से ध्रुपद सोलह प्रकार का होता है। जयंत, शेखर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुंतल, कमल, सानंद, चंद्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कंदर्प, जयमंगल, तिलक और ललित। इनमें से जयंत के प्रति पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं, फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक अक्षर अधिक होता जाता है, इस प्रकार ललित में छब्बीस अक्षर होते हैं। छः पदों का ध्रुपद उत्तम, पाँच का मध्यम और चार का अधम होता है।^१

जिस प्रकार 'गजल' छंद, विशेष प्रकार से गाने के कारण गायन का एक प्रकार बन गया, 'धमार', ताल बोधक शब्द होने पर भी उसमें अधिकतर होली गाए जाने के कारण, होली का पर्याय हो गया, इसी प्रकार 'ध्रुवपद' सदैव चारताल में गाया जाने के कारण एक प्रकार से चारताल का पर्यायवाची बन गया। यहाँ पर ध्रुवपद छंद और 'ध्रुपद' (संगीत) में गति और यति का साम्य बताने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

'राग गोरी-चौतालो।

वेर गोधूरिक भई, रोकी लै मग मांझ, छांड देहो अंचरा गृह,
सासु सुन पाय हो।
नगधर रसिक लाल, प्रेम मतवारे प्यो, रूप रस भीजे जो,
दान हट लाए हो।
सांच हूं कहूं हूं स्याम, मेरी यह मानो बात, आहैं दधि चोखे में,
ऊखल बंदाय हो।
वल हुं पै मांग दान, वामन भए हो देखो, हम हुं पै दान लैके,
कौन छवि पाय हो।^२

उपर्युक्त अंश में बारह मात्राओं के तीन विभाग तथा अंतिम विभाग दस मात्राओं का किया जा सकता है। गेय होने के कारण मात्राओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। गायन में दस मात्राओं को बारह बनाकर तथा बारह को दस बनाकर गाना स्वाभाविक ही है। संगीत के इस 'ध्रुपद' को साहित्यिक छंद 'ध्रुवपद' कहा जा सकता है।

ध्रुपद चार ताल में अर्थात् बारह मात्राओं की ताल में गाया जाने वाला गीत है। इस ताल की गति धीमी है। विलंपित लय में इसे बजाया जाता है, अतः इसमें गाया जाने वाला गीत भी विलंपित लय में गाया जाता है। विशेष चमत्कार दिखाने के लिए गायक गीत के शब्दों की दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी, अठगुनी, आड़ तथा कुआड़ आदि विभिन्न लयों में गाता है। ध्रुवपद छंद में बारह, बारह, बारह पर यति होने के कारण पंक्ति के तीन

१. हिंदी शब्द-सागर, तृतीय भाग, श्याम सुंदर दास।

२. रस-तरंग, जवान सिंह जी महाराज, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर।

विभाग बड़ी सरलता से चार ताल में गाए जा सकते हैं, और अंतिम दस मात्राएँ विस्तार के साथ बारह बना कर गाई जाती हैं। ध्रुवपद छंद की गति भी धीमी है।

प्रारंभ में संगीत ईश्वरोपासना का एक माध्यम था। ईश्वरस्तुति के लिए गंभीर पदावली ध्रुवपद में लिखकर उसे चार ताल में गाया गया। यही कारण है कि अधिकतर ध्रुपद में गाई जाने वाली रचनाएँ गंभीर होती हैं। विषय या तो ईश्वर सम्बन्धी होता है अथवा राज दरबारों में गाए जाने वाले राजा की प्रशंसा से संबंधित।

कालांतर में ध्रुवपद छंद ने ही 'ध्रुपद' और 'चार ताल' का स्थान ग्रहण कर लिया। धीरे धीरे गायक या कवि 'ध्रुवपद' छंद को भूल कर केवल चार ताल में गाई जाने वाली रचना को 'ध्रुपद' कहने लगे, परिणामस्वरूप इस छंद में बँधी रचना को ताल की बारह मात्राओं में बाँधना आवश्यक नहीं रह गया। संगीत-रचना को ताल में बाँधने के लिए निश्चित वर्णों का ही होना आवश्यक नहीं है, बल्कि एक ही वर्ण के साथ कितनी भी मात्राओं का आलाप लिया जा सकता है। एक शब्द 'देखियत' चार वर्णों का होने पर भी 'देऽ खि यऽ त' गाए जाने के कारण छः मात्राओं का हो जाता है। इस प्रकार 'ध्रुवपद' छंद संगीत में प्रविष्ट होने के कारण शास्त्रीय दृष्टि से शुद्ध न रह सका और यह केवल संगीत का ही एक अंग बन गया।

शृंगार युग में आकर ध्रुवपद के दो रूप हो गये। एक शास्त्रीय ध्रुपद, दूसरा दरवारी ध्रुपद। बहुत सी रचनाएँ ऐसी पाई जाती हैं, जिनमें विषय की गंभीरता न होकर शृंगारी प्रवृत्ति पाई जाती है। भावों में चंचलता भी है। यही दरवारी ध्रुपद हो गया, जिसमें या तो आश्रयदाता की प्रशंसा होती थी या शृंगारी पद लिखे जाते थे। खयाल और ध्रुपद में केवल लय और ताल का भेद रह गया। शब्दों में कोई भिन्नता न रही। मानसिंह का बनाया हुआ ध्रुपद उदाहरण स्वरूप उद्धृत है।

‘राग कामोद कल्याण—ताल चौतालो।

गरवा लाग मिलुंगी पीयरवा में तोरे।

रसरज तोरे कारण मैं रही हूँ

सारी रेण भर जाग जाग।’

फलस्वरूप शृंगारयुगीन संगीत काव्यकारों ने चार ताल में लगभग उतनी ही चंचल प्रवृत्ति की बंदिशें बाँधी हैं, जिन्हें खयाल और ठुमरी जैसी चंचल गायन शैलियों में स्थान मिलता।

धमार

धमार चौदह मात्राओं का ताल होता है, जिसके बोल हैं ‘क धिट धिट धाऽ, क तिट तिट ताऽ।’ इस ताल में गाया जाने वाला गीत भी ‘धमार’ कहलाता है। अधिकतर ‘धमार’ में होली विषयक रचनाएँ गाई जाती हैं। इसको विलंपित लय में, दुगुनी, तिगुनी,

१. मानसिंह कृत ध्रुपद और खयाल, मुनि कान्ति सागर-संग्रह, उदयपुर।

चौगुनी, अठगुनी, आड़, कुआड़ आदि लयों में गाकर गायक विशेषता दिखाता है। शृंगार युगीन कवियों ने धमार का एक नया स्वरूप सामने रखा। विलंपित लय में एक छंद गाकर गायक कुछ अंश चंचल गति से गाता है, उसके पश्चात् फिर विलंपित में लौट कर आ जाता है। विलंपित लय का गीत समूह द्वारा और चंचल गति का एक व्यक्ति द्वारा गाया जा सकता है। चंचल गति का अंश 'कहरवा' या 'चलती' में गाया जा सकता है। पूरे गीत में दो तालों तथा दो लयों का सम्मिश्रण कर के यह विशेष प्रकार का धमार-गीत बनाया गया। इसमें जन्म, विवाह, होली अथवा किसी भी प्रकार के उत्सव को विषय बनाया गया। ऐसे धमार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

‘धमार राग काफी

सरस सुहाइयां वे रितु छबि देत हैं रितुराज ।
सुंदर सरस सोभावे गोभी काम जन्म सुराज ।
अति मन भाइयां वे समधी मिलत हेत सकाज ।
उनयो मान मंदिर वे सुंदर सुघर समाज ।

सुंदर समघन आई। वाह वा ।
संग दोउ घोटा लाई वाह वा ।
सब जन हरप बधाई। वाह वा ।
समधी नोत बुलाई। वाह वा ।
कीरत सनमुप आई। वाह वा ।
मंगल कलस बढ़ाई। वाह वा ।
भीतर भवन लिवाई। वाह वा ।
अद्भुत गारि सुनाई। वाह वा ।

सुनाई गारि अद्भुत वे श्री नंद राय कों ब्रज नार ।
संग बल राम मोहन वे मन दां भावदां दिलदार ।
आगम सरस सोभा वें श्री वृष भान के दरबार ।
सरसों सी फूल रहियां वे भुंडन भूमती सुकुमार ।
भुंडन धूमत आवैं। वाह वा ।^१

यह गीत छंद-शास्त्र की दृष्टि से 'विजात छंद' कहा जा सकता है। विजात छंद चौदह मात्रा का मानव जाति का होता है।^१ उपर्युक्त गीत चौदह मात्रा में गाया जाता है, परन्तु इसके वर्णों की गणना करने पर, प्रथम पंक्ति में ग्यारह अथवा बारह मात्राएँ मिलेंगी तथा द्वितीय पंक्ति में चौदह। इसका कारण है कि 'वे' शब्द पर गायन शैली के अनुसार दो या तीन मात्राओं का विश्राम होना आवश्यक है। छंद-शास्त्र तथा संगीत-शास्त्र दोनों

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी महाराज, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

२. 'करो रचना विजाता की। कला चौदह लघू आदी ।'

हिंदी छंद-प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री, पृ० ५१ ।

की दृष्टि से उसको निम्न प्रकार से लिखा जाना चाहिए ।

।।। ।S।S S।।।

‘सरस सुहा इयां वे SSS ,

।। । ।S।S ।। S।

रितु छवि देत हैं रितु राज ।’

प्रत्येक पंक्ति के ‘वे’ पर रुकना होगा । चंचल गति के अंश, ‘सुन्दर समधन आई, वाह वा’ को ‘कहरवा’ की दो आवृत्ति में ठीक बिठाया जा सकता है ।

सुं द र स म ध न आ ई वा ह वा S।

संग दो उ घो टा ला ई वाह वा S।

छंद-शास्त्र की दृष्टि से यह अंश ‘पादाकुलक वर्ग’ के चतुष्कल नियम का छंद कहा जा सकता है, जिसका अंतिम ‘चौकल’ ‘SS’ का है, संगीत में इन्हीं गुरु वर्णों को लघु बना कर, एक एक मात्रा बढ़ा कर चार मात्राओं में गाया जाएगा ।

इस ‘धमार-गीत’ में ‘विजात’ तथा ‘पादाकुलक’ छंद का निर्माण कर लिया गया है । संगीत-कला में भी एक नवीन शैली का प्रचार हो गया, जिसमें अभी भी होली आदि गाई जाती है ।

इस प्रकार मिश्रित छंदों के अनेक प्रकार संगीत-काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें से कुछ गीत उदाहरण स्वरूप यहाँ दिए जा रहे हैं ।

सोलह और ग्यारह मात्राओं की दो पंक्तियों के बीच में ‘आली’ और ‘प्यारी’ जोड़ कर तथा पंक्ति के प्रारंभ में ‘अरी यह’ अधिक बढ़ाकर गाने से छंद-शास्त्र की दृष्टि से एक नवीन पद सम्मुख आता है ।

‘अरी यह छैल छबीलो नागर पेलत सरस सुहाय ।

अरी यह रंजित सुभग सावरो । हेली । मोतन निरप लुभाय ।

अरी यह अलक छबीली सोभे वोरी । आली । प्यारी । मनहु चंवर
फहराय ।

अरी यह भूकुटी बंक रसीली की सोभा । आली । प्यारी । दरसत
है इहि भाय ।

अरी यह नैन कुरंगन से रस माते । आली । प्यारी । छवि सो चलत
सुहाय ।’ आदि ।

उपर्युक्त गीतों में पंजाबी के लोक-गीतों का प्रभाव है । एक पंक्ति गाकर समूह ‘वाहवा’ अथवा ‘शावा’ की ध्वनि करता है । अन्तरा एक व्यक्ति के द्वारा गाई जाती है । बीच के अक्षर समूह द्वारा । इसी प्रकार यहाँ भी ‘वाहवा’, ‘हेली’, ‘प्यारी’, ‘अरी यह’ आदि शब्दों

के गाने से गीत अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है। लोक-शैली को साहित्यिक रूप देने का श्रेय इन संगीत-काव्यकारों को दिया जाना चाहिए।

इस काव्य में कुछ ऐसे छंद प्राप्त होते हैं, जिनका उल्लेख छंद शास्त्र में कहीं नहीं मिलता, परन्तु गाए जाने के लिए लिखा जाने के कारण अत्यन्त संगीतात्मकता मिलती है। सभी नवीन छंदों का वर्णन करना तो संभव नहीं होगा, परन्तु उदाहरण के लिए कुछ गीतों को लिया जा सकता है, जिनको विशेष ढंग से गाने के कारण नवीन छंद का निर्माण हो गया है।

एक छंद प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें पद के समान प्रारंभिक पंक्ति स्थायी रूप में कही गई तथा अन्तरा में सोलह, बारह, बारह की यति पर पंक्तियाँ रखी गई हैं। बारह, बारह के दो छोटे छोटे अंश गाने में एक विशेष सौन्दर्य आ जाता है। यद्यपि मूलतः गेय होने के कारण बारह के स्थान पर ग्यारह, दस और तेरह मात्राएँ भी प्राप्त हो जाती हैं, परन्तु स्वरो के योग तथा लोप से उसे मात्राओं में बाँध लिया जाता है।

‘पेलत डोलत ग्वालिनी दधि का दो माती ।

ले मटकी भारत सिर पर हरपी

हरी जनम सुहाती ।

सभियन मन भांती ।

प्रेम उभंग सभी मिल आवत

नंद भवन में जाती ।

आनंद की राती ।

निरपि निरपि छवि कंवल नैन की

रही हरपि हरपाती ।

सब रंग बढ़ाती ।

सोभित रतन मुदेश सुभंग तन

उर पदिकन की पातीं ।

अंग जोवन उफनाती ।

आवें नाचत रंग सू

नगधर जनम सुगाती ।

हिय प्रेम सुराती -”

एक छंद में दोहे के समान तेरह, ग्यारह पर यति रखकर दो दो पंक्तियों को गाया गया है, परन्तु प्रत्येक पंक्ति के बीच में तेरह मात्राओं के बाद ‘हो’ शब्द कुछ विभिन्न स्वरो में गाने से उसके रूप और गति दोनों ही में परिवर्तन आ जाता है। दोहे के कठोर बंधन को तोड़कर गेय बनाने के लिए ‘हो’ का प्रयोग किया गया है।

‘गिर गोवर्धन की ओर गोरस ले चली ।

चलत डगन भर भांवती । हो । कटि लचकत स्तन भार ।
 ऊवट बाट चली कहूँ । हो । संग मोहन रिझवार । १।
 गोरस मागत गोरसिक । हो । चलन देत मग रोक ।
 भगरत है मिस दान के । हो । पी रस नैनन ओक । २।
 बदत नाहीं ग्वालनी । हो । अंग जोवन उफनात ।
 मुसकनि महर मजेज सूँ । हो । शोभित सुंदर गात । ३।
 जोवन माती फिरत है । हो । दान हमारो मार ।
 गरव गहेली ग्वालनी । हो । बोलत वचन सम्हार । ४।”

इस प्रकार एक गीत में अनेक अन्तराएँ होती हैं ।

एक अन्य गीत है, जिसमें प्रत्येक दो पंक्तियों के बाद चार पंक्तियों का एक भूमका गाया जाता है, जिसके कारण लय में अन्तर आ जाता है और बार बार उसके प्रयोग से छंद में गीतात्मकता बढ़ जाती है ।

‘हेली नंद घरन आज बघायो ।
 गोकुल गली अली घर घर तैं नूपुर शब्द सुहायो । टेक ।
 गोकुल रंग रंगे ब्रजवासी आनंद ओप अलेलैं ।
 गोकुल सकल मही लैं लैं कै दधि कादो भरि पेलैं । १।

भूमका —

अंगन साज सुवास जरी हैं ।
 मुप बेंदी सिर तिलक करी हैं ।
 मूपन साज सिंगार उजेरी ।
 बाजत चली चरनन में जेरी ।
 यह मंगल शब्द सुहायो । २।
 गोकुल नंद महोत्सव सुंदर मंदिर सरस सुहायो ।
 गोकुल घर घर बजत बघाई मंगल अति मन भायो । ३।

भूमका—

करन फूल प्रतिबिंब कपोलन ।
 अलक मोहिनी करत कपोलन ।
 तन सुष सारी नील निचोलन ।
 सुंदरता सागर मृदु बोलन ।
 यह मंगल शब्द सुहायो । ४।
 गोकुल गांव सकल ब्रज वासी आनंद उर न समावे ।
 गोकुल प्रकट भए मन मोहन सुंदरता उफनावे । ५।

१. रस-तरंग, जवानसिंह जी महाराज, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।

भूमिका—

अंजन साज सिंगार चली हैं ।
 मुष वीरी छवि अधिक पुली हैं ।
 हाथ लिये उपहार अली हैं ।
 गावत सब मिलि नंद गली हैं
 यह मंगल शब्द सुहायों ।६।
 गोकुल निगम पुरान बपाने सुंदरता को सार ।
 गोकुल प्रेम दुहाई फिर रहि आनंद हृदय अपार ।७।”
 आदि ।

इस प्रकार के गीतों या छंदों में बहुत विविधता है, क्योंकि प्रत्येक गायक और प्रत्येक गीत की अनुकूलता के अनुसार इनका निर्माण होता है ।

यह वास्तव में कृष्ण भक्ति के माधुर्य और शृंगार युगीन चमत्कारी प्रवृत्ति की ही देन है । कृष्ण भक्ति में विभोर होकर भवत, भजन या कीर्तन करने लग जाता है । सामूहिक गीतों में इस प्रकार, छोटी छोटी पंक्तियों को जोड़कर रसोदक करना स्वाभाविक हो जाता है ।

संगीत-काव्य में प्रयुक्त ‘रास’ छंद भी विशेष अध्ययन की अपेक्षा रखता है, अतः ‘रास’ पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा ।

रास

‘रास’ शब्द छंद बोधक, गीत बोधक तथा नृत्य बोधक, तीन रूपों में प्राप्त होता है । ‘रास’ शब्द की व्युत्पत्ति तथा पारंपरिक प्रयोग की विवेचना अनेक प्रकार से की गई है । अतः संगीत-काव्य में प्रयुक्त ‘रास’ का स्वरूप देखना पर्याप्त है ।

डा० हरीश ने विरहांक के अनुसार ‘रास’ को अनेक अडिल्लों, दुवहवों, मात्राओं रड्डाओं और दोसाओं का सम्मिश्रण बताया है,^१ तथा डा० हरिवल्लभ भायाणी के अनुसार रास दोहा, छड्डणिया, पड्डिया, घत्ता, चौपाई, रड्डा, ओढसा, अडिल्ल आदि अनेक छंदों का मिश्रित रूप है ।^२ सोरठा, चउपड, वस्तु आदि छंदों के योग को भी ‘रास’ कहा गया है ।^३

इन उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि ‘रास’ शब्द एक शैली विशेष का बोधक है, प्रबन्धात्मक गीत गाने के लिए एक ही छंद में अथवा विभिन्न छंदों में संगीत तथा

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी, पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर ।
२. वृत्त जाति समुच्चय—४।२६-३७, विरहांक ।
 आदि काल के अज्ञात हिंदी रास-काव्य, डा० हरीश, पृ० १३ ।
३. वही, पृ० १४ ।
४. वही, पृ० ३५ ।

काव्य में लय का साम्य रखते हुए गाया गया गीत 'रास' है। अपने अपने विषय तथा रुचि के अनुसार कवियों ने छंदों का प्रयोग किया। यह निश्चित है कि यह गेय काव्य था। 'हर एक रास में गेय तत्त्व व रसमय तत्त्वों की प्रधानता रही थी और इस गेय तत्त्व ने जब अनवरत वृद्धि पाई, तो यह समस्त रास ग्रंथ एक रास छंद के लिए ही रूढ़ हो गए।'^१

साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर रास या रासक संगीत, नृत्य, लय, ताल, छंद, क्रीड़ा, तथा अभिनय सभी अंगों का समन्वय है। रास में गीत, लय और ताल का महत्त्व अधिक होने के कारण संगीत की दृष्टि से इसका महत्त्व अधिक बढ़ जाता है।^२

'रास' का नृत्य से सम्बन्ध बहुत प्राचीन और प्रगाढ़ है। आज भी उसके विभिन्न स्वरूप, राजस्थान, मणिपुर, महाराष्ट्र तथा गुजरात आदि में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। रास का जो चित्र खींचा जा सकता है, वह वास्तव में नृत्य, गीत तथा छंद तीनों से समन्वित है। समूह में पुरुष और स्त्रियाँ, गीतों के शब्दों के अनुसार भावों के साथ ताल में नृत्य करते हैं। गीत छंद तथा ताल वद्ध होता है, वह दूसरे समूह द्वारा वाद्य-यन्त्रों के साथ गाया जाता है। अभिनयात्मक अथवा नृत्यात्मक होने के कारण शब्दों में भी भावात्मकता होती है। 'रास' संगीत तथा काव्य के सम्मिश्रण का बड़ा सुंदर उद्घरण है।

शृंगार युगीन संगीत-काव्य में 'रास' का सर्वोत्तम रूप प्राप्त होता है। इस काव्य में 'रास' नृत्य विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके लिए कवियों ने अधिकतर पद शैली का प्रयोग किया है। पद-शैली में भी कुछ विचित्रता है। प्रारंभ की एक पंक्ति कम मात्राओं की तथा स्थायी रूप में होती है। अन्तरा में 'दोहे' का प्रयोग किया जाता है। दोहे के निरन्तर प्रयोग से प्रबंधात्मकता आ जाती है। उन्हीं से सम्पूर्ण 'रास-नृत्य' का वर्णन होता है। दोहा तेरह तथा ग्यारह मात्राओं में ही बाँधा जाता है, परन्तु संगीत-काव्य में तालों के आधार पर बाँधे गए दोहों के नए-नए रूप प्राप्त होते हैं। ताल की मात्राओं के अनुसार दोहों में मात्राओं को बढ़ा दिया जाता है। इसके लिए कवि 'हो', 'अरी' आदि का प्रयोग करता है, अतः दोहा तेरह तथा ग्यारह मात्राओं की पंक्तियों के अतिरिक्त चौदह, चौदह का; चौदह, बारह का; तथा बारह, चौदह का मिल जाता है। यहाँ एक उदाहरण 'रास' के गीत का है, जो घमार ताल में गाया गया है। घमार ताल की चौदह मात्राओं में ठीक बिठाने के कारण दोहे की प्रत्येक पंक्ति चौदह चौदह मात्राओं की बनाकर उसको अन्तरा रूप में गाया गया है। अन्त में 'हो' की ध्वनि करके लोक-तत्त्व तथा उत्साह की वृद्धि की जाती है।

'अथ अस्ताई। राग बिहागरी ताल घमार।

अति रस भरी ब्रज सुंदरी नृत्यत रास सुधंगा हो।

निस सर्वोत्कुल मल्लिका ककुम कांत राकेसा हो। १।

पूरव ससि निस सरद की चलि वन मलय समीरा हो।

१. आदि काल के अज्ञात हिंदी रास-काव्य, डा० हरीश, पृ० ११।

२. वही, पृ० १२।

होत बैण रव रास हित तरनि तनैया तीरा हो ।२।
 बंसी धुनि दूबी पठै बोली हैं ब्रज वाला हो ।
 समर विजै आरंभ रस रास करन नंद लाला हो ।३।
 परम प्रेम आरूढ़ रथ विषम पंथ धुनि बैना हो ।
 रास केलि संग्राम हित चली मदन गढ़ लैना हो ।४।
 विमल जुन्हैया जगमगी रही बैन धुनि छाया हो ।
 प्रेम नदी तिय रग मगी वृंदा कानन आया हो ।५।
 रुकी न कांपै तिय गई छांडि काज गृह चाहा हो ।
 मिल्यो स्याम रस सिंधु मन सलिता प्रेम प्रवाहा हो ।६।
 जुरै करनि कर कंवल विच अमल जुन्हैया जोती हो ।
 हाव भाव वही गान गति रास रंग अति होती हो ।७।
 नूपुर कंकन किकिनी मिलेरा भ्रमकि भ्रकारा हो ।
 कोटि काम दल दलमलति पायन गति विसतारा हो ।८।
 अति दरसी सरसी जु छवि दै तिय मधि नंद लाला हो ।
 कंचन मणि विच स्याम मणि मनौं मैं की माला हो ।९।
 पद-न्यास उठि रास में कुसुम सुगंधित धूरा हो ।
 रह्यो नूपुर निनाद सौं नव वृंदावन पूरा हो ।१०।
 लगे होंन रस रास में वही संगीत प्रकारा हो ।
 गांन तान अति गतिन के कहि न सकत विसतारा हो ।११।
 रास करत नंद लाल तिय संग सरद की राता हो ।
 लाघवता तन फिरन की मनौं मैं आलाता हो ।१२।
 फुरत हरवाई पगनि की नचत मांभ दरसाया हो ।
 वाला लाला फूल पर उर पति रूप लजाया हो ।१३।
 लखि उपजत चपलानि चित सखिन की ललचाना हो ।
 लोक लंक ललनानि की अलग लाग लै जाना हो ।१४।
 निकसि निकसि मंडलनि तैं लेत ललित गति लाला हो ।
 देखि देखि अंकनि भरति रीभि रीभि वस वाला हो ।१५।
 मुकट लटक पट फरहरनि भूंग भरहरनि संगो हो ।
 मुख मुरली धुनि घर हरनि नृत्यत स्याम सुधंगा हो ।१६।
 ग्रीव दौरि गति लै चलनि हलनि अलक उरहारा हो ।
 पायनि मनमथ दलमलनि नचत ललनि छवि सारा हो ।१७।
 कवहू प्रिय मंडल कढत अति गति वढत सुधंगा हो ।
 हरि के मन लोचन फिरत उर के पायनि संगो हो ।१८।
 बैनी चला नितंब पर छनक छला अंगुरीना हो ।
 नचै चंचला सी कला कोविद प्रिया प्रबीना हो ।१९।
 लाल लई उर लाइ लखि रीभे गति सरसानी हो ।

मंडल में सुरभे नही अंक माल उरझानी हो । १२०।
 उत अत अरुभी कुंडल अलक इत बेसर बनमाला हो ।
 गउर स्याम अरुभे दोऊ मंडल रास रसाला हो । १२१।
 गर बहियां गति लेत मिलि श्रम वस सिथलत पाया हो ।
 डारे मन ले सबनि के डगमग डगनि डुलाया हो । १२२।
 लेत वलैया रीभ दोऊ दोऊ पोंछत श्रम बारी हो ।
 नचत सनी अति रंग सौ बनी मदन मनुहारी हो । १२३।
 उतै भुकाँ हौं नव मुकुट इतै चंद्रिका चारा हो ।
 भये रास रस मगन तन सर के सकल सिगारा हो । १२४।
 खूटि खूटि अंचर गए, छूटि छूटि गए वारा हो ।
 श्रमित रास रस रंग में टूटि टूटि गए हारा हो । १२५।
 कहत कहत कहां लगि कहै कवि मति मंद प्रकासा हो ।
 तिनके भौह विलास में कोरि कोरि कै रासा हो । १२६।
 नागरिया दये रास मैं अनगिनत कलप बिताया हो ।
 मनमथ हू को मन मथ्यो कथ्यो कौन पै जाया हो । १२७।

इति श्री नागरी दास जी कृत रास रस लता सम्पूर्णम् ।'

यहाँ पर 'रास' के आध्यात्मिक पक्ष का विवेचन न करके केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि माधुर्य भाव की भक्ति में रस की चरम पराकाष्ठा पर पहुँचा देने वाला 'रास' नृत्य था। उस दिव्य आनंद को प्रदान करने वाले नृत्य के साथ संगीत का माध्यम दोहा ही क्यों चुना गया, इसका सबसे बड़ा कारण यह ज्ञात होता है कि रास में जिस रस व्याप्ति की प्रारंभ से अंत तक आवश्यकता होती है, वही दोहों के निरंतर गाने से प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में जिसे साहित्य में 'प्रबंधात्मकता' कहा जाता है, वही 'प्रबंधगीतात्मकता' इस नृत्य में अपेक्षित है, जिसकी पूर्ति 'दोहा' करता है।

रास नृत्य करते समय नर्तक और नर्तकी धीमी लय से प्रारंभ करके निरन्तर ज्यों ज्यों रस में डूबते जाते हैं, त्यों त्यों लय भी बढ़ाते जाते हैं। नृत्य-कला के दृष्टिकोण से इसी बढ़ती हुई गति के साथ गोपियाँ कृष्ण से अधिकतर काल्पनिक सामीप्य का अनुभव करती चली जाती हैं। इसी अनुभूति के साथ ही कृष्ण का स्वरूप उज्ज्वल होता जाता है। उसका सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है तथा उसके प्रति प्रेम उद्दीप्त होता चला जाता है। उनके अंग संचालन, गति, अभिनय और रस की अभिव्यक्ति में नवीन भावों और हावों का समावेश होता चला जाता है, जिसकी पूर्ति दोहे के समान सरल और स्वाभाविक छंद ही कर सकता है, तभी नंददास, सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्तों ने भी रास के गीत के लिए सदैव 'दोहा' ही अपनाया है और सभी रास गीतों में एक ही प्रकार की तन्मयता दिखाई देती है। कृष्ण से तादात्म्य स्थापित करते करते एक अलौकिक आनंद में नर्तकी डूब जाती है और साधक साध्य और साधन सभी का एक ही स्वर हो जाता है, जिसका प्रमाण प्रत्येक रास में दिए

१. रस-तरंग, जवान सिंह जी महाराज, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

गए मृदंग के बोल हैं, जिनमें स्वयं कवि गोपी के चरणों से निकलने वाले मृदंग के बोल गाने लगता है ।

‘सरद उजारी रेनि ता मधि रच्यो है रास मंडल
 पियारी चले ठुम ठुम चाल हैं ।
 ता थेई ता थेई थेई तक तक थेई ता ता थेई भनन कनन
 बाजै भम भम ताल हैं ।
 धिधिकट धिधिकट धिकतां तां न धुंग धुंग थर थर
 तन न न जाल है ।
 तागिडि तथुंगिडि धा गिडि गिडि ता ता कु ता उघटत
 गोपी संग नाचत गुपाल हैं ।’

सारांश यह है कि यद्यपि ढूँढ़ने पर सभी छंदों का प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त हो जाता है,^३ फिर भी संगीत-काव्य में संगीत विषयक अथवा संगीत संबंधी काव्य रचना के उपयुक्त तथा अनुकूल छंदों का ही अधिक प्रचार रहा । ऐसे छंदों में कवित्त, सवैया, दोहा, गजल तथा पद ही कवियों के प्रिय छंद रहे । गेय रचनाओं में संगीत तथा छंद शास्त्र के योग से अनेक नवीन छंद बनाए गए, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । इस प्रकार शृंगार-युगीन संगीत-काव्य छन्द-शास्त्र की दृष्टि से भी उत्कृष्ट कोटि का कहा जा सकता है । संगीत के तीन अंग गायन, वादन तथा नर्तन तीनों के समावेश से छंदों का सुंदरतम स्वरूप उपस्थित हो गया है ।

१. संगीत-पच्चीसी, गहर गुपाल, याज्ञिक संग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी ।
२. उदाहरणार्थ कुछ छंद यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

शाहूँल विक्रीडित छंद

‘माथै चन्द कलाथ गति करे मातंग की सो
 सदा सारी सेत अनूप रूप पहिरे श्रीषंड चचा धरे ।
 ठाढ़ी कंत समीप मत्त हृदया गौरी कटाक्षा षले ।
 कामी मानस मोहिनी सिव कही बंगालिनी रागिनी ।’
 राग विवेक, पुरुषोत्तम, सरस्वती मंदिर, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।

+

+

+

मधुभार छंद—

‘हम कही बात । सुनि नृप सिहात ।
 कछु तरक लाइ । उबर्यो सुभाइ ।
 जान्यो अनूप नहिं ब्रह्म रूप ।
 सुंदर ललाम । कमनीय काम
 केवल सुदाम । घनस्याम वाम ।
 संयो सुजानि । अति हित् मानि ।’

‘वाद्यों द्वारा बाहर से आए स्वर की समचाल में कण्ठ से निकली हुई स्वर-लहरी जब समभूत होती है, तब गाने, बजाने तथा सुनने वाले के शरीर के स्नायुतन्त तथा अंग अंग इस सम से स्वतः आंदोलित हो उठते हैं। मन की यह समीभूत एकाग्रता आनन्दानुभूति की अवस्था है और अंगों की फड़कन उस आनन्द के अनुभाव है।’^१

इसी अनुभूति से उद्भूत संगीत काव्यकारों की कृतियाँ संगीत से सर्वथा पूर्ण हैं।

रास-पंचाध्यायी, बटुनाथ कृत, मुनि कांति सागर-संग्रह, उदयपुर।

+ + +

मोदक छंद—

‘धैवत सुर ग्रह ताको जानी।

शिव मूरति संगीत बषानी।

कंकन डरग और शशि भाल।

सुरसरि जटा गरै रुंड भाल।

सेत वसन नैन पुनि तीन।

सिद्ध सरूप अरु महा प्रवीन।’

रागमाला, अहमद, श्री अभय जैन ग्रन्थालय, वीकानेर।

१. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, सं० २००४, पृ० ५६४।

तार-स्वर

महत्त्व और उपलब्धियां

शृंगार युगीन साहित्य में संगीत विषयक अथवा संगीतात्मक रचनाओं की प्रचुरता तथा उत्कृष्टता से परिचित होने के पश्चात् संगीत-काव्य का महत्त्व द्विगुणित हो उठता है। साहित्य, समाज तथा संस्कृति का व्याख्याता है। संगीत-काव्य एक और तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों तथा रुचियों का निर्देशन करता है, दूसरी ओर देश के सांस्कृतिक विकास से परिचित कराता है। इस प्रकार शोध-प्रबंध में चुना गया विषय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि साहित्य तथा संगीत वैदिक काल से ही परस्पर अन्योन्याश्रित तथा सम्बद्ध समझे जाते रहे, फिर भी साहित्य का क्षेत्र लेखनी में तथा संगीत का क्षेत्र कण्ठ में सीमित रहा। संगीत से प्रभावित साहित्यकार का काव्य सदैव स्वर-माधुर्य से प्लावित होता रहा तथा साहित्यकार की कविता से संगीत अपने भीतर भाव भरता रहा, परन्तु संगीत तथा साहित्य का मिश्रित रूप जिन रचनाओं में प्राप्त हुआ, वे यद्यपि दोनों क्षेत्रों को समृद्ध बनाने में समर्थ थीं, तथापि साहित्य तथा संगीत दोनों स्थानों पर समादर न पा सकी। साहित्य ने संगीत की सामग्री समझ अपने जगत में गौण स्थान दिया तथा संगीत ने साहित्य की निधि समझ उन्हें उपेक्षित दृष्टि से देखा। कल्पना से युक्त भावुक हृदय भावोत्कर्ष में स्वयं मग्न हो भूमने लगता है। भावाभिभूति के उपरांत प्रस्फुटित रचना आनंदानुभूति के कारण स्वयं ही लयात्मक तथा संगीतात्मक हो जाती हैं। काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में संगीत कला तथा चित्रकला बहुत अंशों तक सहायक होती हैं, अतः साहित्यिक तथा सांगीतिक तत्त्वों से पूर्ण काव्य-रचनाओं का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में शृंगार युग (सं १७०० से १९००) के उन कवियों तथा रचनाओं का अध्ययन किया गया है, जिनका काव्य इन दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। इस प्रकार 'शृंगार-युग में संगीत-काव्य' का अध्ययन साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दोनों पक्षों पर प्रकाश डालता है।

-
१. 'काव्य, संगीत एवं चित्रकारी के प्रगाढ़ संयोग ही से उत्कृष्टतम रूप में स्थिरता पा सका, मानवीय संवेदनाओं का सार्वभौम हो जाना केवल आभ्यन्तरिक धार्मिक व्यवस्था की बात नहीं है, जो अलौकिक शान्ति एवं निर्विकारिता ले आए। चित्रकला को संगीत एवं काव्य से संयोजित कर चित्रकार द्वारा यह उद्देश्य और भी सुसाध्य किया जा सकता है, ताकि काव्य के विषय के चाक्षुष-मूल्यांकन करने में उसे सजीवता प्रदान कर सके।' 'ललित कलाओं का समन्वय' (लेख), डा० राधा कमल मुकर्जी विक्रम स्मृति ग्रंथ २००१, पृ० ८४७।

साहित्यकारों तथा संगीतज्ञों दोनों वर्गों के द्वारा उपेक्षित होने के कारण प्रबंध में वर्णित रचनाएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकी थीं, अतः इस विषय पर शोध करने से एक ओर तो अप्रकाशित सामग्री विद्वद्जनों के समक्ष प्रस्तुत की जा सकी और दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के इतिहासों का एक मूक पृष्ठ मुखर हुआ।

आज जब बुद्धिवादी जिज्ञासु मानव विषय के सूक्ष्मतम कण का गहनतम अध्ययन करने का प्रयास कर रहा है, तब विविध विषयों पर लिखे गए साहित्य का प्रकाश में आना अत्यन्तावश्यक है। ऐतिहासिक, नैतिक, धार्मिक तथा काल्पनिक आधारों पर की गई रचनाएँ यदि साहित्य का कोष भर सकती हैं, तो सांगीतिक आधार पर रचित साहित्यिक रचनाएँ तो साहित्य को और भी अधिक सौन्दर्य प्रदान करती हैं।

हिन्दी साहित्य का अध्ययन जितना ही संपूर्ण होगा, उतना ही स्वतन्त्र देश तथा स्वभाषा को गौरव प्राप्त होगा। विश्व के समक्ष भारतीय साहित्य को प्रस्तुत करने के लिए तथा भाषा की समृद्धता का परिचय देने के लिए इस प्रकार का अध्ययन अनिवार्य है।

यह माना कि संगीतज्ञ की स्वर-लहरी में, चित्रकार की तूलिका में, नर्तक के पायलों में तथा मूर्तिकार की छेनी में कला जीवित रहती है, परन्तु ये कलाएँ, स्थायित्व प्राप्त करने के हेतु अन्ततः साहित्यकार की शरण लेती हैं। शृंगार युग में संगीत पर आधारित अनेक काव्यात्मक रचनाएँ की गईं, अतः उनका अध्ययन हिन्दी साहित्य में एक रिक्त स्थान की पूर्ति करता है।

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल तथा रीतिकाल (शृंगार युग) में साहित्य तथा कला का सर्वाधिक तथा सर्वोत्तम समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है। डा० राधा कमल मुकर्जी ने अपने एक निबन्ध 'ललित कलाओं का समन्वय' में बताया है कि मुख्य रूप से सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक काव्य, संगीत तथा चित्र कलाएं भारत में साथ ही साथ विकसित होती रहीं।^१ भक्ति-काल में भक्ति भावना की प्रधानता होने के कारण साहित्य-सौन्दर्य भी आदर्शों की मर्यादा में बँधा रहा, परन्तु शृंगारयुग में अवकाश प्राप्त कर, साहित्य में

-
१. 'प्रायः तीन शताब्दी १५ ई० सन् से १८ ई० सन् तक लोक-कला के तीन रूप, काव्य, संगीत एवं चित्रकला भारतवर्ष में साथ-साथ विकसित हुई एवं विभिन्न रुढ़ियों द्वारा एक ही अवैयक्तिक भावना की अभिव्यंजना भी की। वे सब श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों से ली गई गाथाओं के धार्मिक अभिप्रायों से अनुरंजित थीं, और सन्त कवि संगीतज्ञ एवं चित्रकारों की ज्योति-गंगा के द्वारा जन-जन के मन तक पहुँचती रही। कला रूपों में राष्ट्र एवं युग की सम्यक कल्पनाओं एवं कला-स्वप्नों की जैसी अभिव्यंजना तब के उत्तर भारत में पाई गई, विश्व संस्कृति के इतिहास में कलाओं का वैसा समन्वय कदाचित् ही अन्यत्र हो।'।

ललित कलाओं का समन्वय (लेख), डा० राधा कमल मुकर्जी, विक्रम स्मृति-ग्रन्थ २००१, पृ० ८४६।

कलात्मकता, विकास की चरमावस्था पर पहुँच गई। इस दृष्टि से शृंगार युगीन काव्य का कलाओं से समन्वित अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक हो गया।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि शृंगार युग में राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियाँ ऐसी बन गई थीं, जिन्होंने संगीत को राज-दरबारों में तथा लोक-जीवन में समान रूप से प्रश्रय दिया। फलस्वरूप दो प्रकार से संगीत-विषयक रचनाओं का निर्माण हुआ। संगीतज्ञ कवियों ने कुछ ग्रंथ राजा अथवा आश्रयदाता की आज्ञा से लिखे तथा अन्य स्वेच्छा से लिखे। आज्ञानुसार लिखे गए ग्रंथों में प्राचीन ग्रंथों का अनुसरण तथा सैद्धान्तिक विवेचन हुआ। स्वेच्छा से लिखे गए ग्रंथों में मौलिकता को स्थान मिला, अतः राग-रागिनियों का शृंगारिक स्वरूप-चित्रण किया गया। मौलिक ग्रंथों में संगीत के तत्कालीन क्रियात्मक रूप पर भी प्रकाश पड़ा। प्राप्त सामग्री के आधार पर हम कह सकते हैं कि उस समय नियमों में आवद्ध शास्त्रीय संगीत का प्रचार उतना अधिक नहीं था, जितना रागवद्ध भजन, कीर्तन, गजल तथा रेपता आदि का। शास्त्रीय संगीत में भी ध्रुपद का स्थान घमार, ख्याल, ठुमरी तथा टप्पा आदि ने ले लिया था। ध्रुपद की शब्दावली में गंभीरता नष्ट हो गई थी। प्राचीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी केवल ग्रंथों तक ही सीमित था, अधिकांश संगीतज्ञ उन कठोर नियमों के ज्ञाता नहीं थे। जो जानते भी थे, वे विदेशियों के हाथ अपनी कला विकने के भय से मूल स्वरूप को प्रच्छन्न रखना चाहते थे। इस प्रकार तत्कालीन संगीत का वास्तविक स्वरूप इन ग्रंथों में प्राप्त है। संगीत के क्षेत्र में राग तथा रागिनियों का चित्रण काव्यात्मकता को उद्भूत करता है, अतः संगीतज्ञ कवियों ने 'रागाध्याय' को विषय बनाकर अनेक 'राग-ग्रन्थ' तथा 'रागमालाओं' का निर्माण किया। ऐसे वर्णन में साहित्यिक सौन्दर्य सहज रूप से आ गया है। संगीत के ज्ञाता होने के नाते काव्य में लालित्य तथा माधुर्य आ गया है। एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में ब्रज भाषा को जो सुंदर स्वरूप इन रचनाओं में प्राप्त है, वह ग्रन्थत्र दुर्लभ है। इस प्रकार शृंगार-युगीन संगीत-काव्य साहित्यिक तथा सांगीतिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। विषयान्तर होने के भय से इन ग्रंथों का संगीत के सिद्धांतों की दृष्टि से विस्तृत विवेचन नहीं किया गया है। सांगीतिक महत्त्व का संकेत मात्र कर के साहित्यिक महत्ता तथा सौन्दर्य प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की गई है।

रागमालाओं का चित्रकला से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के नाते संक्षेप में चित्रकला की दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है। संगीत-काव्य में साहित्य, संगीत तथा चित्रकला का अद्भुत समन्वय है।

संगीत तथा साहित्य की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा महत्त्वपूर्ण लगभग तीस ग्रंथों का मूल्यांकन यहाँ किया गया है। इनमें लगभग बारह ग्रन्थ साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। प्रतापसिंह के 'राधा-गोविंद-संगीत-सार', हरिवल्लभ का 'संगीत-दर्पण', राधाकृष्ण का 'राग-रत्नाकर', पूर्ण मिश्र का 'संगीत-नादोदधि', 'उत्तत की राग-माला', यशोदानंदन की 'रागमाला', कृष्णानंद व्यास देव का 'राग-कल्पद्रुम', जवान सिंह का 'रसतरंग', मानसिंह का 'ध्रुपद और ख्याल', कल्याण मिश्र, हरिश्चंद्र तथा वेनीराम की रागमालाएँ आदि कुछ ऐसे प्रमुख ग्रन्थ हैं, जिनका अभी तक या तो उल्लेख ही नहीं हुआ

था और यदि दो एक ग्रन्थों का (प्रतापसिंह का 'राधा-गोविंद संगीत-सार' तथा कृष्णानंद व्यास देव का 'राग-कल्पद्रुम') उल्लेख हुआ भी है तो वह भी नाम मात्र के लिए। इन ग्रन्थों को लगभग दस या ग्यारह नगरों के पुस्तकालयों से चुना गया है। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त लगभग बीस ग्रन्थ ऐसे लिए गए हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से अधिक मूल्यवान नहीं हैं, परन्तु जन-साहित्य का प्रतिनिधित्व करने के नाते काव्य के कुछ नवीन रूपों से परिचित कराते हैं। ऐसे काव्य रूपों में गजल, मझलस, ढोला तथा वारामासा प्रमुख हैं। प्रबन्ध में लिए गए सभी ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में विभिन्न पुस्तकालयों में प्राप्त हैं। ग्रियर्सन तथा मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रन्थों में कुछ कवियों के नाम दिए हैं, परन्तु सामग्री के अभाव में उन कवियों पर परवर्त्ती आलोचकों की दृष्टि नहीं गई। इनमें से प्रत्येक ग्रन्थ सूक्ष्म अध्ययन की योग्यता रखता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में नवीन सामग्री के आविर्भाव के कारण आलोचनात्मक पक्ष को विस्तार नहीं प्राप्त हुआ है, केवल तथ्यों को जुटाने का कार्य किया गया है। ऐसा विश्वास है कि ये उपलब्धियाँ कुछ शोधार्थियों को प्रेरणा प्रदान कर सकेंगी।

सहायक पुस्तकें

सहायक पुस्तकें

हस्तलिखित ग्रंथ

पुरातत्त्व मन्दिर

जयपुर (अब जोधपुर में है)

अंबा री आरती

आनन्दधन के कवित्त

आनन्दधन कृत चौबीसी

आलाप पद्धति

उत्तराध्ययन गीत

उदयपुर गजल भोज

उद्धव संदेश—रूप गोस्वामी

कवित्त गीत संग्रह—जवानसिंह

काली जी की आरती

कीसन बावनी बारामासा

कृष्ण बारामासा

गिरनार गजल

चित्तीड़ गजल खेतल

चित्तीड़ री गजल

चौरासी वैष्णवों की वार्ता

छत्तीस अध्ययन गान-सागर चंद्रसूरि

तालमु सितार

तुरसी सखी पदावली तुरसी

दुगोली गाँव री गजल

नागरीदास पदावली

नेम जी का बारामासा

नेम राजुक बारामासा—उदयरत्न

नेमीश्वर रागमाला—मेरु विजय

पद संग्रह

पाखंडनाथ स्तवन रागमाला भय-जय विजय

प्रस्ताविक गीत

फाग रंग, रमक-भूमक बत्तीसी आदि

अठारह कृतियों का संग्रह-प्रतापसिंह

फाग-विहार—नागरीदास

वाजीत फाग

बारहमासा आदि—संगम कवि

वावन-पद विविध रागताल बद्ध

भक्तमाल नाभाजी, टीका लालदास

भगवत गीता भाषा छंद—हरिवल्लभ

भजन संग्रह

भैरुजी का गीत—माधव

भंडारी सविचंद जी रो गीत

मजलस

मुहता बांकीदास जी रो गीत

मुहणोत सिरदारमल रो गीत

मंगल कलश फाग

रस प्रबोध—दौलत कवि

राग कोष्टक रागमाल

राग पद संग्रह—ईश्वर पंडित

राग पद संग्रह

राग रत्नाकर व फुटकर रागमाला

चरचर पांकी कृष्ण कवि

रागमाला

रागमाला

रागमाला—कल्याण मिश्र

रागमाला-ब्रजनाथ

राग मंजरी

राग सागर

राधा विलाप बारामासा

राग संकेत—रस राशि

राग संग्रह

राठोड़ां री वंसावली
 राय अमृत जी कृत ग्रंथ
 वस्तु पाल रास
 वियोगबोली गजल, नंददास
 विरुदावली
 विविध भजन पद संग्रह चैनाकृत
 शत्रुंजय रास
 स्फुट पद संग्रह—कवि भोलानाथ
 स्वर पंच शिला
 संगीत दर्पण—हरिवल्लभ
 संगीत की पुस्तक
 संगीत रत्नाकर चतुर्थोद्ध्याय
 संगीत राज—कुंभकर्ण नृप
 सुमति नाथ के गीत और ढाल
 हरिदास जी का पद
 हिंडोलणा—मेघ कुमार संभाय
 होली हजारा

सूचियां

कवि भट वदरोनाथ पुस्तक संग्रहालय,
 जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची
 गंगाधर जोशी, सीकर निवासी के ग्रंथों
 की सूची
 देवकीनंदन खंडेवाल, फतेहपुर के ग्रंथों
 की सूची
 पुरोहित हरि नारायण के हस्तलिखित
 ग्रंथों की सूची
 महाराज मंगलदास जी स्वामी के संत-
 साहित्य की सूची
 महाराज सार्वजनिक पुस्तकालय की हिंदी
 पुस्तकों की सूची
 महाराज संस्कृत कालिज पुस्तकालय की सूची
 यति बालचंद्र जी वैद्य पुस्तक संग्रहालय
 चित्तौड़ के हस्त लिखित ग्रंथों की सूची
 राज गुरु श्री चंद्रदत्त जी ओझा, जयपुर के

हस्त-लिखित ग्रंथों की सूची
 वैद्यराज किशनलाल जी कालू, बीकानेर
 उपासरा स्थित हस्त लिखित ग्रंथों की सूची
 श्री पर्वणीकर ग्रंथ-संग्रह, जयपुर के हस्त-
 लिखित ग्रंथों की सूची
 सरस्वती पुस्तकालय, फतेहपुर, शेखावाटी
 की सूची
 हकीम साहब श्री मोहन लाल जी पापड़ेवाल,
 का संग्रह

पोथीखाना, जयपुर

पद मुक्तावली-नागरीदास
 प्रेम प्रकाश—प्रतापसिंह
 ब्रजनिधि-बीसी प्रतापसिंह
 विजय मुक्तावली—छत्र कवि

उदयपुर

प्राचीन शोध-साहित्य शोध-संस्थान,
 हिंदी विद्यापीठ

ब्रज राज—पदावली—जवानसिंह जी

मुनि कान्ति सागर जी का संग्रह

कृपा-पचीसी-गोविंद देव स्वामी
 गुटका-कल्याण मिश्र
 जलवय शहनशाह इश्क (सटीक)-
 जवानसिंह जी
 जानकी मंगल—अलख महताव सिंह
 जुवारिया दिवालिया का किस्सा
 ध्रुपद और ख्याल—महाराज मानसिंह
 नेम चउमास
 नेमिनाथ वारामासा
 वारामास-कल्याण सागर सूरि
 रस तरंग—जवानसिंह जी

राग कौतिकपुर नवधा भक्ति शिव सुवंश
शिवराम कविराज
राग-वत्तीसी—दयाचंद पांडे
राग-माला—दयाचंद पांडे
राग माला—हरिचंद
रास-पंचाध्यायी—श्री वटुनाथ कृत

जोधपुर

श्री गोवर्धन प्रसाद काबरा का व्यक्तिगत संग्रह

काव्य-प्रभाकर—भानु कवि
कासिम रसिक-विलास
राग-रत्नाकर—राधा कृष्ण

बीकानेर

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी

अनूप संगीत-रत्नाकर—भावभट्ट
अनूप संगीत-विलास—भावभट्ट
अनूप संगीताकुश—भावभट्ट
आनंद संजीवन—आनंदपाल
कुचेलोपाख्यान—कुचेल मुनि
गमक-मंजरी—भावभट्ट
दत्तिलम्—दत्तिल
धोपद टीक—भावभट्ट
नर्तन-निर्णय—पुंडरीक विट्ठल
नष्टोद्दिष्ट प्रबोधक—भावभट्ट
नाट्य-शास्त्र—भरतमुनि
प्रणव भारती—ओंकार नाथ ठाकुर
प्रेम-रत्नाकर—रत्नपाल भैया
भाव-मंजरी—भावभट्ट
मेल राग मालिका—महावैद्यनाथ सिवा
मुखादीचालीर विचार—वेदभट्ट
मुरली-प्रकाश—भावभट्ट
राग-चंद्रोदय—पुंडरीक विट्ठल
राग काव्य-रत्न—सबलकल भवानीसुत

राग-कौतुक—रामकृष्ण भट्ट
राग-तत्त्व-विबोध—श्रीनिवास
राग-माला—पुंडरीक विट्ठल
राग-माला—क्षेमकर्ण
राग मंजरी—भूधर मिथ
राग-मंजरी—पुंडरीक विट्ठल
राग-रत्न-काव्य-सुमन
राग-विचार—लछीराम
राग विबोध—सोमनाथ
रागकरण समय सूचनिका कवित्त—जसराज
रुद्र उमरुद्धभव—नारद
श्री ठानांग सूत्रवृत्ति (जैन ग्रंथ)
सुर तरंग—सिरदार सिंह जी
संगीत-कलाधर
संगीत—कल्पतरु—पक्षधर
संगीत-चूड़ामणि—प्रतापचन्द्र
संगीत-दर्पण—दामोदर
संगीत-पारिजात—अहोबल
संगीत-प्रस्तार
संगीत-मकरंद—कल्ल
संगीत-मकरंद—नारद
संगीत मालिका टीका—महमदशाह
संगीत रघुनंदन—विश्वनाथ सिंह
संगीत-रत्नाकर—शाङ्ग देव
संगीत-रत्नावली—सोमराज
संगीत-विनोद
संगीत-शिरोमणि
संगीत-सारकालिका—मोखदेव
संगीत-सूत्र
संगीतराज—कुंभकर्ण
संगीतराज रत्नकोष
संगीत-सार—गोपाल पंडित
संगीतोद्देश्य
संगीतोपनिषद सारोद्धार-सुधाकलश
संगीताकुश-कुतुपाध्याय-भावभट्ट
संगीतादित्य-आदित्य राम

संग्रह चूड़ामणि—गोविंद
स्वर-लक्षण—जनादन
स्वर-मेल कलानिधि
हृदय-कौतुक—हृदय नारायण देव

श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर

रागमाला—अहमद
रागमाला—अज्ञात कवि
रागमाला—अज्ञात
रागमाला—अज्ञात
रागमाला—उस्तत
रागमाला—गिरधर मिश्र
रागमाला—सागर कवि
रागमाला—हरिश्चन्द्र कवि
राधा-गोविंद संगीत-सार—प्रतापसिंह

श्री मोती चंद खजांची-संग्रह

आनंद धन-चौबीसी—आनंदधन
आनंद धन सवैया—आनंदधन
गायन स्वर-विचार
गीत-पत्र—समय-सुंदर
गीत-संग्रह—जैतसी मुनि
गीत-संग्रह—अज्ञात
गीतावली—विश्वनाथ सिंह
पद-संग्रह—आनंदधन
पद-संग्रह—जैमल
फल-कौतूहल—राग-कौतूहल-जैतसी
बारहमासी—अहमद
बारहमासी—खै राशाह
बीकानेर की गजल
राग टंक-बद्धोत्तरी—आनंदधन
रागमाला—पद्म नंदन मुनि
राधा गोविन्द संगीत-सार (तालाध्याय)—
प्रतापसिंह

राधा गोविन्द संगीत-सार (वाद्याध्याय तथा
नृत्याध्याय) प्रतापसिंह
हीय हुलास ग्रंथ तथा रागमाला की टीका
होरी संग्रह

अलवर

म्यूजियम, अलवर

अनेकार्थ मंजरी
अंजुमन बहशत
उत्सवमाला
कीर्तन रत्नाकर
कृष्णचंद्र का बारामासा
ख्याल राजा नल
गजल पुर बहार
गजल-बहार
गजल-रामलीला-तीसरा भाग
गजल संग्रह—तीसरा भाग
गानाचार्य माला
गोकुलेश विट्ठलेश के पद
नाम मंजरी
नित्य के पद
प्रेम लता—प्रथम भाग
बृहद भजन-रत्नाकर—प्रथम भाग तथा
द्वितीय भाग
भजन-रत्नावली
भाषा-भूषण
मुग़ल्लिम सितार
राग-कल्पद्रुम
रागमाला—अहमद
रागमाला—भगवान
राग-रत्नाकर—राधा कृष्ण
रूप-रागावली—पूरण मिश्र
व्याकुल भारत
सभा-भूषण रागमाला
सभा विनोद रागमाला

संगीत-दर्पण—हरिवल्लभ
संगीत-नादोदधि—पूर्ण मिश्र
संगीत ढोला मारू
संगीत पूरणमल
संगीत-त्रजानंद भजन माला
संगीत-सार (स्वराध्याय)
संगीत-सार (तालाध्याय)

भरतपुर

हिंदी साहित्य समिति

पद-संग्रह
पद हरिदास
फुटकर कवित्त संग्रह
भजनाष्टक हरिव्यास
रस रास पञ्चीसी—प्रतापसिंह

स्टेट म्यूजियम, भरतपुर

अनेकानेक राग-रागिनियों का संग्रह

पब्लिक लाइब्रेरी, भरतपुर

उत्थापन मंगलाष्टक—चित्रनिधि
कवित्त संग्रह—चतुर सखी
तिलोत्तमा लीला—चतुर सखी
नवधा भक्ति राग रस—शिवराम
पद फुटकर—सोमनाथ
पद मंगलाचरण
पद संग्रह उत्सवन के सर्व सुख
रसरस पञ्चीसी—रसिक
रागमाला—सखीसुख
राग संग्रह—चतुर सखी
राग-स्थान
लाल ख्याल लाल कवि
वर्ष उत्सव के पद

संगीत-सार

कांकरोली

श्री 'द्वारकेश पुस्तकालय', कांकरोली

गनगोर के ख्याल—महादास
गायन पद संग्रह
गायन संग्रह
गीत सावनी तीज-सुंदर कवि
गीत संग्रह
गेय पद वादशाही तथा फुटकर कवित्त
चतुर्भुज कीर्तन संग्रह—चतुर्भुज
पद कीर्तन
बारहमासी पुरुषोत्तम की
बारहमासी सुंदर कवि
भक्तिमार्गीय गजल, ठुमरी ख्याल, कीर्तन
घोल आदि
नृत्य राघव मिलन—रामसखे
नृत्य लीला—ध्रुवदास
पद-संग्रह—देव आदि
पद-संग्रह—नागरीदास
पद-संग्रह—मुसलमान कवि
फागलीला-काव्य—हंसराज बख्शी
वयालीस लीला—ध्रुवदास
बानी—रूपचंद
बारहमासा—कबीर
बारहमासा—केशवनाथ
बारहमासी—ऋद्धिराम
विहारी सतसई की टीका-कृष्ण कवि
रति-विनोद—ग्रहमद
राग-निर्णय-गोपालदास व्यास जी
रागमाला—अज्ञात
रागमाला—यशोदानंद शुक्ल
रागमाला—हीयहुलास
राम रसिक रागमाला-गोपालदास
रंग विनोद—ध्रुवदास

विरह-विलास-हंसराज बख्शी
 व्यास जी की वाणी—गोपाल दास व्यास
 व्यास जी की साखी—गोपाल दास व्यास
 षट् ऋतु और बारहमासी- इंद्रावती और
 मानवती
 सनेह सागर—हंसराज बख्शी
 सरगम संगीत
 संगीत-दीपिका—सारंगधर

वाराणसी

याज्ञिक संग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय

अर्जुन गीता—आनंद या गंगाराम अथवा
 कृष्णानंद कृत
 कोक शास्त्र—ताहिर
 ख्याल हुलास—ध्रुवदास
 गंधर्व गीत
 दोहा-सार-संग्रह
 निकुंज-विलास—नागरीदास
 नीति-मंजरी—प्रतापसिंह
 नंद कुमार शृंगार मंदार—गहर गोपाल
 नृत्य विलास लीला—ध्रुवदास
 पद मुक्तावली—नागरीदास
 पद सार संग्रह—नागरीदास
 बारहमासी—अहमद
 बारहमासी—राधाकृष्ण
 ब्रजसार-शृंगार—प्रतापसिंह
 भगवद्गीता भाषा—हरिवल्लभ
 भोजनानंद-अष्टक—नागरीदास
 भोर लीला—नागरीदास
 मन प्रबोध के कवित्त—गोपालदास
 रसिक-रत्नावली—नागरीदास
 राग-रत्नाकर—राधा कृष्ण
 विदुर-प्रजागर—कृष्ण कवि
 विरह-बेलि—घनानंद
 शंका-निराकरण—पुरुषोत्तम

शृंगार-मंजरी—प्रतापसिंह
 सनेहलीला-रसिक लाल
 सभा-भूषण—गंगाराम
 सार-संग्रह
 संगीत-पच्चीसी—गहर गोपाल

वाराणसी

शोध-विभाग-सूची, आर्य भाषा पुस्तकालय

ख्याल टप्पा

गायनपद—रामचरणदास
 पदराग मालावती-लघुजन
 (विक्रमाजीत ओड़छा नरेश)
 भारत-संगीत—लघुजन
 राग प्रकाश—इयाम सखे
 राग-प्रबोध—नंद लाल
 राग माला—गरति जन
 रागमाला—तानसेन
 रागमाला—दुर्जनदास
 रागमाला—देव
 रागमाला—नवलकिशोर
 रागमाला—यशोदानंदन शुक्ल
 रागमाला—रामसखे
 रागमाला—व्यास
 राग-रत्नाकर—देव
 राग-रत्नावली—गोपाल सिंह कुंवर
 राग रूपमाला—बालकृष्ण
 राग-विलास—राम सनेही मिश्र
 राग-विवेक—पुरुषोत्तम
 राग-समूह—कृष्ण कवि
 राग सागर—मानसिंह
 राग-सागर—विश्वनाथ सिंह
 राग-संग्रह—गरीबदास
 लघु सतसैया—लघुजन
 विष्णुपद—लघुजन
 सभाजीत रागमाला—रामदयाल

सभा-विलास—लाल कवि द्वारा संग्रहीत

सरस्वती भंडार, रामनगर दुर्ग, वाराणसी

जगन्मोहन—रघुनाथ कवि

नादोदधि—पूरण मिश्र

भारत-वर्षीय इतिहास—पीत कविश्वर

पंचांग-निरूपण

राग-कल्पद्रुम पदावली—कृष्णानंद व्यास

राग-विवेक—पुरुषोत्तम

राग-सागर—विश्वनाथ सिंह

राग-संग्रह—आनंदकिशोर सिंह

वीणा-वदरीनाथ वर्मा

संगीत-दर्पण-रागाध्याय तथा

स्वराध्याय—हरिवल्लभ

संगीत-परिभाषा

संगीत-प्रवेशिका

प्रयाग

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

गरवी वारामासा

गीत शंकर—भीष्म मिश्र (संस्कृत)

गोपी चंद रो ख्याल-मोतीलाल मारवाड़ी

राग-पुंगव-जगन प्रपन्न

प्रकाशित ग्रंथ

अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग, संपादक एवं अनुवादक रामलाल वर्मा शास्त्री, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५९।

अपभ्रंश साहित्य हरिवंश कोछड़, हिंदी अनुसंधान परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली की ओर से भारतीय साहित्य मंदिर, फरवारा, दिल्ली।

अभिनव गीत-मंजरी—रतंजनकर

अभिनव-संगीत-शिक्षा—रतंजनकर

अवध के प्रमुख कवि—डा० ब्रज किशोर मिश्र

अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दीन दयालु गुप्त, भाग १+२।

राग-माला—अज्ञात

राग-रत्नाकर—राधाकृष्ण

संगीत-दर्पण भाषा—बिहारीलाल

संगीत माधव—प्रबोधानंद सरस्वती (संस्कृत)

संगीत-सुधा-सरोवर—वद्री नारायण चौधरी

प्रयाग संग्रहालय, प्रयाग

गोपी चंद रो ख्याल

नृत्य-विलास-ध्रुवदास

पद-रत्नावली—प्रियादास

पद-राग-संग्रह—हितहरिवंश

रस मुक्तावली—ध्रुवदास

रसरज—मतिराम

रागकेदार—अज्ञात

रागमाला—अज्ञात

रागमाला—अज्ञात

राग माला—मन्मालवीय बेनीराम

रागरत्नाकर—सूरदास

रागरंग—काशीपति

संगीत-प्रबंध-सार-भाषा—हरिवल्लभ

गंगानाथ भा रिसर्च इंस्टीट्यूट

दशम सार संगीत—रतनहरि

आदिकाल के अज्ञात हिंदी रास-काव्य—डा० हरिशंकर शर्मा, 'हरीश', मंगल प्रकाशन, गोविंद राजियों का रास्ता, जयपुर, प्रथम संस्करण, सन् १९६१।

आधुनिक हिंदी-काव्य में छंद-योजना—डा० पुत्तलाल शुक्ल, प्रकाशक लखनऊ विश्व-विद्यालय, प्रथमावृत्ति, २०१४ वि०।

काव्य और संगीत—लक्ष्मीधर।

काव्यांग-कौमुदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक, नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, बांस फाटक, वाराणसी, चतुर्थावृत्ति, सन् १९६१।

काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, श्री गोपेंद्रत्रिपुर हरभूपाल विरचित, कामधेनुसमाख्यव्याख्य-योद्भासिता, तृतीय संस्करण, १९२२ ई०।

खैराशाह की वारामासी।

छंद-विज्ञान की व्यापकता, हरिशंकर शर्मा, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा।

जगद्विनोद, पद्माकर, संपादक, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, सं० २०१५।

जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, प्रकाशक, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१३।

तबला-तरंग, निगम, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

तान-मालिका, राजा भैया, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

तान-संग्रह, रतनजनकर, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

ताल-अंक, प्रभुलाल गंग, संगीत कार्यालय, हाथरस, १९५१।

दरबारी संस्कृति और मुक्तक परम्परा, त्रिभुवन सिंह, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथमावृत्ति, १९५८।

देव और उनकी कविता, डा० नगेन्द्र, इंडिया प्रिंटर्स, दिल्ली-६, तीसरा संस्करण, अप्रैल १९६०।

ध्वनि और संगीत, ललित किशोर सिंह।

नृत्य अंक, गणेश प्रसाद, संगीत-कार्यालय, हाथरस।

पदावली, रामसखे, आर्य भाषा पुस्तकालय, वाराणसी।

प्रसाद के गीत, गणेश खरे।

प्राकृत साहित्य का इतिहास, डा० जगदीश चंद्र जैन, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६१।

प्राचीन भारत में संगीत, धर्मावती श्रीवास्तव, प्रकाशक, भारतीय विद्या प्रकाशन, पो० ब० १०८, कचोड़ीगली, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६७।

प्रेम-पत्रिका, खूबचंद, 'रसीले'।

पुलकावली, बद्रीनाथ, संपादक डा० नगेन्द्र, प्रकाशक, आत्मा राम एंड संज, १९६२।

ब्रजनिधि ग्रंथावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०।

बिहारी की वाग्विभूति, डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान, प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी १, उपस्करण, नूतन।

विहारी रत्नाकर, जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्रकाशक, ग्रंथकार, शिवाला, बनारस,
नवीन संस्करण २, सन् १९५५ ।

ब्रज-भाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प, डा० सावित्री सिन्हा, नेशनल
पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६१ ।

भक्तकवि व्यास जी, वासुदेव गोस्वामी, संपादक प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक,
अग्रवाल प्रेस, मथुरा ।

भजन-पुष्पावली, खेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित ।

भरत का संगीत-सिद्धान्त—कैलाश चंद्र देव 'ब्रह्मस्पति' ।

भातखंडे संगीत-शास्त्र, भातखंडे ।

भारत का भाषा सर्वेक्षण, ग्रियर्सन ।

भारत-संगीत—महाराज श्री गुरु प्रसाद सिंह ।

भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका, डा० नगेन्द्र, भाग २, ओरियंटल बुक डिपो,
१७०४ नई सड़क, दिल्ली ।

भारतीय काव्यांग, डा० सत्यदेव चौधरी ।

भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, लूनिया ।

भारतीय संस्कृति, भाग १-२, श्री मोहन लाल विद्यार्थी, प्रकाशक मोतीलाल सुकुल :

मन्थारिफुन्तगमात, नव्वाव अली खां, विश्वम्भर नाथ भट्ट, संगीत कार्यालय, हाथरस ।

मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ, परशुराम चतुर्वेदी, मुद्रक कमल प्रेस, इलाहाबाद,

प्रथम संस्करण, १९६१ ई० ।

मलयालम साहित्य का इतिहास, डा० के० भास्कर नायर, प्रकाशन शाखा, सूचना
विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९६० ।

मान-राज-विलास, मान कृत, संपादक मोतीलाल मेनारिया, नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी, प्रथम संस्करण, सं० २०१५ ।

मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, २, ३, प्रकाशक, हिंदी ग्रंथ प्रसारक मण्डली, खंडवा व
प्रयाग, प्रथम बार, सं० १९७० ।

रतनजोर-विलास, रतनजोर सिंह साहव ।

रस सिद्धान्त, स्वरूप, विश्लेषण, डा० आनंद प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन
प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-६, प्रथम संस्करण, १९६० ।

राग-पीयूष, लाल महिपाल सिंह, कृष्णदास ।

राग-प्रकाशिका, फतेहसिंह वर्मा, चन्द्र ।

राग-रत्नाकर तथा भक्त-चिंतामणि ।

राग-रत्नाकर, भक्तराम तथा अन्य कवि ।

राग-सुधा, लाल महिपाल सिंह ।

रागों के तालिक विचार ।

राजस्थान के राजघरानों द्वारा हिंदी साहित्य की सेवाएँ, राजकुमारी शिवपुरी ।

राष्ट्रीय-गीत, रतनजनकर ।

रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, आगरा ।
रीतिकालीन काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध, डा० उमा मिश्र, दिल्ली
पुस्तक सदन, बैंगलो रोड, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् १९६२ ।

रीति-काव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, प्रकाशक गौतम बुक डिपो, दिल्ली, द्वितीय
संस्करण, १९५३ ।

रीति-काव्य संग्रह, भूमिका लेखक एवं संकलन-कर्त्ता, जगदीश गुप्त, साहित्य भवन,
प्रा० लि०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९६१ ई० ।

रीति-शृंगार, संपादक डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली, प्रथम
बार, १९५४ ।

वर्णमाला—रतनजनकर ।

वर्ण-रत्नाकर, ज्योतिरीश्वर ठाकुर ।

विक्रम स्मृति-ग्रथ, सं० २००१ वि०, आलीजाह दरवार प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित
तथा सिन्धिया ओरियण्टल इंस्टीट्यूट के तत्त्वावधान में प्रकाशित ।

शब्द-कल्पद्रुम, स्यार राजा राधाकांत देव वहादुरेण विरचित राजधान्यां, व्याप्ति
स्तभिसनयन्त्रे मुद्रितः । ७१ नं० पाथुरियाघाट-पट्टीट-स्थित भवनात् प्रकाशितश्च, शकाब्दः
१८०८ ।

शास्त्र परिचय, श्री पद ।

साहित्य दर्पण, विद्यावाचस्पति साहित्याचार्य श्री पं० शालग्राम शास्त्री, प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, पो० वा० नं० ७५, वाराणसी, सं० २०१३ वि० ।

सितार थ्योरी, निगम, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

सितार-मार्ग, श्रीपद ।

सिद्ध-साहित्य, धर्मवीर भारती ।

संगीत-कौमुदी—निगम, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

संगीत-दर्पण, दामोदर, संगीत, कार्यालय, हाथरस ।

संगीत-पारिजात, महोबल, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

संगीत-राग-कल्पद्रुम, कृष्णानंद व्यासदेव 'रागसागर', प्रथम भाग, द्वितीय भाग ।

संगीत-शाकुंतल, मिश्र ।

संगीत-शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री ।

संगीत समय सार, संगीतकार श्री पार्श्वदेव, संपादक महामहोपाध्याय टी० गनपति
शास्त्री, मुद्रक गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, १९२५ ।

संगीत-समुच्चय, वसु ।

संगीत-सागर—प्रभुलाल, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

संगीत-सीकर, वि० ना० भट्ट और श्रीवास्तव, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

संगीत-सुदर्शन, पं० सुदर्शनाचार्य शास्त्री ।

संगीत-सुधा, राजा रघुनाथ, संपादक, श्री पी० एस० सुंदरम् अय्यर, पं० एस०
सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रकाशक म्यूजिक एकेडमी, मद्रास, १९४० ।

संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ।

संगीतानधरो—गोवर्धन धरो ।

संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९५६ ई० ।

स्वरमेल कलानिधि, संपादक एम० एस० रामास्वामी ऐयर, १९३२ ।

हिंदी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९४५ ।

हिंदी काव्य-शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ द्वितीय संस्करण, सं० २०१५ वि० ।

हिंदी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत, उपा गुप्ता प्रकाशक, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथमावृत्ति, २०१६ वि० ।

हिंदी छंद प्रकाश, रघुनंदन शास्त्री, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वितीय संस्करण ।

हिंदी नाटक, उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा ।

हिंदी रीति परंपरा के मुख्य आचार्य, डा० सत्यदेव चौधरी, साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९५६ ई० ।

हिंदी शब्द-सागर, तृतीय भाग, श्याम सुंदरदास ।

हिंदी साहित्य का अतीत, शृंगार-काल, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, सं० २०१५ ।

हिंदी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, १९५२ ।

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, डा० रामकुमार वर्मा ।

हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल ।

हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, डा० सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, अनुवादक किशोरीलाल गुप्त, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, पो० बा० नं० ७०, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् १९५७ ।

हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास (पष्ठ भाग), संपादक, डा० नगेन्द्र ।

हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, देवी शरण रस्तोगी ।

हिंदी साहित्य कोष, प्रधान संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस, प्रथम संस्करण, सं० २०१५ ।

हिंदुस्तानी संगीत की स्वर-लिपि, रतनजनकर ।

हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति ।

चित्र-रागमालाएँ ।

भारत कला भवन, बनारस युनिवर्सिटी, बनारस ।

रागमाला, गोविंद ।

रागमाला...लछिमन दास ।

श्री मोती चंद जी खजांची का चित्र-संग्रह ।

रागमाला—अज्ञात कवि, मालवा शैली सं० १६५०—सं० १६७० ।

रागमाला—अज्ञात कवि, जोधपुर शैली ।

गल्डेन जुबली म्यूजियम, खजांची चित्रशाला ।

संगीत-दर्पण-हरिवल्लभ ।

लखनऊ स्टेज म्यूजियम, लखनऊ ।

रागमाला—अनंत कवि, बीकानेर शैली, सं० १७५६ ।

रागमाला—कल्याण कवि, वूंदी शैली, सं० १८५६ ।

पत्र-पत्रिकाएँ ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भाग १३, सं० १९८९; भाग १८, सं० १९९४;
श्रावण, सं० १९९६; वर्ष ४५, सं० १९९७; वर्ष ४७, सं० १९९९; वर्ष ५२, सं० २००४;
वर्ष ५४, सं० २००६; वर्ष ५५, सं० २००७ ।

शोध पत्रिका ।

सरस्वती, नवम्बर, १९३३ ।

साहित्य-समालोचक भाग १, अंक १, जनवरी १९२५ ।

हिंदी अनुशीलन, वर्ष १४, अंक २ ।

इंगलिश पुस्तकें

A short Historical Survey of the Music of Upper India, Bhatkhande.

Annals and Antiquities of Rajasthan, Lt. Col. James Tod, with a preface by Douglas Sladen, Routledge and Kegan Paul Ltd., Broadway House, 68-74 Carter Lane, E. C. 4. London.

Aspects of Indian Music, Published by the Director, Publication Division and printed in India by the Manager, Government of India Press, Faridabad.

Dictionary of Psycho-Analysis, Freud, Edited by Nandor Fodor and Frank Gaynor.

Fall of the Mughal Empire, Vol. II & III, Jadunath Sirkar, Published by M.C. Sarkar & Sons, 14, Bankim Chatterjee Street, Calcutta 12, Vol. II, 1950, Vol. III, 1952.

Glimpses of Medieval Indian Culture. Yusuf Husain, D. Litt (Paris), Published by Jayasinha, Asia Publishing House, Bombay. 1957.

Historical Development of Indian Music, Swami Prajnanand. History of Aurangzib, Vol. V, Jadunath Sirkar.

History of India, edited by John Dowson, (Elliot & Dowson's History).

History of Muslim Rule, by Ishwari Prasad, Published by Indian Press Private Ltd., Allahabad, 1958.

History of Rajputana, Dr. Gauri Shankar Hira Chand Ojha. Indian Music and its Instruments, Ethel Rosenthal.

Life and Conditions of the People of Hindustan. Dr. K. M. Ashraf, Jiwan Prakashan (Regd.) Educational Publishers, Delhi.

Mughal Rule in India, S.M. Edwardes and H. L. O. Garrett, M.A., Published in India by S. Chand & Co. by arrangement with Messers Oxford University Press, Bombay. 1956.

Music of India. William Jones and N. Augustus Willard, Published by Anil Gupta for Sushil Gupta (India) Private Ltd., 12/3-C, Galiff Street, Calcutta-4 and Printed by K.C. Pal, Nabjiban Press, 66 Grey Street, Calcutta-6.

Rulers of India—Aurangzib by S. Lane-Poole, Published by S. Chand & Co. by arrangement with the Oxford University Press, Bombay.

Sketches of Rulers of India, Vol. IV, by G.D. Oswell, Henry Frowde, M.A., Publisher to the University of Oxford, London, Edinburg, New York, Toronto and Melbourne.

Storia-do.mogor or Mogul India by Niccalao Manucci, Translated by

William Irvine, Vol. I & III. London, John Murray, Albemarle Street, Published for the Government of India, 1907.

Studies in Indian History and Culture, Ghoshal. Studies in Indo-Muslim History, Vol. I & II (A critical commentary on Elliot & Dowson's History of India) by Late Shahpurshah Hormasji Hodiwalla with a foreward by Sir Richard Burn, K.T., C.S.I., Bombay, 1939.

The Cambridge History of India. Planned by Lt. Col. Sir Wolseley Haig and Edited by Sir Richard Burn, Vol. IV. The Mughal Period, Published in India by S. Chand & Co by arrangement with the Cambridge University Press, London, 1957.

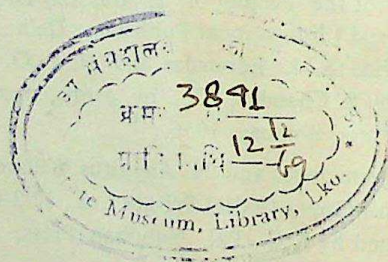
The Crescent in India. A Study in Medieval History by S. R. Sharma, M.A., Published by J.V. Patel for Hindi Kitabs Ltd., Churchgate Street, Bombay. 1.

The Mughal Empire, 1526-1803 A. D., Asirvadi Lal Srivastava, III Edition, Published by S.L. Agarwal & Co. (Private) Ltd., Educational Publishers, Agra.

The Story of Indian Music, O. Goswami.

Travels in India, Jean Baptiste.

Travels in the Mogul Empire. 1916, Bernier.



7/2

